भारतीय रिजर्व बैंक की 1961 से मौद्रिक एवं साख नीति की समीक्षा-कृषि क्षेत्र के विशेष सन्दर्भ में

(A Review of Monetary and Credit Policy of RBI With Special Reference to The Agricultural Sector Since 1961)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डि० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

द्वारा
राकेश पाण्डेय

निर्देशक
डा० बी० के० त्रिपाठी
उपाचार्य

अर्थशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
1993

विषय सूची

प्राक्कथन

अध्याय - 1 -	**प्रस्तावना, शोध अध्ययन का स्वरूप, औचित्य एवं प्रमुख बातें**	**1 - 26**
1 1	अध्ययन का उद्देश्य	15
1 2	शोध अध्ययन की परिसकल्पना	15
1 3	शोध - अध्ययन विधि	16
1 4	उपलब्ध साहित्य की समीक्षा	17
1 5	शोध अध्ययन का अध्याय क्रम	21
अध्याय - 2 -	**मौद्रिक एवं साख नीति के सिद्धान्त**	**27 - 70**
2 1	मौद्रिक सिद्धान्त तथा मौद्रिक नीति	27
2 2	मौद्रिक एव साख नीति की अवधारणा	32
2 3	मौद्रिक नीति के उद्देश्य	38
2 4	मौद्रिक नीति के अवरोध	47
2 5	मौद्रिक नीति के उपकरण	51
2 6	सस्ती मुद्रा नीति	58
2 7	घाटे की वित्त व्यवस्था और मौद्रिक नीति	61
2 8	रेडक्लिफ कमेटी की रिपोर्ट	64
2 9	मौद्रिक नीति का कार्य क्षेत्र एव गैर-कार्य क्षेत्र	66
अध्याय - 3 -	**मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त, रिजर्व बैंक विश्लेषण, मौद्रिक नीति हेतु नीतिपरक बातें**	**71 - 103**
3 1	मुद्रा पूर्ति विश्लेषण - बैंकिग सर्वसमिका	73
3 2	मुद्रा या साख गुणक का सिद्धान्त	75
3 3	मुद्रा पूर्ति का उच्च अर्घ (एच) सिद्धान्त	78
3 4	भारतीय रिजर्व बैंक का लेखा-जोखा मुद्रा पूर्ति विश्लेषण	85
3 5	साख की पूर्ति तथा इसका निर्धारण	89

अध्याय - 4 - भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति - पंचवर्षीय योजनावधि के अन्तर्गत 104 - 167

4 1 प्रथम एव द्वितीय पचवर्षीय योजनाओं में मौद्रिक एव साख नीति 105

4 2 तृतीय पचवर्षीय योजना मे मौद्रिक एव साख नीति 109

4 3 वार्षिक योजनाओ में मौद्रिक एव साख नीति 114

4 4 चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे मौद्रिक एव साख नीति 118

4 5 पचम पचवर्षीय योजना में मौद्रिक एव साख नीति 124

4 6 छठीं पचवर्षीय योजना मे मौद्रिक एव साख नीति 131

4 7 सातवीं पचवर्षीय योजना में मौद्रिक एव साख नीति 138

4 8 मौद्रिक एव साख नीति मे नवीनतम् परितर्वन एव विकास 152

अध्याय - 5 - कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एवं साख नीति 168 - 196

5 1 ग्रामीण ऋणग्रस्तता एव भारतय रिजर्व बैंक तथा कृषि वित्त 168

5 2 कृषि एव ग्रामीण साख हेतु वित्तीय एजेन्सिया 182

5 3 भारत मे कृषि साख व्यवस्था 186

5 4 भारत मे कृषि वित्त में मौद्रिक एव साख नीति 192

अध्याय - 6 - भारतीय रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा कृषि साख 197 - 222

6 1 नाबार्ड की स्थापना 197

6 2 नाबार्ड के कार्य तथा सगठनात्मक सरचना 198

6 3 नाबार्ड ससाधन एव लाभकारिता - कुछ प्रक्षेप 210

6 4 नाबार्ड कुछ महत्वपूर्ण सुझाव 220

अध्याय - 7 - कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एवं साख नियोजन की आवश्यकता 223 - 248

7 1 कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नीतिया 224

7 2 मौद्रिक एव साख नीति की सीमाए 224

7 3	कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नियोजन की प्रकृति तथा क्षेत्र	226
7 4	कृषि क्षेत्र में मौद्रिक लक्ष्य तथा नियोजित मुद्रा एव साख पूर्ति	230
7 5	2000 ए0डी0 तक मौद्रिक एव साख प्रेक्षेप	233
7 6	कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नियोजन की आवश्यकता	243
अध्याय - 8 -	**सारांश, निष्कर्ष एवं नीतिपरक सुझाव**	**249 - 281**
	संदर्भ सूची	**282 - 292**

प्राक्कथन

(PREFACE)

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए मौद्रिक एव साख नीतिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं । यह महत्व जहा विकास के साथ मूल्य स्थिरता को प्राप्त करने से है, वहीं विशेष रूप से कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से सम्बन्धित है । भारत में आर्थिक विकास में प्राथमिकता की दृष्टिकोण से मौद्रिक नीति में उल्लेखनीय तथा सरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं और अब यह विशेषकर साख नीति से सम्बंधित होता जा रहा है । मौद्रिक नीति की तुलना में साख नीति, मुद्रापूर्ति के मात्र समग्रता को नहीं देखती, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों तथा मुद्रा के आवटन से सम्बंधित होती हैं । प्रस्तुत शोध प्रबध में व्यवस्थित ढग से मौद्रिक एव साख नीति का अध्ययन किया गया है मौद्रिक एव साख नीति के उचित सचालन के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि देश में एक प्रभावकारी केन्द्रीय बैंक हो । भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्रीय बैंक होने के नाते इसका मुख्य कारण मौद्रिक स्थायित्वता स्थापित करना तथा साख मुद्रा का नियत्रण करना है । प्रस्तुत शोध प्रबध में इस बात की विस्तृत विवेचना की गयी है कि भारतीय रिजर्व बैंक, बैंक-दर, खुले बाजार की क्रियायें नकद कोषों के अनुपात में परिवर्तन चयनात्मक नियत्रण, नैतिक प्रभाव नीति आदि विधियों के द्वारा किस तरह नियत्रण करता है । साथ ही 1951 से भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है । भारत में मौद्रिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य अत्यल्प बचत से, विशेषकर ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्रों से अधिक से अधिक बचत निकालकर अर्थव्यवस्था में लगाना है । इसके साथ ही साथ आर्थिक विकास मे गति लाने के लिये ब्याज दर के ढाचे, साख नियत्रण, सार्वजनिक ऋण व्यवस्था आदि में प्रभावकाकरी परिवर्तन से है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं विशेषकर साख के सम्बध में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है । भारत में कृषि एव ग्रामीण क्षेत्रों में वित्त की अत्यधिक

कमी होने के कारण आज भी उत्पादन तथा उत्पादिता में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई है - परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भागेदारी लगातार कम होती गयी है और आज यह मात्र 32 प्रतिशत के ही आस पास है । ग्रामीण अचल में साख ऋणों की वसूली भी एक गम्भीर समस्या है । भारतीय कृषि एव ग्रामीण विकास के सम्यक दृष्टिकोण से नाबार्ड के महत्व एव योगदान को इस अध्ययन में स्पष्ट किया गया है । साथ ही कृषि साख तथा नाबार्ड से सम्बंधित कुछ प्रक्षेपों का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है । हरितक्रांति का प्रभाव भी केवल पजाब, हरयिाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक ही सीमित रहा है । देश के सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से पिछडे क्षेत्रों एव वर्गो, सीमान्त कृषकों भूमिहीन कृषकों के लिये उपयुक्त रोजगार के अवसरों के न होते हुये भी आज भी इस बात की भारी गुजाइस है कि प्रभावी ढग से कृषि क्षेत्र में साख का नियोजन किया जाय । वर्तमान व्यवस्था में ग्रामीण साख का लाभ सभी वर्गो को नहीं मिल पाता है। भारत में कृषि वित्त दो स्रोतो से प्राप्त होती है । सस्थागत स्रोत और गैर सस्थागत स्रोत । 1950-51 में कुल कृषि साख का लगभग छ प्रतिशत भाग सस्थागत स्रोतों से प्राप्त होता था । किन्तु अब इसके भाग में वृद्धि हुयी है । फलस्वरूवरूप वर्तमान में कुल ऋण का लगभग पच्चास प्रतिशत भाग सस्थागत स्रोतों से प्राप्त होने लगा है । 1969 में चौदह बडे व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद सस्थागत साख में उल्लेखनीय प्रगति हुयी है । भारत में कृषि वित्त को तीन भागों में बाटा जा सकता है ।

1 अल्पकालीन या मौसमी साख,

2 मध्यकालीन साख,

3 दीर्घकालीन साख,

वर्तमान समय में कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र में सभी प्रकार की साख की व्यवस्था भारतीय रिजर्व बैंक नाबार्ड के माध्यम से करता है । जो व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित्तीयन करता है । नाबार्ड ने ग्रामीण एव कृषि साख के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है ,

लेकिन आज भी आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण क्षेत्र मे साख का प्रवाह उत्पादक कार्यो के लिये किया जाय । इस शोध प्रबध मे इन समस्याओ के सदर्भ मे कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायो मे बाटा गया है और प्रत्येक अध्याय को आवश्यकतानुसार उप-अध्यायो मे विभाजित करके अलग - अलग शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है । अध्यायो का विवरण निम्नलिखित है -

1 प्रस्तावना - शोध अध्ययन का स्वरूप, औचित्य एव प्रमुख बाते,
2 मौद्रिक एव साख नीति के सिद्धान्त,
3 मुद्रापूर्ति के सिद्धान्त, रिजर्व बैंक विश्लेषण, मौद्रिक नीति हेतु नीतिपरक बाते,
4 भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति-पचवर्षीय योजनावधि के अन्तर्गत,
5 कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र मे भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति,
6 भारतीय रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा कृषि साख,
7 कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नियोजन की आवश्यकता,
8 साराश, निष्कर्ष एव नीतिपरक सुझाव,

मैं शोध निर्देशक डा0 बी0 के0 त्रिपाठी, उपाचार्य अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यलाय के प्रति आभारी हूँ, जिनके कुशल निर्देशन एव व्यक्तिगत रूचि के परिणामस्वरूप यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत रूप मे तैयार हो सका । प्रो0 बी0 के0 आनन्द, अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग को मैं धन्यवाद देना चाहूगा जिन्होने समय-समय पर मेरे शोध की प्रगति मे रूचि लेकर मेरा उत्साहवर्धक करते रहे । अर्थशास्त्र विभाग के समस्त अध्यापको तथा शोधार्थियों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होने न केवल मुझे अपना पूरा सहयोग दिया, बल्कि समय - समय पर बहुमूल्य सुझाव भी दिये । मैं प्रो0 वी0 डी0 मिश्रा, आचार्य, प्राचीन इतिहास

तथा पुरातत्व विभाग का भी आभारी हूँ, जिन्होने हमेशा ही मेरा मार्गनिर्देशन किया है । मैं प्रो0 वाई0 पी0 सिह, निर्देशक, पत्राचार पाठ्यक्रम एव सतत शिक्षा सस्थान इलाहाबाद विश्वविद्यलाय को धन्यवाद देना चाहूगा, जिन्होने मुझे शोध कार्य के शिखर अवधि मे तमाम अतिरिक्त कार्यालीय कार्यो से मुक्त रखा ।

डा0 जे0 एन0 मिश्र, उपाचार्य, वाणिज्य एव व्यवसाय प्रशासन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डा0 बद्री विशाल त्रिपाठी, प्रवक्ता, इलाहाबाद विश्वविद्यालय डिग्री कालेज, डा0 राम शिरोमणि त्रिपाठी, प्रवक्ता, एम0 जी0 पी0 जी0 कालेज, फतेहपुर, डा0 राधेश्याम गुप्त, निर्देशक, एग्रो एकनॉमिक रिसर्च सेण्टर, इलाहाबाद, डा0 सुनीत सिह, शोध सहायक, जी0 वी0 पन्त सामाजिक विज्ञान सस्थान, इलाहाबाद, श्री आर0 डी0 शुक्ल, जिला प्रबन्धक, राष्ट्रीय बैंक इलाहाबाद, श्रीमती पुष्पा त्रिपाठी, सुल्तानपुर का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होने मेरे शोध कार्य मे अपना पूरा सहयोग दिया । श्री0 आर0 के0 सिह, पुस्तकालयाध्यक्ष, तथा श्री जवाहर, पुस्तक सहायक, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, श्री एस0 एन0 पाण्डेय, पुस्तकालयाध्यक्ष, एग्रो इक्नॉमिक रिसर्च सेण्टर, इलाहाबाद तथा पुस्तकालयाध्यक्ष, भारतीय रिजर्व बैंक, कानपुर एव बम्बई को मैं व्यक्गित रूप से धन्यवाद देना चाहूंगा, जिनके सहयोग से मैं यह शोध - प्रबन्ध इस रूप मे प्रस्तुत कर सका ।

मैं अपने माता-पिता एव भइया-भाभी तथा बहनो का भी आभारी हूँ, जिनका आर्शीवाद और स्नेह हमेशा मेरे साथ रहा। मैं अपने चाचा श्री श्याम कृष्ण पाण्डेय एव उनके परिवार तथा अपनी पत्नी के परिवार का भी आभारी हूँ, जिन्होने हमेशा ही मेरा उत्साह बढ़ाया है ।

मैं अपनी पत्नी डा0 (श्रीमती) अमिता पाण्डेय, वनस्पति विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय को धन्यवाद एव आभार प्रकट करना चाहूगा, जिनके सहयोग के बिना यह शोध-प्रबंध पूरा न हो पाता ।

मैं किदवई कामर्शियल इन्सटीट्यूट, इलाहाबाद के श्री एम0 आर0 खान को धन्यवाद देना चाहूगा, जिन्होने परिश्रम और लगन के साथ कम्पोजिग किये ।

15 नवम्बर, 1993

(राकेश पाण्डेय)

अध्याय - I

प्रस्तावना
शोध अध्ययन का स्वरूप, औचित्य एवं प्रमुख बातें

(INTRODUCTION, NATURE, JUSTIFICATION AND MAJOR ISSUES OF RESEARCH STUDY)

प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य इस बात का विस्तृत अध्ययन एव आलोचनात्मक मूल्याकन करने से है कि विकासरत् भारतीय अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में विकास-समस्याओं और उनके समाधान हेतु मौद्रिक नीति तथा साख नीति का क्या महत्व और योगदान रहा है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास के रूप में भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास की प्राथमिकताओं ओर विकास प्रक्रिया के वित्तीयन में मौद्रिक एव साख नीति को विशेष महत्व दिया गया है। इस सम्बन्ध में देश के केन्द्रीय बैंक के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना तथा साथ ही साथ देश के अन्य बैंकिग एव वित्तीय सस्थाओं का मुद्रा एव साख के विस्तार में विशेष महत्व रहा है। प्रस्तुत अध्ययन में केन्द्रीय बैंक द्वारा देश की विकासात्मक कार्यो में समय-समय पर निर्धारित मुद्रा एव साख नीति का आलोचनात्मक मूल्याकन प्रस्तुत किया जायेगा और इस बात का प्रयत्न किया जायेगा कि देश की सम्पूर्ण आर्थिक विकास में और विशेष-कर कृषि क्षेत्र में इन नीतियों की क्या भूमिका रही है ओर कहा तक इन नीतियों के द्वारा समस्याओं का समाधान हुआ है। यद्यपि भारतीय मौद्रिक एव साख नीति मूलत केन्सीय सस्ती मुद्रा नीति पर आधारित रही है तथा साथ ही साथ हाल के वर्षो को छोडकर मौद्रिक एव साख नीति, विशेषकर औद्योगिक क्षेत्रों तथा आर्थिक एव सामाजिक रूप से सम्पन्न व्यापारियों, उद्योगपतियों तक ही सीमित रही, किन्तु देश के प्रमुख व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद से तथा विशेषकर सामाजिक न्याय के साथ-साथ आर्थिक विकास को प्राप्त करने के उद्देश्य से एव कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की आवश्यकता तथा प्रधानता के सदर्भ में अब मौद्रिक तथा विशषकर साख नीति के उद्देश्य से महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तन हुआ है, इस अध्ययन में प्रस्तुत किया जायेगा, वहीं मोद्रिक तथा साख नीति के प्रभावकारी होने में उन रूकावटों एव बाधाओं का भी अध्ययन किया जायेगा, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिग एव साख सुविधाओं की पर्याप्त उपलब्धता के बावजूद भी कृषि-वित्त एव साख का उत्पादक, प्रभावकारी तथा सही उपयोग नहीं हो पा रहा है ।

चूंकि मौद्रिक तथा साख नीतियों का सम्बन्ध ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से है, अत ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा अन्य बातों के प्रर्याप्त सर्वेक्षण के आधार पर ही मौद्रिक एव साख नीतियों का निर्माण किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में यह आवश्यक हो जाता है कि हम मौद्रिक एव साख नीतियों के उपयुक्त एव प्रभावकारी स्वरूप को देने के लिए विकास नीतियों और कार्यक्रमों के उपादेयता तथा प्रभावकारिता का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करें ।

मौद्रिक और साख नीति का किसी भी देश के आर्थिक विकास से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है और साख नीति के उचित सचालन द्वारा जहा देश के मौद्रीकृत क्षेत्रों की वृद्धि मुद्रा पूर्ति के साथ - साथ राष्ट्रीय आय एव उत्पादन की वृद्धि तथा मुद्रा और मूल्य वृद्धि के सम्बध में मूल्य-स्थायित्वता की प्राप्ति आदि महत्वपूर्ण बाते जुडी हैं, वहीं अनेक सैद्धान्तिक अनुभवगम्य विश्लेषणों के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि देश के आर्थिक क्रियाओं में और विशेषकर विकास प्रक्रिया में मुद्रापूर्ति, मौद्रिक शक्तियों एव अन्य कारकों का बडा महत्वपूर्ण स्थान है । क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने अपने मुद्रा परिणाम सिद्धान्त के आधार पर इस बात को स्थापित किया कि अर्थ-व्यवस्था के अस्थायित्वता का प्रधान कारण मौद्रिक शक्तियों में परिवर्तन से है और इसलिए उन्होने सुझाव दिया था कि मौद्रिक आय तथा आर्थिक उतार-चढाव से अर्थव्यवस्था को स्थायित्वता की ओर ले जाने में मुद्रा की मात्रा अत्यन्त महत्वपूर्ण है । केन्स ने भी यद्यपि वित्तीय नीति पर विशेष महत्व दिया था, परन्तु अर्थव्यवस्था की वास्तविक शक्तियों को प्रभावित करने में मुद्रापूर्ति और मौद्रिक नीति को बहुत ही महत्वपूर्ण माना था । केन्सोपरान्त फ्रीडमैन ने तो अपने सारे सैद्धान्तिक और अनुभवगम्य विश्लेषणों के आधार पर इस बात को बडी दृढता से स्थापित किया है कि अर्थव्यवस्था में केवल मौद्रिक शक्तिया ही महत्वपूर्ण है। उनके नियन्त्रण द्वारा ही स्थायित्वता प्राप्त की जा सकती है। गर्ले-शॉ के विश्लेषण से भी स्पष्ट हो जाता है कि अर्थव्यवस्था के विकास में और आर्थिक क्रियाओं में मौद्रिक तथा वित्तीय सस्थाओं का कितना व्यापक और महत्वपूर्ण योगदान होता है। केन्सवाद और मौद्रिकवाद के महान विवाद से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्थिक विकास में मौद्रिक नीति अपना विशेष महत्व रखती है । मोटे तौर पर मौद्रिक नीति का अभिप्राय अर्थव्यवस्था में मुद्रा के नियत्रण से सम्बन्धित नीति से है । हैरी जॉनसन

का मानना है कि मौद्रिक नीति से अभिप्राय केन्द्रीय बैंक के उस नियत्रण नीति से है, जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये मुद्रा की पूर्ति को नियत्रित करता है।[1] मौद्रिक नीति का एक और अभिप्राय साख नियत्रण से भी है। सेयर्स का मानना है कि बैंक केवल मुद्रा जुटाने वाली सस्था नहीं है, बल्कि मुद्रा की निर्माता भी है। यहा मुद्रा का निर्माण का अर्थ साख सृजन से है । बैंक जमा का एक विशिष्ट रूप है - साख जमा। साख, मुद्रापूर्ति का एक महत्वपूर्ण अग है।[2] हैरॉड, डोमर और शुम्पीटर ने अर्थव्यवस्था के विकास के सदर्भ में प्रवैगिक सिद्धान्तों या सवृद्धि-मॉडल का निर्माण किया तथा यह तर्क प्रस्तुत किया कि मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य, साधनों की एक दी गयी मात्रा के पूर्ण प्रयोग का नहीं, बल्कि साधनों की मात्रा में ही वृद्धि की है । अल्पविकसित देशों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ, क्योंकि इसकी मुख्य समस्या मूल्य की स्थिरता तथा प्रभावी माग की वृद्धि की नहीं, बल्कि उत्पादन के साधनों तथा उत्पादकता में वृद्धि की है। इस प्रकार इन देशों में मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य 'स्थिरता के साथ आर्थिक विकास' है । भारतीय रिजर्व बैंक ने अपने देश में मौद्रिक नीति के उद्देश्य के सम्बन्ध में **नियन्त्रित विस्तार** की नीति को प्रतिपादित किया है।[3]

मौद्रिक तथा साख नीति किसी भी देश की आर्थिक परिस्थितियों, नीतियों आदि द्वारा निर्धारित होती है। आर्थिक विकास में मौद्रिक नीति का योगदान तभी अधिकतम् कहा जायेगा, जब यह पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के साथ ही साथ मूल्य को एक निश्चित सीमा के अदर रखे । मिल्टन फ्रीडमैन ने अपने एक अध्ययन में यह दिखाया है कि सयुक्त राज्य अमेरिका में 1953 से आर्थिक

---

1. Harry G. Johnson, Monetary Theory and Policy, American Economic Review, 1962.

2. R.S. Sayers, Modern Banking, p.213.

3. Reserve Bank of India, Trend and Progress of Banking in India 1956, p. 56.

विकास की दर और अधिक रही होती, यदि प्रभावी माग को उत्पादन क्षमता के बराबर रखा गया होता । अल्पविकसित देशों के सदर्भ में वैन फिलिप्स का मत है कि इन देशों में अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या गत्यावरोध को दूर करने की नहीं है, बल्कि इन अर्थव्यवस्थाओं के वाछित तथा प्रवैगिक विकास के द्वारा इसे भेदने की है। [4] रैडक्लिफ समिति ने आर्थिक नीति के उद्देश्य को, जिससे मौद्रिक नीति सम्बन्धित है, बहुत ही उलझनपूर्ण बताया है, अल्पकाल में ये प्रत्यक्ष रूप से विरोधी हो सकते हैं और केवल समन्वय के द्वारा ही दीर्घकाल में इनमें सन्तुलन की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। [5] मोटे तौर पर मौद्रिक नीति का सम्बन्ध अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के तीन स्वरूपों में देखा जा सकता है -

1. मौद्रिक नीति से देश के राष्ट्रीय आय, उत्पादन, रोजगार, विनियोग तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव ।
2. मौद्रिक नीति द्वारा मूल्य स्थायित्वता ।
3. मौद्रिक नीति के द्वारा विकास के साथ सामाजिक न्याय अर्थात् विकास की प्राथमिकता, क्षेत्रीय असन्तुलन, गरीबी, बेरोजगारी तथा पिछडे क्षेत्रों का विकास ।

जहा मौद्रिक नीति का सम्बन्ध आर्थिक विकास के उपरोक्त रूपों से सामान्य रूप से जुडा है, वहीं भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में यह विशेषरूप से महत्वपूर्ण है । यह महत्व

---

4. Van Philips, Public Finance and Less Developed Economy , p.58.

5. "The aims of economic policy to which monetary action is related, are complex, they can be directly in conflict with each other in the short term and only by adjustment can be held in balance in the long", Radcliffe Committee Report, p. 337.

जहा विकास के साथ मूल्य स्थितरता को प्राप्त करने से है, वहीं विशेषरूप से कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से सम्बंधित है । आर्थिक विकास में प्राथमिकता की दृष्टिकोण से देश के केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति में महत्वपूर्ण और सरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं । और यह परिवर्तन परम्परावादी मौद्रिक नीति से हटकर साख नीति के रूप में परिणित होता जा रहा है । यद्यपि मोटे तौर पर मौद्रिक और साख नीति में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं है, परन्तु साख नीति के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें विशेष हैं, जो सामान्यरूप से मौद्रिक नीति में परिलक्षित नहीं होती । मौद्रिक नीति के तुलना में साख नीति मुद्रापूर्ति के मात्र समग्रता को ही नहीं देखती, बल्कि विभिन्न क्षेत्रों तथा मुद्रा के आवटन से सम्बंधित है । मौद्रिक और साख नीति में इस तरह भेद करना इसलिये भी महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि इससे दोनों नीतियों के स्वरूप और उनके रूप निर्धारण को समझने में सहायता मिलेगी।

अल्पविकसित देश गरीबी के कुचक्र में फसे हुये हैं । इनमें आय, रोजगार तथा पूजी निर्माण का स्तर अत्यन्त नीचा है । इस प्रकार से ये एक तरह से अल्प स्तर के संस्थिति जाल में फसे हुये हैं । इन देशों की मुख्य समस्या इस 'जाल' से निकलने की है । डा0 पी0 डी0 हजेला ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि जैसा हम जानते हैं कि मौद्रिक नीति का अभिप्राय उन नियमों से है, जिनसे किसी देश की सरकार तथा केन्द्रीय बैंक उस देश की आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्यों को पूरा करने के लिये प्रयोग की जाती है।[6]

एक प्रभावपूर्ण मौद्रिक एव साख नीति के लिए यह आवश्यक है कि देश में एक शक्तिशाली केन्द्रीय बैंक हो । केन्द्रीय बैंक एक ओर वित्तीय सस्थाओं तथा मौद्रिक एव साख नीति का सचालन करता है ,वहीं दूसरी ओर सरकार के बैंक के रूप में कार्य करता है । आज जब अल्पविकसित देशों ने अपने आर्थिक विकास के लिए योजनाबद्ध तकनीक को अपनाया है, केन्द्रीय बैंक का महत्व इन देशों में और भी बढ गया है ।

---

6. P.D. Hajela, The problems of Monetary Policy In Underdeveloped Countries, p. 23.

भारत के मौद्रिक नीति के निर्माण एव क्रियाशीलन तथा साख मुद्रा प्रणालियों पर पूर्ण नियत्रण एव समायोजन स्थापित करने के उद्देष्य के दृष्टि से 1930 में केन्द्रीय बैंकिग जाच समिति ने एक केन्द्रीय बैंक स्थापित करने का सुझाव दिया, फलस्वरूप एक अप्रैल, 1935 में भारतीय रिजर्व बैंक, एक केन्द्रीय बैंक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया । आगे चल कर 1949 में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया । भारतीय रिजर्व बैंक के राष्ट्रीय करण के साथ ही कृषि वित्त के क्षेत्र में इसकी भूमिका विशेष रूप से बढ गयी । इसकी भूमिका जो अभी तक इस क्षेत्र में निष्क्रिय थी, वह अब सहकारी बैंकों को वित्तीय सहयोग देने तथा कृषि साख से सम्बंधित मामलों में विशेषज्ञ सलाह देने जैसा महत्वपूर्ण कार्य हो गया ।

भारतीय रिजर्व बैंक, केन्द्रीय बैंक होने के नाते इसका प्रमुख कार्य देश में मौद्रिक स्थायित्वता स्थापित करना एव साख-मुद्रा का नियत्रण करना है । हमारे देश में साख नियत्रण भारतीय रिवर्ज बैंक अधिनियम तथा बैंकिग नियत्रण अधिनियम द्वारा होता है । भारतीय रिजर्व बैंक, बैंक दर, खुले बाजार की क्रियाए नकद कोषों के अनुपात में परिवर्तन, चयनात्मक साख नियत्रण, नैतिक प्रभाव नीति आदि विधियों से साख नियत्रण का कार्य करता है । इस तरह रिजर्व बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य मुद्रा और साख के लिए नीति निर्धारण करना है । भारत जैसे विकास शील देशों में मौद्रिक नीति का प्रधान उद्देश्य अत्यल्प बचत से, विशेषकर ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्रों से अधिक से अधिक बचत निकाल कर अर्थव्यवस्था में लगाना है, क्योंकि यहा की मुख्य समस्या पूजी की कमी है, परिणामस्वरूप उत्पादन तकनीक और उत्पादन स्तर नीचा है। इसके अलावा ब्याज दर के ढाचे, साख नियत्रण, सार्वजनिक ऋण व्यवस्था में परिवर्तन से है, जिससे आर्थिक विकास को और अधिक गति प्राप्त हो सके।

भारत में कृषि, आय का एक प्रमुख स्रोत है, किन्तु यह अपनी निम्न उत्पादिता के कारण विकास में बाधक है । भारत की 72 प्रतिशत जनसख्या कृषि एव कृषि आधारित

उद्योगों से जुडी है। [7] फिर भी हम अभी तक कृषि को एक उन्नतिशील व्यवसाय का रूप नहीं दे सके हैं । ग्रामीण ऋण ग्रस्तता का मूल कारण कृषको की दयनीय आर्थिक स्थिति है, वे अपनी अत्यन्त अल्प आय में से अपनी आधार भूत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकते हैं । हरित-क्रान्ति एव कृषि की नवीन तकनीक से पजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों के किसानों की स्थिति में सुधार हुआ है, जब कि शेष क्षेत्रों में किसानों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है । केन्द्रीय बैंकिग इन्क्वायरी कमेटी ने भी अपने प्रतिवेदन में ब्रिटिश भारत में कृषकों की दयनीय स्थिति की चर्चा की हे । यह कहावत कि एक कृषक गरीबी में पैदा होता है, गरीबी में जीता है और गरीबी में मरता है, भारतीय किसानों के लिए अतिशयोक्ति नही कही जायेगी । वैसे इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि युद्ध काल (1939-45) और उसके बाद प्रगति के फलस्वरूप ग्रामीण कर्ज में वास्तकविक कमी आयी है, फिर भी छोटे जमीनदारों और कास्तकारों तथा कृषि-मजदूरों की स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है । द बाम्बे प्राविंसियल कोआपरेटिव इन्सटीट्यूट तथा डा0 बी0वी0 नारायणस्वामी नायडू (मद्रास) ने भी अपने एक अध्ययन में इस तथ्य को स्वीकार किया है ।

कृषि वित्त दो स्रोतों से प्राप्त होता है, पहला, सस्थागत और दूसरा, गैर सस्थागत स्रोत। स्वतत्रता प्राप्ति के समय अधिकाश साख गैर-सस्थागत स्रोतों द्वारा ही प्रदान किया जाता था, लेकिन स्वतत्रता प्राप्ति के बाद विशेषकर जब से हमने पचवषीर्य योजनाए बना कर विकास कार्य प्रारम्भ किया, इस स्थिति में सुधार हुआ है। गैर सस्थागत स्रोतों से 1951 - 52 से 1978 - 79 तक प्राप्त कृषि साख का विवरण हम सारणी सख्या 1 1 में देख सकते हैं ।

---

7. Dr. Mali Ram, Currency and Banking, 1965, p. 364.

सारणी । ।

कुल कृषि साख में गैर - सस्थागत स्रोतों का भाग

वर्ष	कुल योग का प्रतिशत
1951 - 52	93 6
1961 - 62	85 0
1971 - 72	75 0
1978 - 79	65 0

स्रोत - रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, मल्टी एजेन्सी एप्रोच इन एग्रीकल्चरल फाइनेन्स, 1978

इसमें कोई सन्देह नही है कि 1955 से, जब इम्परियल बैंक, भारतीय स्टेट बैंक में पारिवर्तित हुआ तथा उससे कृषि - वित्त की बढती हुई माग को पूरा करने के लिए कहा गया और विशेषकर 1968 में व्यापारिक नैंकों पर नियत्रण तथा 1969 में देश के चौदह बडे व्यापारिक बैंकों एव 1980 में अन्य छ व्यापारिक बैंकों के पुन राष्ट्रीयकरण के बाद (ये 20 राष्ट्रीकृत बैंक देश के कुल बैंकिग व्यावसाय का 90 से 95 प्रतिशित पूरा करते हैं) कृषि वित्त के क्षेत्र में सस्थागत साख (व्यापारिक बैंक तथा सहकारी समितिया एव अन्य विशिष्ट सस्थाए) में उल्लेखनीय प्रगति हुई । इस प्रकार सस्थागत साख, जो 1951-52 में लगभग 6 प्रतिशत थी, वह 1978-79 में बढकर 35 प्रतिशत हो गयी । एक अनुभव के अनुसार, वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र में आवश्यक कुल अल्पकालीन साख का लगभग 56 प्रतिशत तथा सभी विनियोग सस्थागत सस्थाओं द्वारा पूरा किया जा रहा है ।

राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत कृषि साख को पूरी तरह सस्थागत रूप देने के निमित्त सगठनात्मक ढाचा को स्थापित करने और विकास का सम्पूर्ण दायित्व भारतीय रिजर्व बैंक की है। इससे ग्रामीण साहूकारों द्वारा किसानों का शोषण समाप्त होगा और उनके द्वारा दिये जाने वाले ऋण का स्थान सस्थागत स्रोत ले लेंगे, जिससे किसानों की ऋण आवश्यकता को एक राष्ट्रीय साख नीति के अनुसार पूरा किया जा सकेगा । इस दिशा में पहला प्रयास 1904 में सहकारी व्यवस्था के उदगम् से हो गया था।[8] यद्यपि स्वतत्रता प्राप्ति तक इसका कोई विशेष प्रभाव देखने को नहीं मिला था, लेकिन इसके प्रभाव का ही परिणाम था कि 1954 में ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति द्वारा प्रतिपादित समन्वित ग्रामीण साख योजना को सरकार ने स्वीकार किया । इस योजना का उद्देश्य बैंकिग सस्थाओं तथा सहकारी सस्थाओं द्वारा कृषि साख को पूरी तरह सस्थागत बनाना था । ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1954) तथा ऑल इण्डिया रूरल डेब्ट एण्ड इनवेस्टमेन्ट - सर्वे ने गैर सस्थागत तथा सस्थागत स्रोतों द्वारा दिये गये कृषि ऋण का विवरण प्रस्तुत किया था। सारणी 1 1 में विभिन्न स्रोतों द्वारा विभिन्न वर्षो में दिये गये कृषि वित्त का विवरण प्रस्तुत है ।

सारणी 1 2

कृषि वित्त व्यवस्था में विभिन्न स्रोतों का स्थान

(प्रतिशत मे)

	स्रोत	1951-52	1961-62	1968-69
1	सरकार	3 3	2 6	9 7
2	सहकारी समितिया	3 1	15 5	33 0
3	व्यापारिक बैंक	0 9	0 6	5 3
4	साहूकार एव जमींदार आदि	90 9	67 9	52 0
5	अन्य योग	1 8	13 9	0 0

Source - Report of the All India Rural Credit Review Committee, 1969, p. 100.

8. B.N. Choubey, Agricultural Banking in India, 1983, P. 12.

भारत सरकार ने रिजर्व बैंक से उपरोक्त योजना के एकीकरण और पूर्ण करने का अनुरोध किया था तथा सहकारी समितियों को पर्याप्त धन की व्यवस्था करने को कहा । 1969 तक सरकार इस नीति के द्वारा ही सस्थागत साख के विकास में लगी थी, किन्तु इसके बाद सहकारी साख सस्थाओं के परिणामों की समीक्षा करने के बाद सरकार इस निष्कर्ष पर पहुची कि अधिक कृषि उत्पादन प्राप्त करने के लिए कृषि साख की तेजी से बढती हुई माग को पूरा करने के लिये सहकारी सस्थाओं को सुदृढ होने का इतजार नहीं किया जा सकता । फलस्वरूप सरकार ने कृषि साख की आवश्यकता को पूरा करने के लिए बहु उद्देशीय उपागम नीति को अपनाया । अल्पकालीन तथा मध्यकालीन साख के सदर्भ में गाडगिल कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया है कि उन राज्यों को छोड कर, जहा सहकारी सस्थाए पूर्ण रूप से विकसित एव सक्रिय हैं, शेष राज्यों में कृषि साख सस्थाए स्थापित की जाए ।

अमेरिकन रिफार्म कमेटी का यह मानना हे कि सभी लघु कालीन और दीर्घकालीन सस्थागत साख सुविधाए सहकारी सस्थाओं तथा भूमि विकास बैंकों के माध्यम से सम्पादित होना चाहिए । कृषि क्षेत्र के लिए आसान और उचित वित्त व्यवस्था में सलग्न सहकारी आन्दोलन को पुनर्गठित किया जाना चाहिए ।

कृषि के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग ने अपनी रिपोर्ट में दिखाया हे कि 1973-74 में सस्थागत स्रोतों (जैसे सहकारी समितिया, तथा व्यापारिक बैंक आदि) से कृषि साख, जो 1967-68 में लगभग 38 प्रतिशत था, में बहुत मामूली परिवर्तन हुआ है । इस रिपोर्ट के अनुसार इसी वर्ष के लिए अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा कमेटी के अनुमान के अनुसार कुल आवश्यक साख रू0 4000 करोड में से कृषि क्षेत्र के लिए रू0 1,537 करोड (38 प्रतिशत) की गणना की गयी, जिसमें से रू0 919 करोड (23 प्रतिशत) व्यापारिक बैंकों द्वारा किया गया ।

भारत में कृषि से सम्बंधित वित्तीय आवश्यकताओं को तीन भागों में बाटा जा सकता है- (1) अल्पकालीन या मौसमी साख, (2) मध्यकालीन साख, (3) दीर्घ कालीन साख । अल्पकालीन साख के लिए रिजर्व बैंक कृषि साख की पूर्ति केवल राज्य सहकारी बैंक तथा अनुसूचित बैंकों के माध्यम से करता है । इस प्रकार कृषक सीधे रिजर्व बैंक से सम्पर्क में नहीं आता है । भारतीय रिजर्व बैंक कृषि साख की दिशा में कई कदम उठाये हैं । रिजर्व बैंक ने कृषि विकास में कृषि साख की आवश्यकता को देखते हुये एक अलग कृषि साख विभाग की स्थापना की है, जिसके द्वारा कृषि वित्त के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करके तथा विशेषज्ञ के रूप में सलाह देकर और कृषि सहकारी वित्त से सम्बंधित महत्वपूर्ण रिपोर्ट तथा साहित्य प्रकाशित करके रिजर्व बैंक अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। यह विभाग केन्द्र और राज्य सरकार, सहकारी बैंकों तथा अन्य वित्तीय सस्थाओं को अपना बहूमूल्य परामर्श देता है । यह राज्य सहकारी बैंकों तथा भूमि विकास बैंकों को स्वीकृत प्रतिभूतियों तथा ऋण पत्रों के आधार पर अल्पकालीन साख प्रदान करता है । यह भूमि विकास बैंकों के ऋण पत्र खरीद कर उनकी कार्यशील पूजी में वृद्धि करता है। बैंक लाइसेन्स प्राप्त गोदामों में रखी कृषि उपज के आधार पर ऋण देता है । क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सस्ती दरों पर ऋण देता है ।

जुलाई 1982 में भारतीय रिजर्व बैंक की कृषि साख विभाग के सभी महत्वपूर्ण कार्यो और कृषि वित्त एव विकास निगम के समस्त दायित्वों को अलग से राष्ट्रीय बैंक स्थापित करके, इसके अधीन कर दिया गया।इस बैंक का नाम राष्ट्रीय कृषि ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) रखा गया । राष्ट्रीय स्तर पर कृषि एव साख के सदर्भ में ग्रामीण विकास हेतु नाबार्ड की स्थापना अपना विशेष महत्व रखती है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में यद्यपि केन्द्रीय बैंक का योगदान प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व से ही रहा है, परन्तु योजनाबद्ध आर्थिक विकास के बाद इसका विशेष महत्व रहा है, यद्यपि प्रारम्भ में मौद्रिक नीति को सीधे आर्थिक विकास से

नहीं जोडा गया था, फिर भी विभिन्न रूपों में मौद्रिक नीति के महत्व को स्वीकार किया गया था । प्रथम पचवर्षीय योजना में मौद्रिक तथा साख नीति का प्रधान उद्देश्य साख की सुविधाओं द्वारा औद्योगिक व कृषि उत्पाद में वित्त उपलब्ध करना था । अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति के नियन्त्रणात्मक दृष्टिकोण से साख नीति सामान्य तथा नियन्त्रित एव प्रतिबन्धित थी, यद्यपि नियोजकों ने इस बात को माना कि मुद्रापूर्ति की वृद्धि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ निश्चित रूप से कुछ न कुछ स्फीतीकारी होगी । द्वितीय पचवर्षीय योजना में मौद्रिक नीति को एक विशेष मान्यता इस रूप में प्राप्त हुयी कि पूरी आर्थिक क्रियाओं के नियन्त्रण में तथा स्फीतिकारी दबावों को रोकने में यह महत्वपूर्ण है, यद्यपि घाटे की वित्त व्यवस्था को विकास के लिए मान्यता दी गई, फिर भी परिमाणात्मकतथा चयनात्मक विधियों के द्वारा साख को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया । इस योजना में मोटे तौर पर मौद्रिक नीति सफल न हो सकी, क्योंकि इसकी वित्तीय नीति से आवश्यक समन्वय स्थापित नहीं किया जा सका ।

तृतीय पचवर्षीय योजना में भी मुद्रा स्फीति को रोकने के दृष्टिकोण से मौद्रिक और वित्तीय नीतियों को सहारा लिया गया तथा घाटे की वित्त व्यवस्था को न्यूनतम करने का प्रयत्न किया गया । साख नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके छोटे उद्योगों और सहकारी क्रियाओं को प्रोत्साहित किया गया । साख को प्रतिबन्धित किया गया, परन्तु इसके बावजूद भी तृतीय योजना में मौद्रिक नीति सामान्यत वृद्धिकारी ही रही, जिसमें मुद्रापूर्ति तथा साखकी मात्रा में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। चौथी पचवर्षीय योजना में लगातार बढते हुए मूल्य को नियन्त्रण करने के दृष्टिकोण से माग और पूर्ति में समानता रखते हुए घाटे की वित्त व्यवस्था को निर्धारित करने का उद्देश्य रखा गया । 1969 में 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण हो जाने के कारण विकास क्षेत्र की प्रधानता तथा प्राथमिकता के आधार पर साख प्रवाह किया गया और उपेक्षित क्षेत्रों के विकास में सहयोग किया गया । पाचवी योजना में विशेष रूप से मुद्रा स्फीति विरोधी उपायों को प्रधावनता दी गई । इस योजना में मौद्रिक तथा वित्तीय नीति के विशेष समन्वय पर जोर दिया गया और मुद्रा साख के विस्तार पर प्रतिबन्ध

लगाने के दृष्टिकोण से बैंक दरको 7 प्रतिशत से बढाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया।

पाचवी योजना के बाद भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक और साख नीति कृषि तथा लघु उद्योगों की ओर विशेषरूप से रही । क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना, लीड बैंक स्कीम तथा समन्वित ग्रामीण विकास योजना, शिक्षित ग्रामीण बेरोजगार योजना तथा ग्रामीण औद्योगिकरण सम्बन्धित अनेक आर्थिक क्रियाओं से विशाल पैमाने तथा पर रियायती तथा उदार बैंक ऋण एव साख की व्यवस्था की गई ।

छठीं योजना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि इसका निर्माण दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में किया गया।विकासगत समस्याओं के निदान हेतु इसमें पद्रह वर्षीय कार्यक्रम निर्धारित किया गया था । योजना का कार्यक्रम न केवल सकल राष्ट्रीय उत्पादन, उपभोग, रोजगार, बचत एव विनियोग जैसे परम्परागत तत्वों पर आधारित था, बल्कि इसका विकास गरीबी के प्रतिशत, सम्भावित आयु, खाद्यान्न, चीनी, वस्त्र आदि उपभोग एव शिक्षा के दीर्घकालिक स्तरों के सदर्भ में भी किया गया था । इस योजना में समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम को देश के सभी विकास खण्डों में प्रारम्भ कर दिया गया । छोटे एव सीमान्त कृषकों तथा भूमिहीन मजदूरों के विकास के लिये कृषि एव सहायक व्यवसायों को विकसित किया गया । किन्तु इस योजना में सफीतिकारी प्रवृत्ति को रोकने का कोई ठोस प्रयास नहीं सुझाया गया था । योजनाकाल में सवृद्धि नवीनीकरण, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुयी । छठीं योजना में विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 5 2 प्रतिशत था, जिसे योजनाकाल में प्राप्त कर लिया गया था ।

सातवीं योजना में नये भारत के निर्माण की सकल्पना की गयी । यह योजना कुछ मायनों में पिछली सभी योजनाओं से भिन्न थी । सातवीं योजना भी दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में तैयार की गयी थी, जिसका लक्ष्य अगले 15 वर्षो अर्थात् सन् 2000 ई तक स्वत पोषित अर्थव्यवस्था का होना है । ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यो के साथ समन्वय किया गया । इन कार्यक्रमों को ग्राम पचायतों तथा अन्य स्थानीय सस्थाओं के माध्यम से लागू किया गया । एकीकृत ग्राम्य विकास परियोजना तथा

राष्ट्रीय ग्राम्य रोजगार परियोजना के कार्य को और अधिक व्यापक किया गया है । सातवीं योजना में कृषि विकास एव सिचाई पर अधिक जोर दिया गया । कृषि विकास की गति को तेज करना और अधिक उपभोग के लिये खाद्यान्नों एव खाद्य तेलों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना इस योजना के आधारभूत लक्ष्य थे । योजना में ग्रामीण एव लघु उद्योगों को महत्वपूर्ण स्थान पहले की योजनाओं के अनुरूप ही दिया गया, योजना में इस बात पर विशेष बल दिया गया हे कि पहले से चली आ रही परियाजनाओं को पूरा किया जाये । सातवी योजना में विकास दर 5 प्रतिशत वार्षिक रखी गयी, जो छठी योजना से कम थी । सातवीं योजना में कृषकों की साख आवश्यकता की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रयास किये गये । सहकारी समितियों को विभिन्न चरणों में बहु-उद्देश्यीय समितियों में परिवर्तित करने की योजनाए बनाई गयी, जिससे कृषकों को विभिन्न सुविधाए एक साथ ही तथा एक ही स्थान पर उपलब्ध कराया जा सके ।

कृषि और ग्रामीण क्षेत्रों के सम्यक विकास तथा समस्याओं के समाधान हेतु विशेष सन्दर्भ में ग्रामीण साख तथा बैंक सुविधाओं के बढते हुए महत्व से जहा यह आशा की जा रही है कि इससे ग्रामीण क्षेत्रों का विकास होगा और देश की मूल भूत समस्याओं का समाधान होगा, वहीं इनसे सम्बन्धित अध्ययनों, सर्वेक्षणों और अनुभवों से यह भी शका व्यक्त की जा रही है कि व्यापक पैमाने पर ग्रामीण क्षेत्रों में साख और वित्त का यह प्रवाह अधिकाशत अनुत्पादक तथा अनियोजित ढग से हो रहा है, जिससे विकास की क्रियाओं को प्रोत्साहन न मिल कर गैर उत्पादक व्यय तथा मुद्रास्फीति बढ रही है, साथ ही बैंक साख की वापसी की भी महत्वपूर्ण समस्या है । फलत ग्रामीण क्षेत्र के लिए उपलब्ध साख सुविधायें अपेक्षित रूप से लोगों तक नहीं पहुच पा रही है और न ही उनका उपयुक्त और निर्धारित उद्देश्यों में प्रयोग ही हो रहा है । मौद्रिक और साख नीति के सामने यह एक बहुत बडी समस्या और चुनौती है कि ग्रामीण साख और बैंकिग सुवधिाओं को इस प्रकार उत्पादक तथा विकास मूलक बनाया जाय ।

1.1 अध्ययन का उद्देश्य -

उपरोक्त बातों के सदर्भ में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अध्ययन का यह प्रमुख उद्देश्य है कि प्रथमत भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक एव साख नीतियों का एक आलोचनात्मक मूल्याकन प्रस्तुत करके उसकी दिशा तथा प्रवृत्ति को बताये।

दूसरे, मौद्रिक तथा साख नीति का आर्थिक विकास और मूल्य स्थायित्वता में योगदान का परिक्षण करे ।

तीसरे, मौद्रिक तथा साख नीति की वर्तमान प्रवृत्ति कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र के विकास तथा समस्याओं के लिए कहा तक उपयुक्त हैं ।

चौथे, कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक साख तथा साख सुवधियें कहा तक विकास नीतियों और विकास योजनाओं से जुडी है ।

पाचवे, ग्रामीण साख तथा बैंक वित्त के उत्पादक और उपयुक्त प्रयोग में क्या-क्या बाधाए और रूकावट हैं ।

छठें, ग्रामीण क्षेत्रों के सम्यक विकास और विशेषकर ग्रामीण औद्योगीकरण की द्रुष्टिकोण से मौद्रिक और साख का क्या स्वरूप होना चाहिए, इससे सम्बन्धित उपयुक्त सुझाव ।

1.2 शोध - अध्ययन की परिसकल्पना

भारती रिजर्व बैंक मौद्रिक एव साख नीति के मूल्याकन और कृषि क्षेत्र के विशेष सदर्भ में उनके योगदान के सम्बध में प्रस्तुत अध्ययन की निम्न परिसकल्पनाए होगी -

1 क्या मौद्रिक एव साख नीति विकास मूलक रही है अथवा स्फीतिजनक,

2 क्या मौद्रिक एव साख नीति अब भी केन्सीय सस्ती नीति का ही एक रूप है,

3 मौद्रिक तथा साख नीति का कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र की ओर झुकाव एक सही दिशा व कदम है,

4 ग्रामीण साख एव बैंकिग व्यवस्था कृषि विकास के लिए लाभकारी सिद्ध हुई है ।

1.3 शोध - अध्ययन विधि

उपरोक्त परिसकल्पनाओं के प्रत्यक्षीकरण को भारतीय आर्थिक विकास के अनुभवों तथा, कृषि क्षेत्रों में बैंकिग और साख उपलब्धियों के सदर्भ में किया जायेगा । शोध की विधि मूलत विश्लेषणात्मक है, जिसमें प्रकाशित ग्रन्थों, सर्वेक्षणों, रिपोर्टो तथा अन्य सरकारी द्वितीयक आकडों और विवरणों के आधार पर किया गया है । इस तरह शोध अध्ययन के आधार पर यह आशा की जाती है कि देश के आर्थिक विकास के सदर्भ में उपयुक्त मौद्रिक एव साख नीति का निर्माण किया जा सकेगा और देश के आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्य को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में प्राप्त किया जा सकेगा।

भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति और ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र में विकास सम्बन्धी योगदान का परीक्षण करने हेतु कुछ सैद्धान्तिक विश्लेषणों को भी दिया गया है । विशेषकर मुद्रा पूर्ति के सम्बध में विभिन्न सिद्धान्तों का परीक्षण किया गया है और साथ ही साथ मौद्रिक तथा साख सिद्धातों का विवरण नीतिनिर्माण हेतु प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध के अध्ययन-विधि सम्बन्धी विश्लेषण हेतु विभिन्न द्वितीयक आकडे तथा उनकी प्रवृत्तियों का विश्लेषण सारणी के द्वारा किया गया है । मुख्य रूप से द्वितीयक आकडे भारतीय रिजर्व बैंक के 'रिपोर्ट आन करेन्सी एण्ड फाइनेन्स,' तथा मथली बुलेटिन, भारत सरकार का इक्नामिक सर्वे, स्टेट बैंक आफ अण्डिया का मथली रिब्यू, नाबार्ड की एनॅवल रिपोर्ट आदि से प्राप्त किया गया है ।

मुद्रा पूर्ति, राष्ट्रीय आय तथा मूल्य स्तर के पारस्परिक सम्बन्ध को सह सबध गुणाक, प्रतिशत, अनुपात आदि साँख्यिकीय विधियों से विश्लेषित किया गया है । कृषि क्षेत्र में बढ़ती हुयी साख की आवश्यकता और सम्यक ग्रामीण और कृषि के विकास के परिप्रेक्ष्य में जहा नाबार्ड के विश्लेषण सम्बन्धी सारणियों को प्रस्तुत किया गया है, वही कृषि के भॉवी आश्यकताओं से सम्बन्धित प्रक्षेप सम्बन्धी अनुमानित आकडों को भी दिया गया है । आकडों के साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक के बैंक-दर में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए अध्ययन विधि में इस बात की विवचेना की गयी है कि भारतीय मौद्रिक नीति कहा तक सस्ती मुद्रा एव साख नीति रही है । कृषि क्षेत्र में प्रदत्त साख को अल्प कालीन, मध्य कालीन तथा दीर्घ कालीन के रूप में रखकर इस बात को देखने का प्रयास किया

है कि कहा तक मौद्रिक एव साख नीति सीमान्त और भूमिहीन कृषकों के लिये उपयोगी सिद्ध हुयी है । व्यवस्थित अध्ययन की दृष्टिकोण से प्रस्तुत अध्ययन विधि में विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं में एक साथ क्रमबद्ध रूप में मौद्रिक एव साख नीति की विवेचना किया गया है, जो भारतीय कृषि क्षेत्र में साख सम्बन्धी आश्यकताओं और नियोजन के सम्बध में उपयोगी सिद्ध होगी । साथ ही साथ इस बात का भी विश्लेषण करने में ध्यान रखा गया है कि भविष्य में कृषि सवम्बधी साख आश्यकताओं को पूरा करने में नाबार्ड तथा अन्य वित्तीय सस्थाओं में क्या सस्थागत तथा सरचनात्मक परिवर्तन किया जाय कि कृषि क्षेत्र का नवीन विकास परिस्थितियों एव समस्याओं में उपयुक्त समाधान किया जा सके ।

1.4 उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

शोध विषय के अध्ययन और विश्लेषण के सबध में यह सहत्वपूर्ण होगा कि सम्बन्धित शोध विषय पर उपलब्ध साहित्य का अवलोकन तथा समीक्षा की जाय । कृषि एव ग्रामीण क्षेत्रों में बढती हुयी वित्तीय सस्थाओं द्वारा प्रदत्त एक आगत के रूप में साख एव ऋण वर्तमान कृषि एव ग्रामीण विकास के सदर्भ में शोध और अध्ययन महत्वपूर्ण विषय रहा है । यहा हम उपलब्ध साहित्य के अवलोकन में सैद्धान्तिक पक्ष एव मौद्रिक और साख नीति एव नियोजन हेतु व्यवहारिक

पक्ष को भारतीय मौद्रिक दशाओं की परिस्थितियों में विश्लेषण करेंगे । प्रो0 एस0 बी0 गुप्त ने अपने शोध ग्रन्थ 'मॉनेट्री प्लानिग फॉर इण्डिया' में मुद्रा पूर्ति तथा भारतीय रिजर्व बैंक के लेखा-जोखा विश्लेषण का सैद्धान्तिक पक्ष दिया है । साथ ही साथ भारतीय रिजर्व बैंक के अन्य वित्तीय सस्थाओं एव गैर बैंकिग वित्तीय सस्थाओं की उपादेयता का परीक्षण किया है, उन्होने अपने निष्कर्ष में इस बात पर बल दिया है कि भारत जैसे नियोजित अर्थव्यवस्था में मुद्रा एव साख नीति भी नियोजित होना चाहिए और उसका परिप्रेक्ष्य एक दीर्घकालीन साख और मौद्रिक नियोजन होना चाहिए । उन्होने मुद्रा पूर्ति निर्धारण तथा साख - निर्धारण सम्बंधित सैद्धांतिक पक्षों को देकर इस बात का परीक्षण किया है कि भारत के वास्तविक कृषि क्षेत्र में साख का निर्धारण एव वितरण किस तरह किया जाता है। इसी तरह प्रो0 पी0 डी0 हजेला ने अपने ग्रन्थ में मौद्रिक सिद्धान्तों तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का परिप्रेक्ष्य देकर इस बात को स्पष्ट किया है कि भारतीय मौद्रिक नीति मोटे तौर पर सस्ती मुद्रा नीति तथा स्फीतिकारी मौद्रिक नीति रही है । उन्होने अपने अध्ययन में ग्रमीण साख व्यवस्था का महत्वपूर्ण विश्लेषण किया है और इस बात का प्रस्ताव रखा है कि उपयुक्त साख नियोजन द्वारा ही स्फीतिकारी प्रवृत्तियों पर रोक लग सकती है और मूल्य स्थायित्वता प्राप्त की जा सकती है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रा एव साख के सैद्धान्तिक विश्लेषण के बाद यह महत्वपूर्ण होगा कि भारत के विभिन्न पच वर्षीय योजनाओं में प्रयुक्त मौद्रिक एव साख नीति का विवेचना किया जाय । इस दृष्टिकोण से डा0 सी0 आर0 बसू ने 'सेन्ट्रल बैंकिग इन ए प्लान्ड इकोनॉमी, दि इण्डियन एक्सपेरिमेन्ट' में विभिन्न पच वर्षीय योजनाओं में प्रयुक्त मौद्रिक एव साख नीति एव उपायों का व्यवस्थित विश्लेषण दिया है । इस विश्लेषण के आधार पर हम अपने शोध कार्य में आठवी पच वर्षीय योजना एव उसके बाद की साख नीति एव नियोजन के स्वरूप को निर्धारित कर सकते हैं । साथ ही साथ विभिन्न पच वर्षीय योजनाओं में प्रयुक्त मौद्रिक एव साख उपायों की उपब्धियों तथा असफलताओं का विश्लेषण शोध के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, अध्ययन के इसी क्रम में प्रो0 एस0

एस0 मिश्र ने 'मॅनी इनफ्लेशन एण्ड ग्रोथ,' में मुद्रा पूर्ति तथा मुद्रा स्फीति सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन किया है और यह दिखाया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास सदैव स्फीतिकारी रहा है।

मुद्रा पूर्ति विश्लेषण के सम्बध में भारतीय रिजर्व बैंक के प्रथम वर्किंग ग्रूप की रिपोर्ट (1961) तथा बाद में सेकेण्ड वर्किंग ग्रूप की रिपोर्ट (1977) का उल्लेख महत्वपूर्ण होगा । प्रथम रिपोर्ट के आधार पर भारतीय मुद्रा पूर्ति के विश्लेषण को शुद्ध बैंकिग सैद्धान्तिक तथा मौद्रिक दायित्वता तथा वित्तीय आदेयों के समानता के आधार पर किया गया है । इसमें मुद्रा पूर्ति की अवधारणा को सकीर्ण रूप में लिया गया है और व्यापारिक बैंक तथा सहकारी बैंकों के समय जमाओं को मुद्रा पूर्ति से बाहर रखा गया है । दूसरी परिवर्तित दशाओं के सम्बध में दी गयी रिपोर्ट मुद्रा पूर्ति की व्यापक अवधारणा को स्पष्ट करती है तथा मुद्रा पूर्ति को चार स्वतत्र चरों में विभक्त करके विश्लेषण करती है। इन उपर्यक्त रिपोर्टो के साथ प्रारम्भिक विश्लेषण के लिये भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित 'फक्शन एण्ड वर्किंग आफ दि रिजर्व बैंक आफ इण्डिया,' पुस्तिका' भी महत्वपूर्ण है । इसमें केन्द्रीय बैंक के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यो तथा कार्यवधि पद्धति का विश्लेषण किया गया है, जो विभिन्न मौद्रिक नियत्रणों तथा उपायों के विश्लेषण हेतु विशेषकर भारतीय कृषि क्षेत्र में चयनात्मक साख नियत्रण विधि के लिये महत्वपूर्ण होगा ।

भारतीय रिजर्व बैंक की एक नवीनतम् रिपोर्ट 'ए रिव्यू आफ दि एग्रीकल्चरल, क्रेडिट सिस्टम इन इण्डिया' में भारतीय कृषि क्षेत्रों में साख व्यवस्था तथा विभिन्न वित्तीय सस्थाओं के कार्यकलापो का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण है । इसमें इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि भारतीय रिजर्व बैंक की नवीनतम् कृषि साख व्यवस्था नाबार्ड द्वारा सचालित की जाती है, जो व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को पुनर्वित्तीयन करता है। यह रिपोर्ट कृषि साख की आवश्यकता और भावी कृषि साख प्रेक्षपों के दृष्टिकोण से विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि कृषि क्षेत्र में सस्थागत तथा सरचनात्मक परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप साख की सरचना,आवश्यकता एव स्वरूप में

भी परिवर्तन आया है । इस आधार पर प्रस्तुत शोध कार्य में यह देखने का प्रयास किया जायेगा कि किस तरह उपयुक्त मौद्रिक एव साख नीति तथा नियोजन के आधार पर कृषि क्षेत्र के विभिन्न वर्गो की साख आवश्यकता को उत्पादकता के दृष्टिकोण से पूरा किया जाये। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि कृषि वित्तीयन एव साख प्रबन्ध के सम्बन्ध में नाबार्ड की भूमिका और उसके प्रगति सम्बधी विश्लेषण को नाबार्ड के वार्षिक रिपोर्ट में, जो प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिये प्रकाशित की जाती है, यह भी प्रस्तुत शोध की दिशा के लिये महत्वपूर्ण होगा । नाबार्ड की स्थापना के बाद से ही वार्षिक रिपोर्ट कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र में पुनर्वित्तीयन के माध्यम से साख - व्यवस्था में जो प्रगति किये हैं, वह जहा महत्वपूर्ण है, वहीं इस बात को इगित करता है कि नाबार्ड की पुनर्वित्तीयन व्यवस्था तथा सम्पूर्ण ग्रामीण तथा कृषि साख की व्यवस्था के सदर्भ में क्या नीतिगत परिवर्तन किया जाय । प्रस्तुत शोध में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि नाबार्ड की नीतियों और कार्यपद्धति में किस तरह के परिवर्तन की आवश्यकता है।

शोध अध्ययन के साहित्य समीक्षा के दृष्टिकोण से एस० एल० एन० सिम्हा तथा ए० रमन द्वारा सम्पादित पुस्तक 'क्रेडिट प्लानिग एण्ड पॉलिसी' में साख नियोजन तथा साख नीति निर्माण विशेष उल्लेखनीय है । इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि भारतीय रिजर्व बैंक की नवीनतम् साख नीति क्या रही है और कहा तक यह चयनात्मक साख नियत्रणों को सफलतापूर्वक अपनाया है । इसमें इस बात को भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि व्यापारिक बैंकों द्वारा किस तरह कृषि क्षेत्र का वित्तीयन किया जाता है । भारतीय रिजर्व बैंक की नवीनतम् साख नियत्रण नीति के सम्बध में इस बात को स्थापित करने का प्रयास किया गया है कि मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों में सरकार शुद्ध बैंक साख, व्यापारिक क्षेत्र का शुद्ध बैंक साख तथा बैंकिग क्षेत्र के विदेशी विनिमय आदेय हैं । साख नियोजन के स्वरूप और उसकी मात्रा निर्धारण करने के सम्बध में प्रस्तुत विश्लेषण शोध कार्य के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है । डा० वी० एस० महाजन द्वारा सम्पादित एक पुस्तक 'स्टडीज इन इण्डियन' एग्रीकल्चर एण्ड रूरल डवलपमेट में सस्थागत वित्त द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के निर्धन वर्गो के लिये क्रियान्वित विकासात्मक परियोजनाओं का मूल्याकन किया

गया है और इस बात को दिखाने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सस्थाओं की वृद्धि तथा साख प्रवाव के बावजूद भी कमजोर वर्ग साख - सुविधाओं से वचित रहे हैं। यह विश्लेषण इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत शोध साहित्य के लिये उपयोगी होगा कि सीमान्त कृषक, भूमिहीन श्रमिक तथा ग्रामीण क्षेत्र के कमजोर वर्ग के लोगों के दृष्टिकोण से किस तरह साख नीति और नियोजन किया जाय ।

भारतीय ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र के विकास हेतु बैंक वित्त के सम्बंध में सम्पादित एल0 के0 नायडू की पुस्तक 'बैंक फाइनेन्स फॉर रूरल डवलेपमेन्ट' मैं प्रकाशित लेख ' बैंक फाइनेन्स एण्ड एग्रीकल्चर' ('लेखक - एस0 नीलाकनियन) में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास गया है कि कृषि तथा प्राथमिक क्षेत्रों में व्यापारिक बैंकों की क्या भूमिका रही है । यहा इस बात को दिखाया गया है कि व्यापारिक तथा अन्य ग्रामीण बैंक ग्रामीण अर्थव्यवस्था और विशेषकर कृषि विकास हेतु ये बैंक परिवर्तित दशाओं में अपना योगदान कर सकते हैं ।

मौद्रिक नीति के सम्बध में भारत के साथ अन्य अल्प विकसित देशों में मौद्रिक नीति सम्बधी विश्लेषण एशियन डेवलपमेंट रिव्यू, फिलीपीन्स द्वारा सम्पादित 'एशियन डेवलमेंट रिब्यू-स्टडीज ऑफ एशियन एण्ड पेसिफिक इक्नोमिक इश्यूज में भारत, चीन, हागकाग, सिगापुर, इण्डोनेशिया, जापान, मलेशिया, मयानमार, फिलीपीन्स, श्रीलका, थाईलैण्ड आदि देशों में मौद्रिक नीति एव उपायों का अध्ययन किया गया है और यह स्थापित किया गया है कि पिछले बीस वर्षो में एशिया के इन देशों में मौद्रिक नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये हैं । मौद्रिक नीति की सफलता की मात्रा हर देश में अलग - अलग रही है और इसकी प्रभावकारिता वित्तीय एव आर्थिक सुधारों पर आधारित है ।

1 5 शोध अध्ययन का अध्याय क्रम -

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को निम्नलिखित अध्यायों में बाटा गया है -

अध्याय 1 - प्रस्तावना, शोध अध्ययन का स्वरूप, औचित्य एव प्रमुख बातें ।

अध्याय 2 - मौद्रिक एव साख नीति के सिद्धान्त

अध्याय 3 - मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त, रिजर्व बैंक विश्लेषण, मौद्रिक नीति हेतु नीति परक बातें

अध्याय 4 - भारतीय रिजर्व बैंक मौद्रिक एव साख नीति - पंचवर्षीय योजनावधि के अन्तर्गत

अध्याय 5 - कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति

अध्याय 6 - भारतीय रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा कृषि साख ।

अध्याय 7 - कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नियोजन की आवश्यकता ।

अध्याय 8 - साराश, निष्कर्ष एव नीति परक सुझाव ।

प्रथम अध्याय, शोध प्रबन्ध के प्रस्तावना से सम्बन्धित हैं । इसमें शोध प्रबन्ध के विषय का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है । शोध विषय के महत्व पर प्रकाश डाला गया है तथा शोध कार्य के औचित्य को स्पष्ट किया गया है । इसमें शोध के प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है तथा विषय से सम्बंधित प्रमुख बातों पर प्रकाश डाला गया है । अध्ययन में कुछ महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं को प्रदर्शित किया गया है, जिनका परीक्षण एव सत्यापन शोध विवरणों में किया जायेगा । मौद्रिक एव साख नीति के बारे में सामान्य जानकारी दी गयी है और साथ ही एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास में मौद्रिक नीति के महत्व को स्पष्ट किया गया है । भारत के सदर्भ में भारतीय रिजर्व बैंक की भूमिका को स्पष्ट किया गया है । मौद्रिक एव साख नीति के महत्व को कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के सदर्भ में स्पष्ट किया गया है । इसमें शोध अध्ययन

विधि का व्योरा दिया गया है । इस अध्याय में उपलब्ध - साहित्य की समीक्षा भी प्रस्तुत किया गया है ।

दूसरा अध्याय मौद्रिक एव साख नीति के सिद्धान्त से सम्बंधित है । इसमें केन्द्रीय बैंक के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक एव साख नीतियों के सैद्धान्तिक पक्ष का विश्लेशण प्रस्तुत किया गया है । इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि मौद्रिक नीति एव साख नीति क्या है, इसके अवयव क्या हैं, इनके उपकरण क्या हैं तथा इनके लक्षण और उद्देश्य क्या हैं । इसमें मौद्रिक एव साख नीति का वित्तीय नीति, आय नीति, मजदूरी नीति तथा अन्य नीतियों से सम्बध को स्पष्ट किया गया है । इस अध्याय में मौद्रिक एव साख नीति की अवधारणा को दिया गया है तथा इसके अवरोधों का वर्णन किया गया है । आर्थिक नीति के समष्टिभावी उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सस्ती मुद्रा नीति की मान्यताओं और महत्व का उल्लेख किया गया है । आर्थिक विकास और मूल्य स्थायित्वता के सदर्भ में घाटे की वित्त व्यवस्था के महत्व को स्पष्ट किया गया है । इस अध्याय में रेडक्लिफ कमेटी की रिपोर्ट पर भी एक विहगम दृष्टि डाली गयी है । अन्त में यह दिखाया गया है कि मौद्रिक नीति क्या कर सकती है और क्या नहीं कर सकती ।

तीसरे अध्याय में मुद्रापूर्ति के सिद्धान्त की व्याख्या की गयी है । इसमें मुद्रापूर्ति के अर्थ और इसके विश्लेषण से सम्बंधित प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना किया गया है। इसके अतिरिक्त भारतीय रिजर्व बैंक के मुद्रापूर्ति विश्लेषण तथा मुद्रापूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण भी किया गया है । मुद्रापूर्ति के सिद्धान्तों का विश्लेषण भारतीय सदर्भ में भी किया गया है । इसके साथ ही मुद्रापूर्ति के अर्थ एव प्रमुख अवयवों को दिया गया है । इसमें मुद्रा साख गुणक के सिद्धान्त की विवचेना की गयी है । मुद्रापूर्ति का उच्चअर्ष (एच) सिद्धान्त को भी दिया गया है । साथ में भारतीय रिजर्व बैंक का लेखा-जोखा मुद्रा पूर्ति का विश्लेषण किया गया है । अन्त में साख की पूर्ति तथा इसको निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या किया गया है ।

चौथे अध्याय में योजनावधि में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति को दिया गया है । इसमें प्रथम एव द्वितीय पच वर्षीय योजनाओं में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है । तृतीय पचवर्षीय योजना से इसका विस्तृत अध्ययन किया गया है । साथ ही तीन वार्षिक योजनाओं में मुद्रा एव साख नीति का विश्लेषण अलग से किया गया है । अन्त में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति में नवीनतम परिवर्तन का वर्णन किया गया है ।

पाचवें अध्याय में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति का अध्ययन कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के विशेष सदर्भ में किया गया है । इसमें प्रारम्भ में ग्रामीण ऋणग्रस्तता की स्थिति को स्पष्ट किया गया है । भारतीय रिजर्व बैंक के अतिरिक्त कृषि एव ग्रामीण क्षेत्रों में साख प्रदान करने वाली अन्य वित्तीय एजेन्सियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । भारत में कृषि साख व्यवस्था की व्याख्या की गयी है । अत में भारत में कृषि वित्त में मौद्रिक एव साख नीति के महत्व को स्पष्ट किया गया है।

छठे अध्याय में भारतीय कृषि एव ग्रामीण विकास के दृष्टिकोण से राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के महत्व एव योगदान को स्पष्ट किया गया है । इसमें नाबार्ड की स्थापना, कार्य एव सगठनात्मक सरचना का विवरण दिया गया है । इसमें नाबार्ड के ससाधन एव लाभकारिता से सम्बंधित कुछ प्रक्षेपों को भी प्रस्तुत किया गया है । अत में नाबार्ड को अधिक प्रभावी बनाने के दृष्टिकोण से कुछ महत्वपूर्ण सुझावों को दिया गया है ।

सातवें अध्याय में कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नियोजन की आवश्यकता का वर्णन किया गया है । इसमें मौद्रिक एव साख नीति की सीमाओं को दिया गया है। इसमें दिखाया गया है कि वे क्या सीमायें हैं,जिनके कारण ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र में विकास हेतु ये नीतिया पूरी तरह से प्रभावकारी नहीं हो पा रही है । कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र में साख, ऋणों की वसूली की समस्या पर भी विचार किया गया है । इन क्षेत्रों में मौद्रिक एव साख नीतियों की असफलता को

दिखायाा गया है । इसके अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नियोजन की प्रकृति और क्षेत्र का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इसी अध्याय में कृषि क्षेत्र में मौद्रिक लक्ष्य तथा नियोजित मुद्रा एव साख पूर्ति के सदर्भ में चक्रवर्ती कमेटी की रिपोर्ट तथा उसकी सस्तुतियों का विवरण दिया गया है । इन क्षेत्रों में 2000 ए डी तक मौद्रिक एव साख प्रक्षेप दिया गया है । अत में कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एव साख नियोजन की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है ।

आठवें और अन्तिम अध्याय में सम्पूर्ण शोध कार्य का साराश और निष्कर्ष दिया गया है । साथ ही साथ इसमें कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के लिए साख नीति से सम्बंधित कुछ महत्वपूर्ण सुझावों को ही दिया गया है । भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति की कमियों को दूर करने सम्बधी सुझावों का उल्लेख तीव्र आर्थिक विकास के सदर्भ में किया गया है ।

उपरोक्त अध्यायों के विश्लेषण के साथ प्रारम्भ में मुद्रा पूर्ति तथा साख सृजन के सैद्धान्तिक पक्षों का विवेचन किया गया है । भारतीय रिजर्व बैंक के 1961 तथा 1976 के मुद्रा पूर्ति अवधारणा के सदर्भ में यह स्पष्ट किया गया है कि मुद्रापूर्ति तथा तथा साख प्रवाह किस रूप में हुई है । मुद्रापूर्ति के इस सैद्धान्तिक विवेचन का उद्देश्य उन कारकों तथा अवयवों की व्याख्या करनी है, जो मुद्रापूर्ति तथा साख प्रवाह को प्रभावित तथा निर्धारित करते है तथा उनके नियन्त्रण के आधार पर मौद्रिक व साख नीतियों का निर्माण किया जाता है । मुद्रापूर्ति के वर्तमान अवधारणा के अनुसार समय जमायें भी सम्मिलित की जाती हैं, जो मोटे तौर पर गर्ले शॉ के गैर बैंकिग वित्तीय सस्थाओं के विश्लेषण के आधार पर है । मौद्रिक तथा साख नीति के स्वरूप तथा उसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन तथा सुझाव बहुत कुछ मुद्रापूर्ति तथा साख प्रवाह के विश्लेषण से है । चूँकि आधुनिक मुद्रा पूर्ति की अवधारणा एम$_1$ एम$_2$ एम$_3$ एम$_4$ के रूप में अभिव्यक्ति की जाती है, अत मौद्रिक नीति के लिए अधिक महत्वपूर्ण है । मुद्रा पूर्ति के सैद्धान्तिक विश्लेषण के साथ-साथ इस बात की विस्तृत व्याख्या की गयी है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास सदर्भो में मौद्रिक नीति और साख नीति के

क्या उद्देश्य हैं, इन उद्देश्यों में मूल्य स्थायित्व, रोजगार में वृद्धि, क्षेत्रीय असन्तुलन तथा असमानता को दूर करना, पिछडे तथा अविकसित क्षेत्रों में साख सुविधाओं के विस्तार के द्वारा विकास की सम्भावनाओं को उत्पन करना, कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को प्राथमिकता देना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त गरीबी, बेरोजगारी आदि समस्याओं का समाधान करना । इन उद्देश्यों के सदर्भ में मौद्रिक व साख नीति का आलोचनात्मक मूल्याकन करके यह प्रयत्न किया जायेगा कि मौद्रिक व साख नीति को इन उद्देश्यों के प्राप्ति हेतु कैसे और प्रभावकारी बनाया जाय । इस तरह मौद्रिक एव साख नीति से सम्बंधित विश्लेषण देश के कृषि क्षेत्र के विशेष सदर्भ में उपयुक्त तथा प्रभावकारी मौद्रिक साख नीति के निर्माण में सहयोगी होगा ।

----- 000 -----

अध्याय - 2

मौद्रिक एवं साख नीति के सिद्धान्त

(THEORY OF MONETARY AND CREDIT POLICY)

प्रस्तुत अध्याय मे केन्द्रीय बैंक के रूप मे रिजर्व बैंक के मौद्रिक एव साख नीतियों के सैद्धान्तिक पक्ष का विश्लेषण प्रस्तुत किया जायेगा। देश के सम्पूर्ण मौद्रिक एव वित्तीय व्यवस्था के प्रधान सस्था के रूप मे केन्द्रीय बैंक, मुद्रा और साख मे परिवर्तन एव नियत्रण करके देश के आर्थिक नीतियों मे समस्त भावी आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने मे सहयोग प्रदान करता है। अत यहाँ प्रारम्भ मे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मौद्रिक नीति एव साख नीति क्या है, इनके क्या अवयव है, इनके उपकरण क्या है तथा इनके लक्ष्य और उद्देश्य क्या है। साथ ही साथ आर्थिक नीति के एक अग के रूप मे मौद्रिक नीति एव साख नीति किस तरह वित्तीय नीति, आय नीति, मजदूरी नीति तथा अन्य नीतियों से जुडी हुयी है।

2.1 मौद्रिक सिद्धान्त तथा मौद्रिक नीति

वस्तुत अर्थशास्त्र का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ वर्तमान दृष्टिकोण और समस्याओं के सम्बन्ध मे विचार न दिये गये हों, जैसा कि मौद्रिक नीति के क्षेत्र मे है। विश्व युद्ध के बाद अर्थशास्त्रियों ने मन्दी अवस्था को समाप्त करने के लिये मौद्रिक प्रसार को सामान्य उपचार माना था, किन्तु मुद्रा पूर्ति का नियत्रण, क्या मुद्रा स्फीति का भी प्रभावी नियत्रण है - यह बहुत ही संदेह का विषय रहा है। कुछ अर्थशास्त्रियों ने यह विशिष्ट विचार लिया कि मौद्रिक नियत्रण पूर्णत अप्रभावकारी है, किन्तु सामान्यत यह अनुभव किया गया कि युद्ध काल के समय अत्यधिक सार्वजनिक ऋण के कारण मौद्रिक नीति के प्रयोग मे प्रधान बाधा रही।[1] कोरिया युद्ध के पश्चात् अल्पकालीन उतारचढ़ाव के नियत्रण मे मौद्रिक नीति प्रमुख उपकरण के रूप मे स्थापित हुयी। मौद्रिक नीति का प्राप्तता सिद्धान्त बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ और प्राय सभी अर्थशास्त्रियों ने साख के उपलब्धता और लागत के प्रभावों का विश्लेषण किया। केन्सीय अवधि के

---

1. H.G. Johnson, Essays in Monetary Economics, London, 1967 p. 51.

पूर्व ही इस तरह की अवधारणा की कल्पना की गयी थी, जब मौद्रिक नीति समग्र आर्थिक नीति का एक मात्र स्थापित उपकरण माना जाता था और मूल्य स्थायित्वता इसका स्थापित उद्देश्य था। केन्सीय अर्थशास्त्र द्वारा वित्तीय और सरकारी क्रियाओं का विचार प्रस्तुत किया गया और पूर्ण रोजगार द्वारा आर्थिक स्थायित्वता को प्राप्त करने का विचार प्रस्तुत किया गया। इस सम्बन्ध मे मुद्रापूर्ति के योगदान को विभिन्न विचारधाराओं द्वारा भिन्न-भिन्न रूप मे रखा गया। आर्थिक क्रियाओं के निर्धारण मे क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा पूर्ति पर बहुत महत्व नहीं दिया और इसके प्रभाव को मात्र अनुपातिक मूल्यों मे वृद्धि तक ही सीमित रखा। इस तरह आर्थिक व्यवस्था के आधारभूत क्रियान्वयन मे इसके योगदान को निष्क्रिय रूप मे देखा गया। चूकि इसका प्रभाव मूल्यों पर महत्वपूर्ण रूप से पड़ता है, अत इसे महत्वपूर्ण माना गया। वस्तुत आर्थिक क्षेत्र मे मुद्रामहत्व का विश्लेषण केन्स के योगदानों से स्पष्ट होता है, क्योंकि केन्सीय मौद्रिक सिद्धान्त का मूल तत्व इस बात को स्पष्ट करने मे है कि एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था मूल रूप से एक लेन-देन अर्थव्यवस्था से भिन्न है और मुद्रा मात्र एक पर्दा नही है, अपितु अर्थव्यवस्था के क्रियान्वयन को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।[2] केन्स ने अपने मौद्रिक विश्लेषणों और ब्याज-दर सिद्धान्त द्वारा इस बात को स्पष्ट किया कि ब्याज-दर मे परिवर्तन किस तरह अर्थव्यवस्था मे विनियोग तथा आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करता है।

मौद्रिक नीति के उपर्युक्त तथ्य से यह स्पष्ट है कि मौद्रिक और साख नीति का आधार मौद्रिक सिद्धान्त है और ये दोनों परस्पर सम्बन्धित है। वस्तुत मौद्रिक सिद्धान्त मौद्रिक

---

2. The fundamental contention of Keynesian monetary theory is that a monetary economy is essentially different from a barter economy that money is not merely a veil but exercises an influence of its own in the working of the economy", - H.G. Johnson, The General Theory After Twenty Five Years, American Economic Review, May 1961, p. 10.

नीति के लिये आधारशिला उत्पन्न करता है। अत सक्षेप मे मौद्रिक सिद्धान्तों मे हुये विकास का अवलोकन मौद्रिक नीति के योगदान और महत्व को स्थापित करने मे सहायक होगा। इस तरह मौद्रिक सिद्धान्त को उन सभी सिद्धान्तों के सयोग रूप मे देखा जा सकता है, जो आर्थिक व्यवस्था पर मुद्रा की मात्रा के प्रभाव से सम्बन्धित है तथा मौद्रिक नीति को उस नीति के रूप मे देखा जा सकता है, जिसका प्रयोग देश के केन्द्रीय बैंक के द्वारा मुद्रा पूर्ति के नियत्रण से आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।[3]

केन्सीय क्रान्ति के पूर्व मौद्रिक सिद्धान्त मुख्य रूप से मूल्यस्तर का सिद्धान्त था और सामान्य मूल्य स्तर के निर्धारण से सम्बन्धित था।[4] क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा को मात्र विनिमय का माध्यम माना था और इससे फिशर तथा केम्ब्रिज प्रमुख अर्थशास्त्री सम्बन्धित है। फिशर का प्रमुख विनिमय समीकरण $MV = PT$ तथा केम्ब्रिज अर्थशास्त्रियों के नगद-शेष समीकरण $M=PKT$ मुख्य रूप से अनुपातिकता नियम को स्थापित करने से थे। विक्सेल ने इसमे प्राकृतिक ब्याजदर और बाजारी ब्याज-दर के आधार पर आनुपातिकता नियम की प्रक्रिया को स्पष्ट किया है। इस सैद्धान्तिक विश्लेषण को मौद्रिक नीति के लिये सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमे सारी आर्थिक क्रियाओं के उतार-चढ़ाव के कारणों का एक मात्र आधार मुद्रा-पूर्ति मे परिवर्तन को माना गया है। अत मुद्रा-पूर्ति नियत्रण के द्वारा अर्थव्यवस्था मे स्थायित्वता प्राप्त की जा सकती है। इसका अभिप्राय यह भी है कि वित्तीय नीति का स्थायित्वता हेतु कोई योगदान नही है और इसका सम्बन्ध मात्र सार्वजनिक और व्यक्तिगत क्षेत्रों मे उपलब्ध ससाधनों के बटवारे तक सीमित है। इस सैद्धान्तिक विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि मुद्रा अपने प्रभावों मे तटस्थ है और अर्थव्यवस्था मे बचत, आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तरों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडता ।

1928 के महान मन्दी के बाद अर्थव्यवस्था को मन्दी की स्थिति से दूर करने के सम्बन्ध मे केन्सीय विश्लेषण के द्वारा मौद्रिक नीति के स्थान पर वित्तीय नीति का तुलनात्मक रूप से अधिक महत्व स्थापित किया गया। केन्स ने अपने मौलिक समीकरणों तथा सामान्य

---

3. H.G. Johnson Op. cite., p.15

4. L.V. Chandler, An Out Line of Monetory Theory, Allahabad, 1973, p. 17.

सिद्धान्त मे मौद्रिक सिद्धान्तों तथा ब्याज - दर विश्लेषण से इस बात को स्थापित किया कि मौद्रिक सिद्धान्त और मौद्रिक नीति के सम्बन्ध मात्र मूल्य स्तर के परिवर्तनों से नही है, अपितु यह अर्थव्यवस्था मे बचत, विनियोग, उत्पादन एव रोजगार के स्तर से सम्बन्धित है। इस तरह केन्स ने अपने ब्याज - दर विश्लेषण और तरलता जाल सम्बन्धित विश्लेषण से मौद्रिक नीति एव मौद्रिक अधिकारियों की एक अधिकतम् सीमा को स्पष्ट किया और इस बात को स्थापित कियाकि जहाँ मौद्रिक अधिकारी अपने नीति एव नियत्रणों द्वारा अर्थव्यवस्था मे आर्थिक क्रियाओं को उत्पन्न करने एव विनियोग मे वृद्धि करने मे असफल रहते है, वहीं वित्तीय नीति एव सरकारी हस्तक्षेप द्वारा पूर्ण रोजगार, उत्पादन एव आय की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

केसोपरान्त मौद्रिक सिद्धान्त के विकास मे डॅान पेटिन्किन, फ्रीडमैन, गर्ले-शॉ आदि अर्थशास्त्रियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। डॉन पेटिन्किन ने अपने वास्तविक शेष प्रभाव सिद्धान्त द्वारा व्यष्टि एव समष्टि स्तर पर केम्ब्रिज मुद्रा परिमाण सिद्धान्त मे निहित आनुपातिकता नियम को पुन स्थापित किया और मुख्य रूप से मुद्रा बाजार और वस्तु बाजार के अत प्रक्रिया द्वारा केन्सीय ब्याज सिद्धान्त के निष्कर्षों के विपरीत इसबात को स्थापित किया कि मुद्रा तटस्थ है और इसके परिवर्तन के परिणामस्वरूप ब्याज-दर एव विनियोग मे कोई परिवर्तन नही होता । इस तरह इस विश्लेषण मे भी मौद्रिक नीति की महत्ता स्थापित होती है।

शिकागो विश्वविद्यालय के मिल्टन फ्रीडमैन ने मौद्रिक सिद्धान्त का विश्लेषण सैद्धान्तिक एव अनुभवगम्य दोनों रूपों मे किया है। अपने सैद्धान्तिक विश्लेषण मे मुद्रा माग सिद्धान्त के आधार पर यद्यपि वे किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुच सके, पर उन्होंने अपने मुद्रा माग को एक स्थिराक के रूप मे प्रदर्शित किया है, जिससे यह केम्ब्रिज मुद्रासिद्धान्त के सन्निकट हो जाता है। उन्होंने अमेरिका मे 1887 से 1960 के अन्तर्गत प्रमुख चरों-मुद्रा पूर्ति, राष्ट्रीय आय, मूल्य स्तर, ब्याज दर, कुल उपभोग, व्यय आदि सम्बन्धित अनुभवगम्य तथ्यों तथा ऑकड़ों के आधार पर मुद्रा के आय प्रचलन वेग को दीर्घकाल मे स्थिर मानते हुये मौद्रिक नीति प्रभावकरिता को स्थापित किया।[5] फ्रीडमैन ने

---

5. Milton Friedman and A.J. Schwartz, A Monetary History of United States, 1867- 1960, Princeton University Press.

मोद्रिक विश्लेषण को मौद्रिक नीति और आर्थिक नीति के क्रियान्वयन हेतु कई महत्वपूर्ण सुझावों से सम्बन्धित किया है। यदि मुद्रा माग फलन को स्थिराक के रूप मे दिखाया जा सके तो यह सरकार के लिये आर्थिक नीति हेतु बहुत उपयोगी होगा और इसके द्वारा मुद्रापूर्ति के द्वारा अर्थव्यवस्था पर आर्थिक प्रभावों को दिखाया जा सकता है और इस तरह मौद्रिक क्षेत्र मे पूर्वानुमानों द्वारा मौद्रिक महत्व को दिखाया जा सकता है। फ्रीडमेन समस्त स्तर पर आर्थिक नीति हेतु यह मानते है कि रोजगार तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि हेतु मुद्रा नीति की वृद्धि आवश्यक है। उन्होंने अपने विश्लेषण से स्थापित किया है कि केन्सीय आय गुणक की तुलना म आय प्रचलन वेग अधिक स्थायी है।[6] उन्होंने यह भी माना है कि मुद्रा की मॉग ब्याज-दर परिवर्तनों से प्रभावित नहीं होती और इसलिये इसकी वृद्धि हेतु चलन मे मुद्रा पूर्ति का होना आवश्यक है और इस तरह उन्होंने समग्र मुद्रा माग को बढाने मे मौद्रिक नीति को प्रमुख आधार माना। फ्रीडमैन के विश्लेषण मे अर्थव्यवस्था के मौद्रिक आय तथा मूल्य नियत्रण मे मुद्रा पूर्ति एक केन्द्र बिन्दु है और इसलिये वर्ष-प्रतिवर्ष मुद्रा स्टॉक की वृद्धि एक निश्चित दर से होनी चाहिये। इस तरह उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था के लिए एक अनुकूलतम् मुद्रा की मात्रा होना आवश्यक है और इसी रूप मे मूल्य स्थायित्वता प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने यह दिखाया कि चूँकि आर्थिक नीतियों की प्रभावकारिता मे समय-अन्तराल की कोई निश्चितता नही है, अत बैक-दर, खुले बाजार की क्रियाए तथा अन्य विवेकपूर्ण मोद्रिक नीतियाँ अर्थव्यवस्था मे हानिकारक प्रभाव उत्पन्न कर सकते है। अर्थव्यवस्था मे स्थायित्वता हेतु उन्होंने गैर विवेकपूर्ण नीतिया का प्रस्तावित किया। वर्तमान समय मे क्रियान्वित की जाने वाली आर्थिक नीतियों का भविष्य म अधिक प्रभावी होने के लिये फ्रीडमैन ने स्थायी आय तथा मूल्य प्रत्याशित परिवर्तन दर एव लोगो की अभिरुचियो और पसन्दगियो आदि को महत्वपूर्ण आधार बनाया।[7] इस तरह मौद्रिक नीति के महत्व को स्थापित करते हुए उन्होंने यह दिखाया कि वित्तीय नीति, मौद्रिक नीति का एक अग है और अपने आपमे इसकी कोई अलग सत्ता

---

6. Milton Friedman, Dollars and Deficit, 1968, p. 14.
7 Milton Friedman, A Theory of Consumption Function, 1957, p.57.

नही है।

फ्रीडमैन के मौद्रिक विश्लेषण के बाद रेडक्लिफ कमेटी रिपोर्ट तथा गर्ले-शॉ के मौद्रिक सिद्दान्त सम्बन्धित सस्थागत उपागमो के आधार पर मौद्रिक सिद्धान्त एव मौद्रिक नीति को एक नया रूप दिया गया।[8] इसमे मुद्रापूर्ति को एक व्यापक अर्थ मे अर्थव्यवस्था के सामान्य तरलता के रूप मे स्थापित किया गया । उन्होंने अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के साथ-साथ गैर बैकिग वित्तीय सस्थाओं तथा मध्यस्थों के उदय होने से बाह्य मुद्रा मे आन्तरिक मुद्रा के समावेश द्वारा इस बात को स्पष्ट किया कि मुद्रा गैर तटस्थ है और यह महत्वपूर्ण रूप से ब्याज-दर को प्रभावित करती है। उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि ये गैर बैंकिग वित्तीय मध्यस्थ लगभग वही कार्य करते है, जो व्यापारिक बैंक करते है। अत ये महत्वपूर्ण रूप से अर्थव्यवस्था के आर्थिक क्रियाओ एव विनियोग आदि निर्णयों को प्रभावित करते है।[9] इस तरह गर्ले-शॉ के विश्लेषण से मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन क्षेत्र तथा प्रभावकारिता बहुत बढ जाती है। उन्होंने इस बात को स्थापित किया कि व्यापक अर्थ मे अर्थव्यवस्था मे मौद्रिक नीति को पूरी बैंकिग व्यवस्था के साथ-साथ गैर बैंकिग वित्तीय मध्यस्थो के क्रियाओ को भी नियत्रित करना चाहिये और इस तरह अर्थव्यवस्था मे मुद्रा पूर्ति के व्यापक अर्थ मे तरलता तथा मौद्रिक ससाधनों को नियत्रित करने से है। उनका यह मानना था कि इस तरह मौद्रिक नीति के सचालित न होने पर इसकी प्रभावकारिता बहुत कम हो जायेगी।[10]

2.2 मौद्रिक एवं साख नीति की अवधारणा

मौद्रिक नीति का अभिप्राय मुद्रापूर्ति सम्बन्धी परिवर्तनों की नीति से है। इसका सम्बन्ध ऐसे उपायों से है, जो अर्थव्यस्था के कार्यशीलता को प्रभावित करने के उद्देश्य से मुद्रा की उपलब्धता और

---

8. J.G. Gurley and E.S. Shaw, Money in a Theory of Finance, 1960, p.l.

9. Richard Thorn, IMF Staff Papers, Nov. 1958, pp. 271-72.

10. J.G. Gurley and E.S. Shaw, Financial Aspects of Development, p. 527.

इसकी लागत को प्रभावित करते है। दूसरे शब्दों मे मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी उपाय सम्मिहित है, जो किसी देश के केन्द्रीय बैंक के अधिकारियों के द्वारा साख-नियत्रण हेतु प्रयोग किये जाते है। मोटे तौर पर मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन अवयव होते है-मुद्रा की मात्रा, साख की मात्रा और ब्याज-दर। केन्द्रीय बैंक, बैक-दर मे परिवर्तन करके ब्याज-दर और ब्याज सरचना मे परिवर्तन करती है और इसी आधार पर देश मे मुद्रा की मात्रा और साख की मात्रा को नियत्रित करती है। इसी तरह मुद्रा और साख की मात्रा को नियत्रित करने के लिए खुले बाजार की क्रियाए तथा आरक्षित कोष अनुपात मे परिवर्तन करती है। केन्द्रीय बैंक के मुद्रा और साख नियत्रण की चयनात्मक विधियाँ भी है, जिससे विभिन्न क्षेत्रो मे मुद्रा तथा साख की मात्रा और दिशा का नियत्रण किया जाता है। इस तरह मौद्रिक नीति के अन्तर्गत ही केन्द्रीय बैंक की परिमाणात्मक और चयनात्मक मुद्रा और साख नियत्रण की विधिया निहित है।

मौद्रिक नीति की ही तरह साख नीति भी साख पूर्ति परिवर्तनों से सम्बन्धित हैं, किन्तु मौदिक नीति की तुलना मे साख-नीति कई कारणों से भिन्न है। प्रथमत मौद्रिक नीति की अपेक्षा साख नीति मात्र समग्र पूर्ति से ही सम्बन्धित नहीं है, अपितु विभिन्न क्षेत्रों और आपूर्तिकर्ताओं के बीच उसके निर्धारण से सम्बन्धित है। इसी तरह साख के स्रोतो मे भी भिन्नता है, इसमे सस्थागत और गैर-सस्थागत स्रोत है और सस्थागत स्रोतों मे भी बैंक केवल एक स्रोत है। मात्रा के अलावा साख के अन्य पहलू जैसे, इसकी लागत, इसकी शर्तें एव दशाए,अवधि, इसका पुर्नीकरण, जोखिम आदि उधार लेने वाले और देने वाले दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। इस तरह साख नीति का क्षेत्र बहुत व्यापक है। मौद्रिक और साख नीतियों मे कुछ और भी अन्तर प्रस्तुत किया जा सकता है, जो प्रस्तुत विश्लेषण के लिये उपयोगी है। मुख्य रूप से मुद्रा एक आदेह, जो लोग अपने पास रखते है, किन्तु यह सरकार और रिजर्व बैंक का दायित्व भी है, जबकि बैंक-साख बैको का आदेह तथा उधार लेने वाले लोग तथा सरकार का दायित्व है। इस तरह आदेह तथा दायित्व का अन्तर मौद्रिक और साख नीति के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। यह अन्तर मौद्रिक नीति और मुद्रा परिमाण सिद्धान्त के लिये भी आवश्यक है। इससे यह स्पष्ट किया जा सकता है कि केम्ब्रिज उपागम एव केन्सीय उपागम मौद्रिक नीति का आधार होगा। मोटे तौर पर यदि मुद्रा माग फलन भी हो, तो भी मुद्रा पूर्ति

मे एक स्वायत्त परिवर्तन या तो प्रत्यक्ष मौद्रिक आय पर परिवर्तन करता है अथवा प्रथमत ब्याज-दर मे परिवर्तन करके, विनियोग दर मे परिवर्तन के द्वारा, अन्तत आय मे परिवर्तन करता है। किन्तु इसी तरह साख-पूर्ति प्रभाव के सम्बन्ध मे बैंक-साख मे परिवर्तन किस तरह आन्तरिक चरणों को परिवर्तित करेगा, इस सम्बन्ध मे कोई सिद्धान्त विकसित नही करेगा, चूकि केन्द्र के मौद्रिक सिद्धान्त मे आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव मुद्रापूर्ति-परिवर्तन के द्वारा प्रथमत ब्याज दर मे परिवर्तन के द्वारा दिखाया जाता है, अत यह सिद्धान्त साख लागत का सिद्धान्त कहा जा सकता है। इसी कारण केन्द्र के मौद्रिक नीति मे सबसे अधिक जोर ब्याज दर परिवर्तन पर दिया जाता है और यह अन्तर केन्सीय मौद्रिक नीति सिद्धान्त से मौद्रिक अर्थशास्त्रियों के मौद्रिक नीति सिद्धान्त, मुदा पूर्ति और बैंक साख पूर्ति के सिद्धान्त मे कई बिन्दु समान है। समान अधिकारी के रूप मे केन्द्रीय बैंक दोनों नीतियों का निगमन करता है। समस्त स्तर पद् दोनों के उपकरण समान है तथा मुद्रा पूर्ति एव साख नीति को एक ही तरह की शक्तिया निर्धारित करती है और इस तरह यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि मौद्रिक एव साख नीति समान है।[11]

मौद्रिक नीति के सिद्धान्त मे वर्तमान विश्लेषण मे मौद्रिक नीति के उद्देश्यों, लक्ष्यों, सूचकों तथा उपकरणों मे भेद किया जाता है। इस सम्बन्ध मे भ्रम को दूर करने की दृष्टिकोण से इनके अन्तर को निम्न रूप से दिखाया जा सकता है -

मौद्रिक नीति
(MONETARY POLICY)

उद्देश्य (Goals)

1 अधिकतम् सम्भाव्य उत्पादन
2 उच्च आर्थिक विकास
3 पूर्ण रोजगार
4 मूल्य स्थायित्वता या मुद्रा स्फीति की अनुकूलतम् दर
5 धन एव आय वितरण मे अधिक समानता

---

11. S.B. Gupta-Monetary Economics-Institutions Theory and Policy, 1990 p. 356.

6 भुगतान-सतुलन मे स्वस्थ सतुलन

लक्ष्य (Targets)

1 मुद्रा पूर्ति

2 बैंक साख

3 ब्याज-दर

सूचक (Indicators)

1 उच्च अर्घ मुद्रा

2 मुद्रा पूर्ति

3 बैंक साख

4 ब्याज-दर

उपकरण (Instruments)

1 घाटे की वित्त व्यवस्था

2 खुले बाजार की क्रियाए

3 आरक्षित कोष अनुपात मे परिवर्तन

4 बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक का साख

5 वैधानिक तरलता अनुपात

6 चयनात्मक साख नियत्रण

मौद्रिक नीति के उपयुक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इसका तात्पर्य उन अनेक मौद्रिक उपायों तथा विधियों से है, जिसके आधार पर किसी देश की सरकार या केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास हेतु अर्थव्यवस्था मे मुद्रा की कुल मात्रा, साख की मात्रा तथा ब्याजदर मे परिवर्तन की सारी क्रियाए मौद्रिक नीति के अन्तर्गत रखते है। मौद्रिक नीति के एक विस्तृत अर्थ मे अर्थव्यवस्था के उन सभी मौद्रिक तथा वित्तीय उपायों को सम्मिहित करते

है, जिनका नियमन तथा सचालन पूरी तरह बैंकिग व्यवस्था द्वारा होती है।

इस रूप मे केन्द्रीय बैंकों के साथ-साथ व्यापारिक बैंकों तथा गैर-वित्तीय बैंकों के उन सभी कार्यों को सम्मिलित किया जाता है जिनका सम्बन्ध मुद्रा दर, साख परिवर्तन से है। मौद्रिक नीति के इस व्यापक अर्थ मे राष्ट्रीय ऋण व्यवस्था को भी सम्मिलित किया जा सकता है, क्योंकि अल्पकालीन समयावधि प्रतिभूतियों को खरीदने तथा दीर्घ कालीन प्रतिभूतियों को बेचने मे भी मुद्रा तथा साख परिवर्तित होती है।[12] अब यदि अर्थव्यवस्था के अनेक मौद्रिक तथा वित्तीय कार्यों का सम्बन्ध मौद्रिक नीति से है तो ऐसी दशा मे मौद्रिक नीति तथा वित्तीय नीति मे अन्तर करना तथा विभाजन करना मुश्किल है और यही कारण है कि अर्थव्यवस्था की सामान्य आर्थिक नीति मे मौद्रिक नीति को स्थापित करते हुए आधुनिक मौद्रिक अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन का यह विचार है कि वित्तीय नीति वास्तव मे मौद्रिक नीति का ही एक अग है और इसकी अलग कोई स्वतत्र सत्ता नहीं है।

क्योंकि मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था की सामान्य आर्थिक नीति का एक अंग है। अत वित्तीय नीति तथा अन्य आर्थिक नीतियों से इसका सम्बन्ध होना स्वाभाविक है, पर इस सम्बन्ध का तात्पर्य यह नहीं है कि वित्तीय नीति मौद्रिक नीति का एक मात्र अग है और इसकी स्वतन्त्र सत्ता नही है। यद्यपि यह बात तो सही है कि मौद्रिक नीति तथा वित्तीय नीति मे कोई स्पष्ट अन्तर तथा विभाजन रेखा दिखाना सभव नहीं है, पर मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि बजट अतिरेक के आकार मे परिवर्तन वित्तीय नीति मे परिवर्तन तथा ब्याजदर मे परिवर्तन मौद्रिक नीति का सूचक है। वित्तीय नीति के इस अन्तर के साथ जहाँ तक उनके सम्बन्ध की बात है, उसमे मौद्रिक नीति अपने फलनात्मक क्रिया के द्वारा कभी-कभी वित्तीय नीति का रूप ले लेती है ओर इसी तरह वित्तीय नीति भी कभी-कभी मौद्रिक नीति मे बदल जाता है। उदाहरण के लिए यदि अर्थव्यवस्था में घाटे के बजट को पूरा करने के लिए करों, सार्वजनिक ऋणों तथा अन्य साधनों का प्रयोग किया जाता है तो यहाँ यह वित्तीय नीति से सम्बन्धित है, पर यदि घाटे को पूरा करने के लिए अतिरिक्त

---

12. G.K. Shaw, An Introduction to the Theory of Macro Economic Policy, p. 65.

मुद्रा को छाप कर घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है तो यहाँ मौद्रिक नीति का क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। यही कारण है कि मौद्रिक तथा वित्तीय नीति पारस्परिक सहयोग अर्थव्यवस्था के सामान्य आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है।

पिछले समयों से मौद्रिक नीति के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण ढग से परिवर्तन हुआ है। किसी भी देश के केन्द्रीय बैंक को अब यह निर्णय करना होता है कि साख प्रदान करने तथा विनिमय निर्णय अधिकारियों को नीतियों मे परिवर्तन करने है। इस विशिष्ट अर्थ मे मौद्रिक नीति को परिभाषित करने के लिए यह मुद्रा एव साख की उपलब्धता, लागत तथा प्रयोग के नियत्रण से सम्बन्धित है।[13] मौद्रिक नीति का परम्परागत कार्य केन्द्रीय बैंक करता है, जो एक मौद्रिक व्यवस्था के माध्यम से कार्य करता है और इसका सम्बन्ध मोटे तौर पर देश की पूरी मौद्रिक व्यवस्था से है।

डॉ पॉल इनजिग ने मौद्रिक नीति को इस तरह परिभाषित किया है कि यह किसी देश की मौद्रिक व्यवस्था, जो इसके नियत्रण मे है उसके प्रति राजनैतिक अधिकार की प्रवृत्ति है।[14] इसी तरह क्राउथर ने भी मौद्रिक नीति की परिभाषा इस रूप मे की है कि मौद्रिक व्यवस्था की क्रियान्वयन से होने वाले हानिकारक प्रभावों के प्रभाव का न्यूनतम करना है।[15]
एक क्रियात्मक मौद्रिक नीति इस रूप मे परिभाषित किया जा सकता है कि यह मौद्रिक अधिकारियों द्वारा लिए गये उन उपायों से है, जिससे आर्थिक कल्याण तथा अर्थव्यवस्था का सामाजिक दृष्टिकोण प्रोत्साहित किया जाता है। मौद्रिक नीति एक दूसरे दृष्टिकोण से भी परिभाषित किया जाता सकता है। ऐसे सभी मौद्रिक निर्णय और उपाय बिना इस बात का ध्यान रखे कि उनका उद्देश्य मौद्रिक या गैर-मौद्रिक है और इस तरह सभी गैर-मौद्रिक निर्णय और

---

13. C.S. Nagpal, Monetary Policy and Inflation in India p.11.

14. Dr. Paul Einzig, How Money is Managed, London, 1954 p. 38.

15. G. Crowther, An outline of Money, Delhi, 1969, p.176.

उपाय, जिनके उद्देश्य मौद्रिक व्यवस्था को प्रभावित करने से है, वे सभी मौद्रिक नीति के अन्तर्गत आते है।[16]

मौद्रिक नीति के अर्थ को स्पष्ट करने मे यह भी आवश्यक है कि इससे सम्बन्धित अन्य सामान्य नीतियों से इसका अन्तर दिखाया जाय। मौद्रिक नीति, वित्तीय नीति और बैंकिग नीति से बहुत समान है। इनमे सम्बन्ध और समानता इतना अधिक है कि प्राय मौद्रिक नीति और बैंकिग नीति एक ही मान लिया जाता है, जबकि वित्तीय नीति को मौद्रिक नीति का साध्य और साधन मान लिया जाता है। कभी कभी वे एक दूसरे के पूरक होती है, उनमे अन्तर स्पष्ट करना कठिन है, फिर भी उनमे अन्तर है। वित्तीय नीति का सम्बन्ध उन उपायों से है, जो बजट क्रियाओं से सम्बन्धित है। यह सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण से सम्बन्धित नीतियों तथा उपायों के विश्लेषण को प्रस्तुत करती है। इनका सम्बन्ध तथा क्रियान्वयन वित्तीय नीति द्वारा किया जाता है। इसी तरह मौद्रिक नीति और बैंकिग नीति मे अन्तर इस रूप मे किया जा सकता है कि बैंकिग नीति मौद्रिक नीति का एक भाग है। बैंकिग नीति कभी-कभी मौद्रिक नीति मे परिवर्तन नही करते। उदाहरण के लिए चयनात्मक साख नियत्रण विधियों से सम्बन्धित निर्णय, जबकि बैंकिग नीति को परिवर्तित करेगें, लेकिन मोटे तौर पर मौद्रिक नीति मे कोई परिवर्तन नहीं करते।

2 3 मौद्रिक नीति के उद्देश्य

यदि मौद्रिक नीति को हम अर्थव्यवस्था की सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने मे सहायक के रूप मे माने तो यह कहा जा सकता है कि मौद्रिक नीति का स्वत अपने आप मे कोई उद्देश्य नहीं है और अपने अधिकतम् महत्व के रूप मे यह सामान्य आर्थिक नीति की सहायक है।[17] अत विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की आर्थिक एव सामाजिक दशाओं के आधार पर क्रियान्वित की जाने वाली सामान्य आर्थिक नीतियों के ही अनुरूप मौद्रिक

---

16. Report of the Commission on Money and Credit, 1968, p. 46.

17. Dr. P.D. Hajela, Problems of Monetary Policy in underdeveloped Countries, p. 23.

नीति के उद्देश्य होने चाहिये। स्वतन्त्र आर्थिक नीतियों के स्थान पर आर्थिक क्रियाओं मे बढ़ते हुये सरकारी हस्तक्षेप तथा महत्व के कारण आर्थिक नीतियों के बढ़ते हुए महत्व के कारण मौद्रिक नीति का भी महत्व बढ़ा है। आर्थिक नीति के उद्देश्यों मे समय-समय पर परिवर्तन होने के कारण मौद्रिक नीति के उद्देश्यों मे परिवर्तन होते रहते है। अर्थव्यवस्था के सामान्य आर्थिक नीति के अनुसार मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों को निम्नलिखित आधार पर दिखाया जा सकता है -

1 अधिकतम् आर्थिक सवृद्धि

2 अधिकतम् उत्पादन तथा पूर्ण रोजगार

3 विनिमय दर का स्थिरीकरण

4. मुद्रा की तटस्थता

5 आय का उचित वितरण

आधुनिक आर्थिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों मे अधिकतम् सम्भाव्य आर्थिक विकास की दर प्राप्त करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य की प्राप्ति मे मौद्रिक नीति का भी यह एक प्रमुख उद्देश्य हो जाता है कि मौद्रिक साधनों तथा विधियों मे परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था मे आर्थिक सवृद्धि अधिकतम हो सके। आर्थिक सवृद्धि दर को बढ़ाने मे कई महत्वपूर्ण कारण है। बिना आर्थिक सवृद्धि की वृद्धि की अर्थव्यवस्था के अन्य उद्देश्य भी बहुत महत्वपूर्ण नही रह जाते। अर्थव्यवस्था मे आय, उत्पादन, रोजगार तथा सामान्य जीवन स्तर को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के मौद्रिक तथा वित्तीय साधनों का प्रयोग आर्थिक सवृद्धि दर को बढ़ाने मे लगाया जाय। आज जहा विकसित तथा अर्द्धविकसित देशों मे आर्थिक सवृद्धि को बढ़ाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है, वहा मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य है कि वह अर्थव्यवस्था के अधिकतम् आर्थिक विकास की प्राप्ति मे सहयोग दे। यद्यपि आर्थिक विकास को अधिकतम् करने से सम्बन्धित मौद्रिक नीति के उद्देश्य मे बहुत विवाद है, फिर भी अब यह सर्वमान्य विचार है कि अर्थव्यवस्था की दीर्घकालीन आर्थिक विकास की समस्याओं और सम्भावनाओं मे मौद्रिक नीति का प्रमुख योगदान है। उपयुक्त दशाओं मे सस्ती तथा महगी

मुद्रा नीतियों के आधार पर प्रसारपूर्ण तथा सकुचित मौद्रिक दशाओं के द्वारा अर्थव्यवस्था मे आर्थिक सवृद्धि को बढाया जा सकता है।

वर्तमान आर्थिक विकास की विभिन्न सम्भावनाओं मे बढ़ती हुई बेरोजगारी तथा अर्द्ध रोजगारी की समस्या विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की सबसे प्रमुख समस्या बनी हुई है, चूंकि बेरोजगारी की समस्या अर्थव्यवस्था के आर्थिक एव सामाजिक विकास मे बाधक है और वह एक चिन्ता की विषय होती जा रही है, अत मौद्रिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि वह अर्थव्यवस्था के पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने मे सहायक हो। केन्स ने सबसे पहले इस बात को दृढ़तापूर्वक स्थापित किया कि यदि अर्थव्यवस्था को स्वतत्र आर्थिक नीतियों पर छोड दिया जाय तो बेरोजगारी की समस्या स्वत दूर नही होगी। अत पूर्ण रोजगार प्राप्त करने के लिए उन्होंने सरकारी हस्तक्षेप को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया और तभी से पूर्ण रोजगार को प्राप्त करना मौद्रिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य हो गया है। पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने के रूप मे मौद्रिक नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था मे उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम प्रयोग करना, ताकि उत्पादकता वृद्धि के साथ उत्पादन तथा आय की मात्रा मे वृद्धि हो । इस तरह मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन, आय तथा रोजगार के वृद्धि मे सहायक होती है। अधिकतम् उत्पादन तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के लिए मौद्रिक नीति का क्रियान्वयन इस रूप मे होना चाहिए कि विनियोग की मात्रा बढ़ती रहे। केन्स ने यह दिखाया कि अर्थव्यवस्था मे जब तक अप्रयुक्त साधन विद्यमान है, तब तक बचत की तुलना मे विनियोग की बढ़ती हुई मात्रा से उत्पादन, आय तथा रोजगार की मात्रा बढती जाती है। केन्स ने बेरोजगारी को दूर करने के सम्बन्ध मे बैंक-दर (और इसलिए ब्याज-दर) मे कमी के आधार पर सस्ती मुद्रा नीति का समर्थन किया और इन मौद्रिक परिवर्तनों द्वारा उपयोग तथा विनियोग व्यय के वृद्धि को पूर्ण रोजगार प्राप्त करने मे महत्वपूर्ण बताया। यद्यपि सस्ती मुद्रा नीति के द्वारा रोजगार को बढाना अर्धविकसित देशों मे सम्भव नहीं है और इस आधार पर उत्पादन व आय न बढ़कर केवल मुद्रा-स्फीती ही बढ़ती है, पर मौद्रिक नीति के विभिन्न विकल्प विधियों द्वारा रोजगार, उत्पादन तथा आय की मात्रा बढ़ायी जा सकती है। मौद्रिक नीति द्वारा अधिकतम् उत्पादन तथा

पूर्ण रोजगार का तात्पर्य अनुकूलतम् उत्पादन तथा रोजगार से है, जो अर्थव्यवस्था के सामाजिक तथा सस्थागत सरचना पर आधारित है, जहाँ उत्पादन के सभी साधनों को उनकी इच्छानुसार कार्य के अवसर उपलब्ध हो रहे है, यदि अर्थव्यवस्था मे बेरोजगारी है तो इससे न केवल उत्पादन की मात्रा कम होती है, अपितु यह मानवीय समस्या के रूप मे आर्थिक व सामाजिक विकास के लिये खतरा है। अत अर्थव्यवस्था मे अधिकतम् उत्पादन तथा पूर्ण रोजगार प्राप्त करना मौद्रिक नीति का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

मौद्रिक नीति का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य, जिसे सरकार तथा केन्द्रीय बैंक को प्राप्त करना होता है, वह आन्तरिक मूल्य का स्थिरीकरण है। वर्तमान समय मे आर्थिक विकास के साथ स्थायित्व को प्राप्त करने की समस्या आर्थिक नीति का प्रधान लक्ष्य होता जा रहा है। अत अर्थव्यवस्था मे अधिकतम् उत्पादन एव पूर्ण रोजगार के साथ आर्थिक विकास के उद्देश्य के प्राप्ति सही माने मे तभी हो सकती है, जबकि मूल्य स्तर मे अत्यधिक तथा हानिकारक वृद्धि न हो। यदि अर्थव्यवस्था के मूल्य स्तर मे वृद्धि या कमी अप्रत्याशित एव अवाछनीय रूप से होती है तो अत्यधिक लाभ या हानिकी दशाओं के कारण सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं मे अनिश्चितता उत्पन्न हो जाती है, जिससे उत्पादन आदि सम्बन्धी सभी दशाए तथा योजनाये अस्त-व्यस्त हो जाती है। अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास पर अत्यधिक मुद्रा स्फीति (बढ़ती कीमतें) या मुद्रा सकुचन (घटती कीमतें) का हानिकारक प्रभाव पड़ता है और अर्थव्यवस्था के उत्पादन, वितरण, आय तथा रोजगार स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते है। मूल्य स्तर मे अप्रत्याशित परिवर्तन समाज के विभिन्न वर्गों को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है, जिससे अर्थव्यवस्था का सामान्य आर्थिक विकास खतरे मे पड जाता है। अर्थव्यवस्था मे अत्यधिक बढ़ती हुई कीमतें आर्थिक विकास के लिए हानिकारक तथा अवाछनीय होती है। अत आर्थिक विकास और स्थायित्व के लिए यह आवश्यक है कि दोनों तरह की कीमतों के परिवर्तन को रोका जाय। सामान्यतया मुद्रा-स्फीति तथा सकुचन की दशाओं की मुद्रा तथा साख की मात्रा के आधार पर व्याख्या की जाती है। चूँकि मूल्यों मे परिवर्तन को सीधे पूर्ति के परिवर्तन से सम्बन्धित किया जाता है, अत मूल्य स्थिरीकरण हेतु मौद्रिक नीति का यह उद्देश्य होना चाहिए कि मुद्रा तथा साख की मात्रा के परिवर्तन द्वारा मूल्य मे स्थायित्व हो।

आर्थिक विकास के लिये मूल्य स्थायित्व वाछनीय है और इस कारण मूल्य मे अत्यधिक उतार-चढ़ाव को सदैव हानिकारक मानाजाता है। पर इस सम्बन्ध मे मूल्य स्थायित्व का क्या स्वरूप है, इसमे कोई सामान्य मत नही है। इस सम्बन्ध मे मूल्य परिवर्तन की निम्न तीन विशेष दशाओं का विश्लेषण किया जा सकता है[18]-

1 धीमी गति से बढ़ती कीमतें

2 धीमी गति से गिरती कीमतें

3 स्थिर कीमतें

अधिकाश अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि एक मद गति से बढ़ती हुई कीमतें अर्थव्यवस्था के लिये हानिकारक न होकर उत्पादन, रोजगार तथा आर्थिक सवृद्धि के लिये आवश्यक है। यदि मूल्य स्तर मे वृद्धि अत्यधिक नहीं है और यह नियत्रित रूप मे है तो इससे वांछित विकास तथा स्थायित्व को प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह "यदि कीमतों की वृद्धि को कम करके 2-3 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर दिया जाय तो लगातार होने वाले मन्द गति से इस मुद्रास्फीति का कोई खतरा नहीं रहता।"[19] मूल्यों का सामान्य गति से बढना अर्थव्यवस्था के उत्पादन, आय तथा रोजगार वृद्धि के लिये आवश्यक है। कीमतों की वृद्धि अर्थव्यवस्था मे उत्पादक तथा विनियोगकर्ता के दृष्टिकोण से अत्यन्त आवश्यक है और इस तरह आर्थिक विकास मे सहायक है।

इसके विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियों का यह विचार है कि मूल्य स्तर मे कमी के द्वारा अर्थव्यवस्था का स्थायित्व अधिक वाछनीय है। यहाँ पर कीमतों का गिरने का तात्पर्य लगातार किसी दर से गिरना न हो कर वास्तव मे उत्पादन की वास्तविक लागत मे गिरना है, जिसका लाभ उपभोक्ताओं को घटी हुयी मौद्रिक कीमतों के रूप मे प्राप्त होना चाहिए। पर इस सम्बन्ध

---

18. W.W. Haines, Money, Prices and Policy, p. 550.

19. "If price increase could be held down to, say 2 percent per year, such a mild steady inflation need not cause too great alarm", P.A. Samnelson, Economics (4 rth Ed.) p. 270

मे अधिकाश अर्थशास्त्रियों का मत है कि लगातार मुद्रा सकुचन की स्थिति आर्थिक क्रियाओं को लगातार कम उत्पादन तथा कम रोजगार की दशाओं पर ले जायेगी।[20]

मुद्रा स्फीति तथा मुद्रा सकुचन की इन उपर्युक्त दशाओं के बीच अर्थव्यवस्था के स्थायित्व को स्थिर कीमत स्तर के आधार पर भी प्राप्त किया जा सकता है। यह स्थिति मुद्रा स्फीति तथा सकुचन की अत्यधिक वृद्धि सीमा से सम्बन्धित समस्याओं को दूर करती हुयी कुछ अन्य लाभों को लिये हुए है। स्थिर कीमतों के कारण व्यापारिक अनिश्चतता दूर की जा सकती है और इससे आर्थिक क्रियाओं मे वृद्धि अधिक तेजी से सम्भव है। पर यदि पूर्ण रोजगार की प्राप्ति के साथ कीमतों मे समान्य वृद्धि हो रही हो, तो यह बेरोजगारी तथा स्थिरकीमत स्तर से अधिक महत्वपूर्ण होगी।

विनिमय दर के स्थायित्व को कायम बनाये रखना भी मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य है। यदि किसी अर्थव्यवस्था मे लगातार निर्यात की तुलना मे आयात बढ़ रहे हों, जिससे विदेशी विनिमय की समस्या हो गयी हो तो ऐसी दशा मे इसके अर्थव्यवस्था पर पडने वाले अन्य प्रभावों को रोकने के लिये यह आवश्यक है कि विनिमय दर मे स्थायित्व प्रदान किया जाय। विनिमय दर मे अस्थायित्व के कारण अर्थव्यवस्था के उत्पादन, रोजगार तथा आर्थिक विकास पर प्रभाव पडता है। अत इन प्रभावों को दूर करने के लिये मौद्रिक नीति के लिये यह आवश्यक है कि विनिमय दर को स्थायी बनाया जाय। सामान्यत मुद्रा नीति के उपयुक्त प्रयोग के सम्बन्ध मे यह कहा जाता है कि इसका प्रयोग अर्थव्यवस्था के बाह्य उद्देश्यों को प्राप्त करने मेकरना चाहिये। घाटे के भुगतान सन्तुलन की स्थिति, पूँजी प्रवाह आदि के सम्बन्ध मे मौद्रिक नीति अधिक महत्वपूर्ण है। चूँकि अर्थव्यवस्था के इन बाह्य क्षेत्रों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध विनिमय दर से है, अत विनिमय दर के स्थायित्व के द्वारा मौद्रिक नीति भुगतान सन्तुलन के घाटे तथा पूँजी प्रवाह की समस्या का समाधान कर सकती है। विनिमय दरों मे होने वाली लगातार परिवर्तन से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा विभिन्न देशों के बीच आर्थिक सम्बन्धों मे अनिश्चितता उत्पन्न हो जाती है, जिससे व्यापार की दशा तथा मात्रा प्रभावित होती है।

---

20. W.W. Haines, Money, Prices and Policy, p. 555.

विनिमय दर की अस्थिरता के कारण देश के आन्तरिक मूल्य पर भी प्रभाव पडता है और आन्तरिक तथा विदेशी क्षेत्रों मे सट्टेबाजी प्रवृत्तियाँ आरम्भ हो जाती है। ऐसे देश जिनका अन्य देशों के साथ घाटे का भुगतान सन्तुलन है और जिनका बहुत सा विकासात्मक आयात अन्य विकसित देशों से है, वहाँ विनिमय दर के परिवर्तित होते रहने पर अनेक आन्तरिक तथा बाह्य समस्याये उत्पन्न हो जाती है। अत अर्थव्यवस्था की आन्तरिक तथा बाह्य स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि मौद्रिक नीति विनिमय दर को स्थायी बनाये।

मौद्रिक नीति के अनेक उद्देश्यों मे एक उद्देश्य यह भी है कि अर्थव्यवस्था मे मुद्रा को तटस्थ बनाया जाय। मुद्रा की तटस्थता का तात्पर्य यह है कि अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं पर मुद्रा का प्रभाव नहीं होना चाहिये। हेयक, हाट्रे तथा विक्स्टीड आदि अर्थशास्त्रियों का मत है कि अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं मे उतार-चढ़ाव प्रधानतया मौद्रिक कारणों से होते है। मुद्रा की मात्रा इस तरह नियत्रित करना चाहिये कि रोजगार, उत्पादन तथा मूल्य स्तर पर इसके हानिकारक प्रभाव न पड सके। इस रूप मे तटस्थ मौद्रिक नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्रों पर मुद्रा की मात्रा से पडने वाले हानिकारक प्रभावों तथा परिवर्तनों को दूर करता है। इसके अन्तर्गत मुद्रा की स्थायी मात्रा द्वारा अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं मे होने वाले अत्यधिक उतार-चढ़ाव को रोकना तथा मूल्य स्तर मे स्थायित्व प्रदान करता है। चूँकि अर्थव्यवस्था मे अप्रत्याशित मूल्य स्तरों मे वृद्धि या कमी का कारण प्रधानतया मुद्रा की मात्रा मे ही वृद्धि या कमी है। अत तटस्थ मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुद्रा की मात्रा को इस तरह अनुकूलतम् तथा वांछनीय रूप मे बनाना चाहिये कि अत्यधिक बढ़ती हुई या घटती हुई कीमतें स्थायी बनायी जा सके। अर्थव्यवस्था मे आर्थिक विकास तथा स्थायित्व के लिये यह आवश्यक है कि मौद्रिक अधिकारी मुद्रा को अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं मे तटस्थ रखे। वर्तमान समय मे आर्थिक क्रियाओं मे मुद्रा का तटस्थ होना सम्भव नही है, जिसके कारण यह उद्देश्य अब महत्वपूर्ण नहीं है।

मौद्रिक नीति का अन्तिम प्रमुख उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों तथा वर्गों मे उत्पादन तथा आय के उचित व समान वितरण को प्राप्त करना है। किसी अर्थव्यवस्था मे व्याप्त आर्थिक असमानताये तथा आय का असमान तथा अनुचित वितरण अब आर्थिक नीति के

प्रमुख उद्देश्यों का विषय बनता जा रहा है, जिससे मौद्रिक नीति का यह भी उद्देश्य हो जाता है कि वह आर्थिक असमानता को दूर करे तथा आय के वितरण को समान तथा न्यायपूर्ण बनाये। वर्तमान समय के आर्थिक व सामाजिक विकास मे आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय की समस्या के बढ़ते हुए महत्व के कारण अब सरकार तथा मौद्रिक अधिकारियों के लिये यह आवश्यक हो गया है कि अर्थव्यवस्था के सामान्य आर्थिक व सामाजिक हित के लिये आय की असमानता को दूर करते हुए वितरण की उचित व्यवस्था को स्थापित करे।

वास्तव मे किसी अर्थव्यवस्था के आर्थिक व सामाजिक विकास के लिये अन्य बहुत से उद्देश्य होते है। प्राकृतिक साधनों का सचयन, अधिक स्वतत्रता तथा सुरक्षा, अधिक प्रभावपूर्ण विदेशी नीति तथा साधनों को अधिक गतिशील बनने से सम्बन्धित उद्देश्यों मे मौद्रिक नीति का सहयोग अपेक्षित है। ऊपर हमने मौद्रिक नीति के अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्देश्यों का ही विश्लेषण किया है, पर किसी देश की मौद्रिक नीति मे इन उद्देश्यों के साथ अन्य और उद्देश्य भी सम्मिलित हो सकते है।

मौद्रिक नीति के इन उपर्युक्त विभिन्न उद्देश्यों के सम्बन्ध मे एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन उद्देश्यों मे यह आवश्यक नहीं है कि पारस्परिक मेल या सगति हो। सामन्यतया इन उद्देश्यों मे पारस्परिक सघर्ष या विरोध होता है। अत मौद्रिक नीति के सचालन मे यह समस्या है कि एक उद्देश्य को प्राप्त करने मे दूसरे उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती। उदाहरण के लिये, यदि एक ओर मौद्रिक नीति अधिकतम् उत्पादन तथा पूर्ण रोजगार प्राप्त करना चाहती है तो अर्थव्यवस्था मे आन्तरिक मूल्य स्थायित्व को नहीं प्राप्त किया जा सकता, क्योंकि उत्पादन और रोजगार बढ़ाने की प्रक्रिया मे मूल्य स्तर मे वृद्धि स्वाभाविक है। इसी तरह मूल्य स्थायित्व तथा विनिमय दर मे स्थायित्व को एक साथ प्राप्त करना कठिन है, क्योंकि इन उद्देश्यों मे मेल नहीं है। साथ ही साथ यदि अर्थव्यवस्था आर्थिक सवृद्धि को बढ़ाने मे लगी है तो यह पूर्ण रोजगार से या कीमत स्थिरीकरण उद्देश्य से मेल नहीं खाता। यदि उत्पादन तथा आर्थिक सवृद्धि की मात्रा को बढ़ाने के लिये एक ओर विकसित पूजी प्रधान विधियों का प्रयोग किया जाता है तो दूसरी ओर श्रम की दशा मे बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह यदि समाज मे वितरण की न्यायपूर्ण

व्यवस्था तथा आर्थिक असमानता को दूर करने का प्रयास किया जाता है तो तीव्र आर्थिक विकास सम्भव न हो सकेगा। इससे स्पष्ट है कि मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों मे पारस्परिक सगति नहीं है। इस असगति के कारण ही किसी अर्थव्यवस्था मे समयसमय पर अलग-अलग उद्देश्यों को लिया जाता है। यद्यपि इन विभिन्न उद्देश्यों मे सगति स्थापित करना असभव नही है, फिर भी एक साथ सारे उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन है। यही कारण है कि एक अर्द्धविकसित देश सामान्यतया रोजगार के कम स्तर पर भी आर्थिक सवृद्धि की दर को बढ़ाने मे रूचि रखता है, क्योंकि इनदेशों की अनेक आर्थिक एव सामाजिक समस्याओं का समाधान आर्थिक विकास की वृद्धि मे ही सभव है। इसके विपरीत एक विकसित अर्थव्यवस्था मे यह सभव है कि उत्पादन तथा रोजगार वृद्धि की दर के साथ-साथ बाह्य तथा आन्तरिक स्थायित्व को भी प्राप्त किया जा सके।[21]

अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था मे इन विभिन्न उद्देश्यों मे सगति प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था की विभिन्न नीतियों मे मेल स्थापित किया जाय। इस बात को मूल्य एव रोजगार मे एक साथ सम्बन्ध देख कर विश्लेषित किया जा सकता है।

यहाँ पर हम पूर्ण रोजगार एव मूल्य वृद्धि के पारस्परिक विसगति को स्पष्ट करेंगे। पूर्ण रोजगार तथा मूल्य मे स्थायित्व का उद्देश्य अर्थशास्त्रियों व अन्य लोगों मे मान्यता प्राप्त है। परन्तु अधिकाश अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि इन दोनों उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त नही किया जा सकता। वस्तुत ये दोनों उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी है, अत इनमे से केवल एक उद्देश्य की प्राप्ति का चुनाव किया जा सकता है। इस बात को सक्षेप मे इस तरह से देखा जा सकता है कि यदि हम अर्थव्यवस्था की बेरोजगारी की दशा से आरम्भ करे और यह मानते हुए कि मूल्य निम्न स्तर पर है तथा व्यापारिक क्रियाओं का पुनरूद्धार की दशा है तो इसका पहला प्रभाव यह होगा कि उत्पादन तथा रोजगार मे वृद्धि होगी। यह सभव है कि साथ-साथ मूल्य मे वृद्धि न हो। पर जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था मे विस्तार होता जाता है, उत्पादन

---

21. P.D. Hajela, Problems of Monetary Policy in under developed Countries, p. 26.

एव रोजगार वृद्धि मे अवरोध उत्पन्न होने लगते है और मूल्य मे भी वृद्धि होने लगती है। जितना अधिक हम पूर्ण रोजगार के समीप पहुचेंगे, उतना अधिक मूल्य मे वृद्धि होगी।

इस स्थिति को चित्र 2 1 मे दिखाया गया है। चित्र मे यदि हम मन्दी की दशा A से प्रारम्भ करते है तो पूर्ण रोजगार की दशा मे तभी पहुचते है जब अपेक्षाकृत अधिक तीव्र मूल्य वृद्धि B के रूप मे होती है। यदि इस ऊँचे स्तर पर हम मूल्य मे स्थायित्व चाहते है तो हम यह पायेगे कि रोजगार की स्थिति C की ओर गिरने को होगी। बिन्दु D पर पुन पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते मूल्य मे पुन वृद्धि हो। E बिन्दु की ओर रोजगार मे कमी को रोकने के लिए मूल्य मे लगातार वृद्धि F की ओर होनी चाहिए। मौद्रिक नीति के विभिन्न उद्देश्यों मे इस तरह विसगति तथा पारस्परिक विरोध के कारण इसके

चित्र 2 1
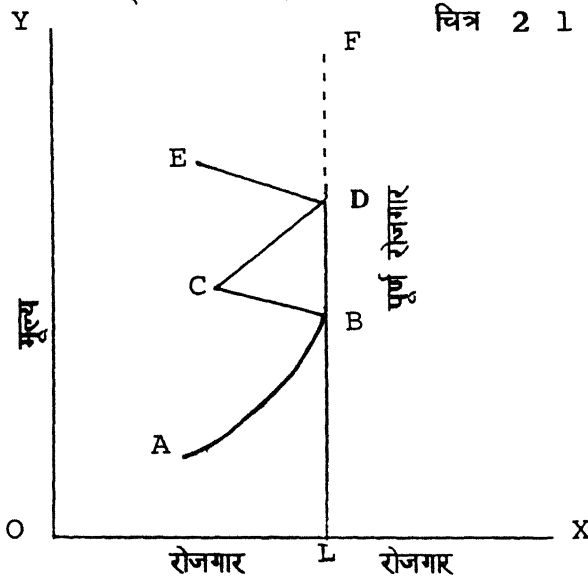
क्रियान्वयन मे अनेक रूकावटे या अवरोध उत्पन्न हो जाते है। अत मौद्रिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने मे क्रियान्वयन प्रक्रिया मे आने वाले प्रमुख अवरोधों को स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा।

2.4 मौद्रिक नीति के अवरोध

मौद्रिक नीति के उद्देश्य तथा इसके कार्य क्षेत्र और सामर्थ्यता सम्बन्धी दिये गये विश्लेषण से दो महत्वपूर्ण बातें उल्लेखनीय है। प्रथम, यह कि मौद्रिक नीति के उद्देश्य उन व्यक्तियों द्वारा निर्धारित किये जाते है, जो किसी देश मे अधिकारी या सत्ता से सम्बन्धित है। अत अर्थशास्त्रियों और मौद्रिक सैद्धान्तिकों के लिये निर्धारित उद्देश्य एक प्रकार से दिये हुये

आकडे के रूप मे होते है। देश के केन्द्रीय बैंक उन उद्देश्यों पर कोई प्रश्न या आपत्ति न करके उनके सहयोग हेतु होते है। दूसरा, यह कि ये उद्देश्य आपस मे एक दूसरे के सगत नही होते।[22] ये बहुत ही उलझनपूर्ण है, अल्पकाल मे ये परस्पर प्रत्यक्ष रूप से विरोधी हो सकते है और केवल समन्वय के द्वारा ही दीर्घ काल मे इनमें सन्तुलन की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ यदि कोई देश अपने आर्थिक विकास को अधिकतम् करने की दृष्टि से उत्पादक वस्तुओं की अधिकतम् मात्रा और उपभोग वस्तुओं की कम मात्रा उत्पन्न करता है तो व्यवस्था मे स्फीतिकारी दशाए उत्पन्न हो जाती है। परिणामत मूल्यों मे स्थायित्वता प्राप्त करने का उद्देश्य कठिन हो जाता है और इसी तरह यदि कोई देश उत्पादन मे पूँजी प्रधान विधियों पर अधिक जोर देता है तो रोजगार उस दर से सृजित न हो सकेगा, जिससे देश मे पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। इसी तरह यदि आय एव सम्पत्ति के समान वितरण के उद्देश्य को लिया जाय तो यह सर्वमान्य विचारधारा कि आय मे असमर्थता का अभिप्राय लाभ-कर्ताओं मे अधिक आय से है। अर्थव्यवस्था के समृद्धि दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि लाभ-प्राप्त-कर्ताओं की आय मे अधिक वृद्धि हो, न कि उपभोक्ताओं की आय मे, क्योंकि लाभ-कर्ता ही विनियोग दर, उत्पादन दर, रोजगार दर और आर्थिक दर मे वृद्धि करते है। अत किसी सरकार के लिये यह बहुत ही कठिन कार्य है कि सारे उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त कर सके। अत यहाँ यह महत्वपूर्ण होगा कि सरकार किसी समय प्राथमिकता के आधार पर कुछ उद्देश्यों को प्राप्त करे और किसी दूसरे समय दूसरे उद्देश्य को। उदाहरण के लिये अल्प विकसित देशों मे यह चुनाव पहले उच्च आर्थिक विकास प्राप्त करने से हो न कि रोजगार वृद्धि और समान आय वितरण से, जबकि एक विकसित देश की सरकार आर्थिक विकास के तीव्र गति के साथ रोजगार स्तर एव आन्तरिक तथा बाह्य क्षेत्रों मे स्थायित्वता को प्राप्त कर सकती है। इस तरह मौद्रिक नीति के

---

22. The aims of Economic Policy to which monetary action is related are complex . They can be directly in conflict with each-other in the short term and only by adjustment can be held in balance in the long"- Radcliffe Committee Report, p. 337.

विभिन्न उद्देश्यों मे समन्वय एव सगति प्राप्त करना असम्भव नहीं है, किन्तु ऐसे समन्वय एव सगति के लिये आवश्यक है कि प्रतिस्पर्धी आर्थिक व्यवस्था के स्थान पर उपयुक्त आर्थिक पृष्ठभूमि उत्पन्न की जाय।

इसी तरह मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन मे पूर्ण क्षमता स्तर पर उत्पादन और समृद्धि के साथ मूल्य स्तर मे स्थायित्वता उद्देश्य के सम्बन्ध मे कई सरचनात्मक अवरोध उत्पन्न होते है। ऐसे अवरोधों का एक समूह स्थिर स्फीतिकारी दशा से सम्बन्धित है और दूसरा लागत वृद्धि शक्तियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। जहा तक स्थिरावस्था स्फीतिकारी दशा का सम्बन्ध है, वह ऐसी दशा को निर्देशित करता है, जिसमे स्फीति के साथ-साथ अर्थव्यवस्था मे अतिरिक्त क्षमता मे वृद्धि हो रही हो। ऐसी स्थिति मे समग्र माग, उत्पादन से अधिक होता है और मूल्यों मे वृद्धि के फलस्वरूप बेरोजगारी की दशा विद्यमान रहती है। इस तरह जैसा कि फिलिप्स मॉडल मे मुद्रा स्फीति दर और बेरोजगारी दर को साथ-साथ स्पष्ट किया गया है। वह अर्थव्यवस्था मे उद्देश्यों के चुनाव के सामने इस समस्या के रूप मे उत्पन्न होता है कि अर्थव्यवस्था मे किसी निश्चित दर से बेरोजगारी दूर करने के लिये कितनी मुद्रा-स्फीति की दर बढ़ानी पड़ेगी। इसी तरह मुद्रा स्फीति की एक निश्चित दर को कम करने के लिये कितनी बेरोजगारी दर मे वृद्धि करनी पडेगी।[23]

इसी तरह अर्थव्यवस्था के सरचनात्मक अवरोधों मे लागत वृद्धि स्फीतिकारी दशाओं का उत्पन्न होना, जो मुख्य रूप से आयातित वस्तुओं और सेवाओं के बढ़े हुये मूल्यों से सम्बन्धित है। इस तरह से यदि आवश्यक आयातों का मूल्य जैसे, तेल, पूँजीगत वस्तुए, स्पेयर पार्ट्स, आवश्यक कच्चे माल और कुछ उपभोग वस्तुए, खाद्य तेल आदि का मूल्य बढ़ जाय तो इस तरह से देश मे स्फीतिकारी दशाओं मे वृद्धि हो जाती है। इसी तरह लागत वृद्धि स्फीतिकारी दशाओं का प्रसार प्रशासनिक कीमतों मे वृद्धि से होता है। इस तरह बढ़ी हुयी प्रशासनिक कीमतें सामान्य मूल्य स्तर को बढ़ाने मे सहायक होती है।

---

23. S.B. Gupta, Monetary Economics, Institutions, Theory and Policy, 1990, p. 360.

कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि मौद्रिक नीति अल्प विकसित देशों मे अप्रभावकारी होगी, जहाँ बडी मात्रा मे श्रम शक्ति बेरोजगार है तथा यह नीति सम्पन्न देशों मे मन्दी की अवस्था मे अधिक प्रभावी होगी। देश मे तरलता जाल की स्थिति और विनियोग फलनों का ब्याज से बेलोच होने की दशा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती है, जहाँ मौद्रिक नीति गैर महत्व की हो, किन्तु अल्प विकसित देशों के सन्दर्भ मे ऐसी दृढ़ धारणा गलत हो सकती है कि लोग बड़ी मात्रा मे अनुपयुक्त मुद्रा शेषों को अपने पास रखें। वस्तुत विनियोग वित्त हेतु यहाँ एक सक्रिय माग होती है और इन अल्प विकसित देशों मे पूँजी पर प्रतिफल दरे ऊँची होती है।[24] परन्तु मौद्रिक नीति वास्तविक शक्तियों को उत्पन्न करने मे बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकती है और देश के उत्पादक कार्यों मे गैर कुशलता और अभाव को समाप्त नहीं कर सकती।

अल्प विकसित देशों मे एक बडे गैर मौद्रिक क्षेत्र की स्थिति के कारण मौद्रिक नीति सीमित हो जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था का लगभग एक तिहाई क्षेत्र गैर मौद्रीकृत हे। यहाँ कृषि उत्पादन का बहुत बड़ा भाग प्राय बाजारी स्थिति का न होकर जीवन निर्वाह हेतु है। इन देशों के बहुत से ग्रामीण क्षेत्रों मे अब भी वस्तु लेन-देन प्रथा विद्यमान है और इस तरह यहाँ सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं का एक महत्वपूर्ण भाग मौद्रिक नीति के क्षेत्र के परे है।[25] इस तरह यहाँ पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि ऐसे देशों मे ब्याज दर को निम्न रखने का उद्देश्य मौद्रिक नियत्रणों के क्रियान्वयन पर गम्भीर बाधक सिद्ध होता है और मुद्रा स्फीति दरके नियत्रण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसी तरह यदि सरकार निम्न ब्याज दर की नीति को छोड़ दे तो सार्वजनिक ऋणों की सेवा लागत मे वृद्धि हो सकती है। इसका अभिप्राय ऊँचे कर से होगा, जिसका परिणाम कुछ आर्थिक हानि से होगी, क्योंकि इससे साधनों के निर्धारण

---

24. L.V. Chandler, Central Banking and Economic Development, Bombay, 1962 , p. 22.

25. Arthur I, Bloomfield, Monetary Policy in Underdevelop Country, Vol. 7, 1956, p. 236.

की कार्य-क्षमता कम होती है। इसी तरह निम्न ब्याज दर नीति की व्यवस्था के विपरीत दिखाया जा सकता है और इसके लिये मौद्रिक अधिकारियों को साख प्रसार पर अवरोध और वास्तविक ब्याज दरों के आधार पर बचत को प्रोत्साहित और ऋण देय वित्त के उत्पादन निर्धारण पर बल दिया जाता है।[26]

उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि वास्तविक ब्याज दर, जो प्राकृतिक या सस्थिति ब्याज दर के समकक्ष हो, वह वांछित विकास एव स्थायित्वता के लिये आवश्यक है। इस तरह इन देशों मे ब्याज दर, खुले बाजार की क्रियाए बहुत अधिक प्रभावी न होकर सीमित प्रभाव से सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध मे गुनार मिर्डल ने यह सुझाव दिया कि महत्वपूर्ण रूप से ऊँची ब्याज दर के साथ अर्थव्यवस्था मे हर तरह के नियत्रणों का समाप्त करना, पश्चिमी एशिया के देशों मे पूँजी अभाव की स्थिति के साथ अधिक सगत होगा और अर्थव्यवस्था को पूँजी के प्रयोग हेतु प्रेरित करेगा। यह विदेशी पूँजी के अन्त प्रवाह को त्वरित करेगा और उत्पादक रूपों मे आन्तरिक बजट को सगठित करेगा।[27]

2.5 मौद्रिक नीति के उपकरण

किसी देश के आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण अग के रूप मे मौद्रिक नीति, विकास आवश्यकताओं मे मुद्रा के समायोजन, प्राथमिक क्षेत्रों और उद्देश्यों मे वित्त प्रवाह के सचालन तथा आर्थिक क्रियाओं के विशिष्ट क्षेत्र मे सस्थागत साख और अन्य सुविधाओं द्वारा देश के आर्थिक विकास एव स्थायित्वता मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। मोटे तौर पर मौद्रिक नीति उन उपायों से सम्बन्धित है, जो देश के केन्द्रीय बैंकिग मौद्रिक अधिकारियों द्वारा साख की उपलब्धता एव लागत को नियन्त्रित करने से ली जाती है। मौद्रिक एव साख नीति पांच अन्तरपरस्परीय कारकों पर आधारित है अर्थात् साख की उपलब्धता, मुद्रा की मात्रा ऋण की

---

26. Committee for Economic Development, How low income Countries can advance their own growth, New York, 1966, p. 56.

27. Gunal Myrdl, Asian Drama, Vol. III, 1968, p. 354.

लागत पूँजी, आदेयों की कीमतें तथा अर्थव्यवस्था की सामान्य तरलता।[28] देश के प्रथम पचवर्षीय योजना मे भी अनुकूलतम् लक्ष्यों को प्राप्त करने मे तथा उपलब्ध ससाधनों के पूर्ण प्रभावी प्रयोग मे मौद्रिक एव साख नीति को एक शक्तिशाली उपकरण के रूप मे माना गया है।[29] एक विकसित अर्थव्यवस्था मे मौद्रिक नीति के उपकरणों का क्रियान्वयन सुनियत्रित पक्ष से सम्बन्धित है, जबकि भारत जैसे विकासशील देशों मे इनका सम्बन्ध नियत्रणात्मक पक्ष से है।[30]

इस तरह मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन मे दो पक्ष निहित है। पहला, धनात्मक पक्ष, जो साख और बचतों को बढाने के सम्बन्ध मे प्रोत्साहन से सम्बन्धित है। दूसरा,नकारात्मक पक्ष, जो साख प्रसार के नियत्रण से सम्बन्धित है। वस्तुत मौद्रिक नीति के उपकरणों का सचालन एव क्रियान्वयन राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य मे आर्थिक वातावरण पर आधारित है। इस दृष्टिकोण से भारत मे मौद्रिक नीति मुद्रा एव साख के प्रोत्साहन तथा नियत्रण दोनों से सम्बन्धित है। भारत जैसे विकासशील देशों मे मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था के मौद्रीकृत प्रक्रिया मे सहयोग से सम्बन्धित है। इसमे विनियोग तथा उत्पादन मे मुद्रा एव साख का प्रवाह के नियत्रण से सम्बन्धित है। इस तरह वस्तुत मौद्रिक नीति की प्रभावकारिता मुद्रा एव साख नियत्रण के उपकरणों पर आधारित है। इस सम्बन्ध मे भारत के केन्द्रीय बैंक की परिवर्तित भूमिका प्रथम पच वर्षीय योजना से ही महत्वपूर्ण रही है।[31]

---

28. Desai and Ghonasgi (Ed.), Monetary Policy and Central Banking in India, Bombay, 1969, p. 145.

29. First Five Year Plan, Planning Commission, Government of India, 1952, p. 37.

30. C.N. Vakil and P.R. Brahmanand, Planning for An Expending Economy, 1966, p. 36.

31. Central banking in planed economy can hardly be confined to the regulation of the over all supply of credit are to a some what negative regulation of the flow of bank credit. It would have to take or a direct an active role firstly in increasing are helping to create machinery needed for financial developmental activity all over the country and secondly in insuring that the finance available flows in the direction needed", Government of India, First Five Year Plan, 1952, p. 38.

मौद्रिक नीति के अतिमहत्वपूर्ण और विशिष्ट रूपों मे प्रयुक्त उपकरण मोटे तौर पर बैंक-दर, खुले बाजार की क्रियाए, आरक्षित अनुपात कोष मे परिवर्तन, घाटे की वित्त व्यवस्था, रिजर्व बैंक की विकास बैंकों को दिये गये साख की उपलब्धता तथा लागत मे परिवर्तन , बैंकों के वैधानिक तरलता अनुपात मे परिवर्तन, चयनात्मक साख नियत्रण एव नैतिक दबाव आदि है।

मौद्रिक नीति के उपकरणों मे मौद्रिक नियत्रण की सरकारी उपकरण, घाटे की वित्त व्यवस्था से सम्बन्धित है। यहाँ पर हम योजना आयोग तथा चक्रवर्ती कमेटी रिपोर्ट (1985) मे प्रयुक्त घाटे की वित्त व्यवस्था के अर्थ को लेते हुए विश्लेषण कर सकते है। मौद्रिक नियत्रण के एक उपकरण के रूप मे घाटे की वित्त व्यवस्था के योगदान परीक्षण हेतु हम उच्च अर्घ मुद्रा तथा मुद्रा पूर्ति मे गुणक प्रभाव द्वारा वृद्धि को देखते है। अब इस तरह यदि घाटे की वित्त व्यवस्था के द्वारा सरकार एक ऊँची दर से मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि चाहती है तो इसे ऊँचे दर से बजट मे घाटा दिखाना पडता है, किन्तु यदि सरकार मुद्रा पूर्ति दर मे धीमी वृद्धि चाहती है तो तुलनात्मक रूप से बजट का घाटा कम होना चाहिये। सरकार के लिये यह उपाय करना बहुत कठिन हो सकता है, क्योंकि इसके लिये या तो अन्य स्रोतों जैसे, बढ़े हुये सार्वजनिक ऋण आदि से आय प्राप्त करनी होगी या व्ययों मे कमी करनी होगी। दोनों ही दशाओं मे देश के कुछ न कुछ लोगों पर इसका हानिकारक प्रभाव पडेगा। फलत जनता के विरोध एव अन्य स्थितियों के बचाव से सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेती है।

जहाँ तक बैंक-दर का प्रश्न है यह वह दर है, जिस पर केन्द्रीय बैंक अपने समस्त अग्रिमों एव अन्य भुगतानों को करती है। दूसरे शब्दों मे यह केन्द्रीय बैंक से पूरी बैंकिग व्यवस्था द्वारा ऋण लेने की लागत है। इस दर मे परिवर्तन द्वारा केन्द्रीय बैंक अपने ऋण की लागत, साख की माग तथा व्यापारिक बैंकों की ऋणों मे परिवर्तन करता है, क्योंकि मुद्रा बाजार मे बैंक दर तथा अन्य अल्पकालीन मौद्रिक ब्याज दरो मे महत्वपूर्ण सम्बन्ध होता है। मोटे तौर पर इस उपकरण का प्रभाव विनियोग एव साहसोद्यमियों के प्रत्याशाओं और लाभकारिता तथा नये विनियोग हेतु साख की माग पर पडता है। इसी तरह वित्तीय सस्थाओं के साख राशिनिग नीति को भी प्रभावित करती है। इस दर का प्रभाव सरकारी बाड दरों तथा प्रतिभूतियों के

विक्रय को भी प्रभावित करता है। जैसा कि हाट्रे ने यह सुझाव दिया कि केन्द्रीय बैंक को इस बैंक दर को वांछित स्तर तक बढाने से नहीं रोकना चाहिये और इस दर द्वारा वास्तविक प्रभावकारिता प्राप्त की जा सकती है।[32] वर्तमान समय मे बैंक दर के प्रभावकारिता के सम्बध मे बहुत विवाद रहा है। यहाँ तक कि रेडक्लिफ कमेटी ने भी मिश्रित प्रतिक्रिया व्यक्त की थी।[33] परन्तु बैंक दर का दूसरा पक्ष विशेष महत्व का है और भारत जैसे विकासशील देश, जहाँ नियोजित व्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है, वहाँ विनियोग को प्रभावित करने मे यह एक शक्तिशाली उपकरण सिद्ध होता है। किन्तु अपने आपमे ब्याज दर और इसकी प्रभावकारिता बहुत सीमित है और अनेक कारक इसके प्रभावकारिता को सीमित करते है।

मौद्रिक नीति के दूसरे महत्वपूर्ण उपकरण का सम्बन्ध केन्द्रीय बैंक के खुले बाजार की क्रियाओं से सम्बन्धित है। इस क्रिया का अभिप्राय रिजर्व बैंक द्वारा लोगों तथा अन्य बैंकों से सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय एव विक्रय से है। सरकार के बैंक तथा सार्वजनिक ऋण के व्यवस्थापक होने की दृष्टि से रिजर्व बैंक सरकार के सभी ऋणों एव प्रतिभूतियों को खरीदता है और अपने स्तर पर बाजार मे इन्हे विक्रय हेतु प्रस्तुत करता है। इस क्रिया द्वारा खुले बाजार मे रिजर्व बैंक द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय से मुद्रापूर्ति तथा उच्च अर्ध मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है और प्रतिभूतियों के विक्रय से यह मात्रा घट जाती है। विकसित देशों अमेरिका, इग्लैण्ड आदि मे खुले बाजार की क्रिया मौद्रिक नीति के सर्वोच्च कुशल उपकरण माने जाते हैं। इन क्रियाओं को कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव भी ब्याज दरों के परिवर्तन, ऋण लेने और भुगतान क्रियाओं आदि पर पड़ता है। किन्तु भारत मे रिजर्व बैंक द्वारा खुले बाजार की क्रियाए मौद्रिक नियत्रण का एक शक्तिशाली उपकरण नही रहा है। इसके प्रभावी होने के लिये कम से कम तीन दशाओं का होना आवश्यक है। प्रथम, सरकारी प्रतिभूतियो का बाजार विकसित एव सुसगठित हो। दूसरा, केन्द्रीय बैंक प्रतिभूतियों के क्रय और विक्रय का पर्याप्त शक्ति रखता

---

32. R. Hawerey, Income and Money, London, 1967, pp. 167-170.

33. Radcliffe Committee Report, p. 162.

हो तथा तीसरा, केन्द्रीय बैंक इन क्रियाओं का सम्पादन मे अन्य महत्वपूर्ण आधारों पर अप्रभावी न हो सके। भारत मे केवल दशा, जिसमे रिजर्व बैंक को प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय का पर्याप्त अधिकार है, पायी जाती है। भारत मे इस क्रिया का तुलनात्मक महत्व सार्वजनिक ऋण व्यवस्था क परिप्रेक्ष्य मे सीमित हो जाता है। रिजर्व बैंक मोटे तौर पर इस क्रिया का प्रयोग सरकार के बढ़ते हुये ऋण कार्यक्रमों मे करती है। भारत मे बढ़ते हुये ऋण प्रबन्ध का उद्देश्य खुले बाजार की क्रिया और इसके प्रभाव को सीमित कर देता है।

मौद्रिक नीति के एक दूसरे महत्वपूर्ण उपकरण के रूप मे आरिक्षतों से परिवर्तन से सम्बन्धित है। प्राय सभी बैंक अपने कुल आदेयों का निश्चित प्रतिशत नगदी के रूप मे रखते है। प्रथमत वैधानिक आरक्षितों को पूरा करने के लिये दूसर अपने दिन प्रतिदिन के नगद भुगतान हेतु। बैंकों के ये आरक्षित वाछित आरक्षित तथा अतिरिक्त आरक्षित के रूप मे होते है। वांछित आरक्षित बैंकों द्वारा वे नगद शेष है, जिन्हे बैंकों को वैधानिक रूप से रिजर्व बैंक के पास रखना पडता है। इस तरह रिजर्व बैंक को अन्य बैंकों पर तीन से पन्द्रह प्रतिशत नगद आरक्षित अनुपात रखने का अधिकार है। इन वांछित आरक्षितों के अलावा बैंक अतिरिक्त आरक्षितों को भी अपने पास रखते है, जो वाछित आरक्षित के अतिरिक्त होते है। इन्हीं आरक्षितों द्वारा वे अपने जमा-कर्ताओं के भुगतान करते है। नियत्रक के रूप मे आरक्षित अनुपात का परिवर्तन मुद्रापूर्ति की मात्रा को प्रभावित करता है और केन्द्रीय बैंक इन आरक्षितों के दरों मे परिवर्तन करके मुद्रा प्रसार एव सकुचन की स्थिति उत्पन्न कर सकते है। इस तरह नगद आरक्षित अनुपात मे कमी द्वारा मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि और इसकी वृद्धि द्वारा मुद्रापूर्ति मे कमी लायी जा सकती है। यह सामान्य धारणा है कि खुले बाजार की क्रिया की तुलना मे आरक्षित अनुपात उपकरण कम प्रभावी है। इसमे सदस्य बैंकों के अपने पोर्टफोलियो व्यवस्था मे परिवर्तन करना पडता है, जिससे बैंकिग क्रियाओं मे अस्थिरता उत्पन्न हो सकती है। इस स्थिति मे अन्य सदस्य बैंकों द्वारा निर्देश का समयानुसार पालन न करने पर तथा केन्द्रीय बैंक को अन्य स्रोतों से क्षतिपूरक ऋणों की वृद्धि के द्वारा तथा अन्य बैंकों के द्वारा बढ़े हुए एव क्षतिपूरक सरकारी प्रतिभूतियों के विक्रय आदि द्वारा इस उपकरण का प्रयोग सीमित हो जाता है। बैंकों तथा विकास बैंकों को रिजर्व बैंक साख की उपलब्धता तथा लागत मे परिवर्तन भी

मौद्रिक नीति का एक उपकरण है। मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त विश्लेषण मे हम स्पष्ट कर चुके है कि बैंकों को रिजर्व बैंक की साख द्वारा उच्च अर्घमुद्रा (एच) मे विस्तार करता है। रिजर्व बैंक को मोटे तौर पर दो रूपों मे साख प्रदान करता है। पहला, मान्य प्रतिभूतियों के आधार पर अग्रिमों के द्वारा तथा दूसरे उनके बिलों के बट्टा (डिस्काउट) के द्वारा। बैंकों को यह साख प्रथमत उनके परपरागत बैकों के कार्यों के सम्पादन हेतु तथा दूसरे कुछ नये नीति उद्देश्यों के प्रोत्साहन हेतु दिया जाता है। इसी के साथ-साथ रिजर्व बैंक इन बैंकों को व्यस्त मौसमी वित्त भी प्रदान करता है। बैंकों के अतिरिक्त रिजर्व बैंक अन्य विकास बैकों को भी साख प्रदान करता है। मौद्रिक नीति के सम्बन्ध मे रिजर्व बैंक के द्वारा विकास बैंकों को प्रदत्त साख उच्च अर्घ मुद्रापूर्ति मे वृद्धि हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। किन्तु इस साख द्वारा मुद्रा प्रसार की अधिक सभावना रहती है।

मौद्रिक नीति के विशेषकर वर्तमान समय मे सवैधानिक तरलता अनुपात (S L R) एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप मे उत्पन्न हुआ है। समग्र मौद्रिक नियत्रण मे यह प्रत्यक्ष कार्य करने की तुलना मे अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है, जिससे मौद्रिक नियत्रण मे इसके योगदान का सही परीक्षण नही किया जाता। इस विधि का प्रधान योगदान व्यापारिक क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र के बीच बैंक साख के आवटन से है। इस सम्बन्ध मे इसी विधि के कार्यशीलता के दो रूप है। प्रथमत, रिजर्व बैंक से सरकार द्वारा लिये गये ऋणो को प्रभावित करके और दूसरा, बैंकों द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों की स्वतत्रता को प्रभावित करके। इन दोनों दशाओं मे उच्च अर्घ मुद्रा का सृजन प्रभावित होता है और इस तरह मुद्रा पूर्ति का परिवर्तन भी प्रभावित होता है। भारत मे बैंक न केवल नगद आरक्षितों से सम्बन्धित है, अपितु वे वैधानिक तरलता अनुपात से भी सम्बन्धित है। इस वैधानिक तरलता अनुपात के अन्तर्गत प्रत्येक बैंक को वैधानिक रूप से अपनी कुल माग तथा समय आदेयों का एक निश्चित न्यूनतम् अनुपात रखना पड़ता है। इस तरह वैधानिक तरलता अनुपात (S L R) को निम्न समीकरण के रूप मे दिखाया जा सकता है -

$$SLR = \frac{ER + I' + CB}{L}$$

जहाँ, ER = अतिरिक्त आरक्षित,

I' = सरकारी तथा अन्य स्वीकृत प्रतिभूतियों में विनियोग,

CB = अन्य बैंकों के साथ चालू खातें का शेष,

L = कुल मांग और समय आदेय

भारत मे वैधानिक तरलता अनुपात मौद्रिक नीति का एक परिवर्तनशील उपकरण नही रहा है और सामान्यत: इसका प्रयोग ऊर्ध्वमुखी परिवर्तन से सम्बन्धित रहा है। भारत मे वैधानिक तरलता अनुपात प्रथम बार 1950 मे लागू किया गया और यह 20प्रति० था। इसके बाद यह लगभग पन्द्रह वर्षों तक इसी प्रतिशत तक बना रहा और 1964 मे इसे बढ़ाकर 25 प्रति.तक कर दिया गया। पुन 1970 मे इसे बढ़ा कर 37 ‚ प्रतिशत कर दिया गया। जनवरी-मार्च, 1993 मे वैधानिक तरलता अनुपात लगभग 37 5 प्रतिशत था, इसमे 2 5 प्रतिशत की कटोती की गयी। पुन अक्टूबर, 1993 मे 2 5 प्रतिशत की कमी करके 37 25 प्रति० से 34 75 प्रति० कर दिया गया।

उपर्युक्त मुद्रा साख के परिमाणात्मक उपकरणों के साथ-साथ मौद्रिक नीति के कुछ चयनात्मक नियत्रण विधिया भी है। मुद्रा और साख का कुछ विशिष्ट उद्देश्य और क्षेत्र के साथ नियत्रण चयनात्मक या गुणात्मक साख कहा जाता है। जिसमे कुल साख तथा मुद्रा की मात्रा के स्थान पर साख का वितरण भी क्षेत्रानुसार निर्धारण किया जाता है। ये चयनात्मक विधिया सामान्यत प्रतिभूति उन्मुख होती है। यदि अर्थव्यवस्था मे व्यापारिक और विनियोगर्ता बैंक वित्त पर आधारित न हों आधारित न हों और उनके अन्य वित्त के स्त्रोत हों तो चयनात्मक साख विधियों का प्रभाव कम हो जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये विधियाँ परिमाणात्मक साख विधियों के सहयोगी के रूप मे प्रयुक्त की जा सकती है। भारत मे इन विधियों को प्रथमत 1956 मे प्रयोग किया गया था। तब से इनके क्षेत्र एव स्थिति मे काफी विस्तार होता रहा। वर्तमान समय मे जो वस्तुए इन विधियों से सम्बन्धित है, उनमे खाद्यान्न, महत्वपूर्ण तिलहनें, खाद्य तेल , सूत तथा कपास, चीनी, गुड तथा खाडसारी, सूती कपडा, आदि सम्बन्धित है। बैंकिग रेगुलेशन एक्ट के तहत रिजर्व बैंक चयनात्मक साख विधियों का चयन करता है। इसके अन्तर्गत प्रतिभूतियों के बदले ऋणों की न्यूनतम् सीमा के परिवर्तन के द्वारा, किसी ऋण ग्राहक के अधिकतम् अग्रिमों पर सीमा के द्वारा, विवेचनात्मक ब्याज दर के द्वारा, वस्तुओं के सग्रह हेतु वित्तीयन पर नियत्रण के द्वारा कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं के विक्रय के बिलों के डिस्काउट पर रोक आदि के द्वारा चयनात्मक साख विधियों का प्रयोग किया जाता है।

2 6 सस्ती मुद्रा नीति

अर्ध विकसित भारत की आर्थिक नीति के समष्टिभावी उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किस तरह की मौद्रिक नीति हो, इस सम्बन्ध मे सस्ती मुद्रा नीति तथा इसकी मान्यताओं और महत्व का उल्लेख आवश्यक होगा। केन्स के सामान्य सिद्धान्त (1936) के बाद विश्व के अधिकाश विकसित और अर्ध विकसित देशों ने महगी मुद्रा नीति के स्थान पर सस्ती मुद्रा नीति को बड़े उत्साहपूर्वक अपनाया है, किन्तु यहाँ यह महत्वपूर्ण होगा कि हम इसकी मान्यताओं का परीक्षण करे, जिसके अन्तर्गत यह प्रभावी रूप से क्रियाशील होती है और भारत जैसे अल्प अविकसित देश मे इसकी क्या उपादेयता है।

सर्वप्रथम, सस्ती मुद्रा नीति का अभिप्राय यह है कि सम्बन्धित अर्थव्यवस्था मे मुद्रा-बाजार पूर्णतया सगठित और विकसित हों। यदि ऐसी अर्थव्यवस्था है, जिसमे मुद्रा-बाजार असगठित और अविकसित है तो ऐसी दशा मे अप्रयुक्त मुद्रा शेषों की माग कम होगी।[34] निश्चित ही इस तरह की माग वित्तीय विनियोगों जैसे-बॉण्ड, प्रतिभूतियाँ, इक्विटी आदि नहीं होगी, जैसा कि इनका सम्बन्ध विकसित बाजार मे होगा। इस तरह अप्रयुक्त मुद्रा शेषों और वित्तीय विनियोगों के बीच इस क्षीण सम्बन्ध के होने से बढ़ी हुयी मुद्रा की मात्रा द्वारा ब्याज दर कम नहीं होगी। इसी के साथ-साथ दूसरी प्रमुख मान्यता यह होगी कि विनियोग अधिकतर मौद्रीकृत हो।[35] यदि किसी अर्थव्यवस्था मे कुल विनियोग का बडा भाग गैर मौद्रीकृत विनियोग से सम्बन्धित है, तो सस्ती मुद्रा नीति, जो केवल मौद्रीकृत विनियोग को प्रभावित करती है तो अर्थ व्यवस्था पर ऐसी नीति का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव

---

34. Some thirty years ago, the unorganised market Financed as much as ninety percent of the internal track of India, with the expansion of Banking, The percentage has come down but even show it is estimated to be as high as Fifty percent at present, H.V.R. Ieyongar, Monetary Policy and Economic Growth, 1962 pp. 192-193.

35. Rough estimates for sample survey suggest that between 20 & 25 percent of all savings & investments was non mortalis in the preplan years, Wilfred Malendaum in East & West in India's Economic development, 1959, p.25.

नही होगा। सस्ती मुद्रा नीति की एक और महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि पूँजी की सीमान्त दक्षता गिर रही हो। इसका अभिप्राय यह है कि विनियोग जो किये जा रहे हों तथा अर्थव्यवस्था मे रोजगार तथा आय के स्तर बढ़ रहे हों तथा भविष्य की प्रत्याशा और तकनीकी ज्ञान का स्तर अपरिवर्तित हो। यह स्पष्ट है कि यदि अर्थव्यवस्था मे किसी तरह का तकनीकी विकास हो रहा हो तो नये विनियोगों की उत्पादिता बढेगी और यदि विनियोगकर्ताओं की प्रत्याशा मे कोई परिवर्तन न हो रहे हों तो पूँजी की सीमान्त दक्षता बढ़ जायेगी। ऐसे सन्दर्भ मे विनियोग प्रेरक मे वृद्धि तकनीकी विकास के द्वारा ही होगी और विनियोग को प्रेरित करने के लिये ब्याज-दर का गिरना आवश्यक नही है। यहाँ इस सम्बन्ध मे एक और बात भी महत्वपूर्ण है-अर्थव्यवस्था मे विनियोग का दृष्टिकोण व्यक्तिगत दृष्किोण सा न होकर सामाजिक दृष्टिकोण से हो सकता है।[36] ऐसे सन्दर्भ मे पूँजी की सीमान्त दक्षता को विनियोग द्वारा होने वाले उस लाभ को लेंगें, जिसकी प्राप्ति समाज को होती है, न कि व्यक्ति विशेष को। वर्तमान समय मे जब राज्य तीव्र गति से सामाजिक कल्याण की ओर उन्मुख है, इस तरह का दृष्टिकोप बहुत महत्व का है। ऐसे सन्दर्भ मे हमे सस्ती मुद्रा नीति के अलावा अन्य आधारों पर ब्याज दर तथा विनियोग निर्णय को सोचना होगा। साथ ही साथ सस्ती मुद्रा नीति की यह भी मान्यता है कि विनियोग की माग, ब्याज लोचशील है अर्थात् नये विनियोग की माग बढ़ेगी, यदि ब्याज दर मे कुछ कमी हो। यहाँ साहसोद्यम मे लागत सरचना के सन्दर्भ मे ब्याज दर इतना कम हो सकती है कि यह सम्भव न हो और विनियोग करने की प्रवृत्ति मजदूरी मे कमी तथा कर रियायतों से अधिक और ब्याज दर मे कमी से कम हो सकती है। यहा पर केन्सीय विचार के अनुसार अर्थव्यवस्था की तेजी तथा मन्दी की दशाए एक प्रति

अर्थव्यवस्था मे पूँजी की सीमान्त दक्षता के उतार-चढ़ाव से निर्धारित होते है, जिसका स्वय निर्धारण उत्पादकों के मनोवैज्ञानिक उतार चढ़ाव से सम्बन्धित है। यहाँ केन्सीय सस्ती मुद्रा नीति के सन्दर्भ मे ध्यान देने योग्य बात है कि सस्ती मुद्रा नीति उस दशा से सम्बन्धित है कि विनियोग इतने महत्वपूर्ण हो गये हों कि उनकी सीमान्त दक्षता मे तीव्र और लगातार कमी हो रही हो।

---

36. Third Five Year Plan, Government of India,p.9.

सस्ती मद्रा नीति की उपादेयता श्रम की प्रवृत्ति के मूल्याकन पर आधारित है। यह सुझाव कि ऐसी मौद्रिक नीति के परिणाम स्वरूप यदि कीमतों मे वृद्धि तथा श्रमिकों के जीवन स्तर मे वृद्धि हो जाय तो इससे लागत जनित मुद्रास्फीति नही होगी, क्योंकि पूर्ण रोजगार के पूर्व श्रमिक अपने रहन-सहन लागत मे वृद्धि और वास्तविक मजदूरी मे कटौती का विरोध नही करते। यह बात इस मान्यता पर आधारित है कि पूर्ण रोजगार पर मजदूरी श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता तथा सीमान्त त्याग के बराबर होती है और पूर्ण रोजगार से कम की सभी दशाओं मे मजदूरी केवल सीमान्त उत्पादकता के बराबर होती है। अत पूर्ण रोजगार पहले की दशा मे मजदूरी सीमान्त त्याग से अधिक होगी और श्रमिकों की आय मे एक अश लगान अर्जन का होगा। ऐसी स्थिति मे वे अपनी वास्तविक मजदूरी मे कमी का विरोध नही करते। अत बढ़ती हुयी कीमतों की स्थिति मे वास्तविक मजदूरी मे लगातार कमी की स्थिति के द्वारा सस्ती मुद्रा नीति घाटे की वित्त व्यवस्था और अधिक उत्पादन तथा रोजगार से सम्बन्धित सस्ती मुद्रानीति तब तक कार्य कर सकती है, जब तक श्रमिक इसका विरोध न करे। एक अल्प विकसित देश मे सस्ती मुद्रा नीति की मान्यता को स्वीकार करना सम्भव न होगा, क्योंकि यहाँ मजदूरी जीवन निर्वाह के इतने सन्निकट है कि इसमे किसी तरह की कटौती लोगों स्वीकार न होगी[37]। इस तरह सस्ती मुद्रा नीति अल्प विकसित देशों मे बढ़ती हुयी मजदूरी की दशाओ मे उपयुक्त न होगी, क्योंकि यदि हम इस मान्यता से चले कि इन देशो मे विनियोग की अतिरिक्त मात्रा समय-अन्तराल व अन्य अवरोधों के कारण उत्पादन मे वृद्धि न कर सके तो सस्ती मुद्रा नीति द्वारा सृजित मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि द्वारा कीमतों मे वृद्धि होगी और वास्तविक मजदूरी मे कमी होगी, किन्तु यह लोगों को मान्य न होगी। भारत मे फैक्टरी श्रमिकों की मजदूरी 1958-59 मे 1952 की तुलना मे कम थी[38] और 1960-61 मे ही उस स्तर से कुछ बढ़ सकी। इसी के साथ उपभोग मूल्य सूचकाक वृद्धि के साथ उनकी मौद्रिक मजदूरी मे भी वृद्धि हुयी । अन्य वर्गों के श्रमिकों के सबध मे विशेषकर भवन निर्माण मे लगे हुये श्रमिकों के सम्बन्ध मे

---

37. A.K. Das Gupta, Kayensian Economics & Underdeveloped Countries, Ed. Book by V.B. Singh, 1956, pp. 156-157.

38. Reserve Bank of India Bulletin, April 1964, p. 424.

बढती हुयी कीमतों से घटती हुयी वास्तविक मजदूरी और बढ़ी हुयी मौद्रिक मजदूरी की स्थिति विद्यमान रही। भारत के सन्दर्भ मे बढ़ती हुयी मौद्रिक मजदूरी और मुद्रा स्फीति की स्थिति को सरकारी क्षेत्रों व कार्यालयों मे देखा जा सकता है। अत केन्सीय सस्ती मुद्रा नीति अल्प विकसित भारतीय मौद्रिक और वित्तीय वास्तविकता के सन्दर्भ मे जहाँ एक ओर स्फीतिकारी दबावों को बढ़ाने मे सहायक है, वहीं उत्पादन, आय व रोजगार तथा विनियोग के स्तर को बढ़ाने मे असमर्थ है।[39]

2.7 घाटे की वित्त व्यवस्था और मौद्रिक नीति

आर्थिक विकास के सम्बध मे सरकार के महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णयों में केन्द्रीय बैंक के मौद्रिक कार्य-कलापों मे घाटे की वित्त व्यवस्था और उसकी मात्रा महत्वपूर्ण है। भारतीय अर्थव्यवस्था मे घाटे की वित्त व्यवस्था का अभिप्राय विकसित देशों की तुलना मे भिन्न है। सामान्यतया भारत मे घाटे की वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत अतिरिक्त मुद्रा का सृजन और सरकार का साख-सृजन व्यवस्था निहित है। अत जितना अधिक घाटे की वित्त व्यवस्था होगी, उतना अधिक साख की मात्रा होगी और उतना ही अधिक मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि होगी। अत सरकार का यह वित्तीय निर्णय रिजर्व बैंक के मौद्रिक नीति मे मुद्रा और साख को नियंत्रित करने मे महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है।

योजना आयोग ने इस बात का तर्क दिया है कि घाटे की वित्त व्यवस्था मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि करता है।[40] भारत मे घाटे की वित्त व्यवस्था, जिस तरह से परिभाषित की जाती है, उसका अभिप्राय वास्तव मे ऋण की मात्रा मे वृद्धि और सरकार के नकद-शेषों मे कमी है, जिसका परिणाम मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि करने से होता है। यद्यपि सभी अल्पकालीन ऋण आवश्यक रूप से मुद्रा-पूर्ति मे वृद्धि नही करते। जहाँ तक इन ऋणों को केन्द्रीय बैंक से लिया जाता है, वहाँ अर्थव्यवस्था मे चलन मे सीधे करेन्सी की मात्रा बढ़ जाती है। चूँकि सरकार के अधिकतर अल्पकालीन ऋण केन्द्रीय बैंक के पास होता है, अत हम यह कह सकते है कि इस पूरी

---

39. P.D. Hajela, Problems of Monetary Policy in Underdeveloped Countries, 1969, pp. 34-36.
40. Government of India, Second Five Year Plan, 1956, p. 184.

मात्रा के बराबर मुद्रा-पूर्ति मे वृद्धि होती है। चूँकि घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा मुद्रा-पूर्ति मे वृद्धि होती है, अत इसको सीधे मौद्रिक नीति से सम्बन्धित होना चाहिये। इस स्थिति मे केन्द्रीय बैंक की साख मे वृद्धि सरकार को दी गयी साख और बैंकिग क्षेत्र मे दी गयी साख के बराबर होती है और इसका परिणाम अर्थव्यवस्था मे बहुस्तरीय साख वृद्धि से होता है। रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रा एव साख के उपयुक्त व्यवस्था का अभिप्राय सरकार तथा बैंकिग क्षेत्र मे केन्द्रीय बैंक के साख नियत्रण से है। योजना प्रक्रिया के समयावधि मे बैक और सरकार घाटे की वित्त व्यवस्था की मात्रा निश्चित करते है और ऐसी स्थिति मे रिजर्व बैंक की घाटे की मात्रा के निर्णय के सम्बन्ध मे कोई अधिकार नहीं होता और भारतीय सन्दर्भ मे घाटे को पूरा करने के लिये रिजर्व बैंक बाध्य होती है। इसका परिणाम गैर स्फीतिकारी नीतियों द्वारा स्थायित्वता प्राप्त करने मे अनेक रूकावटों से है।

कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि घाटे की वित्त व्यवस्था आवश्यक रूप से स्फीतिकारी न होकर पूँजी निर्माण और आर्थिक विकास मे प्रयोग होती है। प्रो0 वी0के0आर0वी0 राव[41] तथा प्रो0 पी0आर0ब्रहमानन्द[42] ने अपने विश्लेषण मे यह दिखाया है कि एक सीमित तथा लगातार घाटे की वित्त व्यवस्था मूल्य वृद्धि के साथ-साथ वस्तुओं की मात्रा मे भी वृद्धि करती है और पूँजी निर्माण मे भी सहायक होती है। अत अर्थव्यवस्था मे होने वाले स्फीति की दशाओं को घाटे की वित्त व्यवस्था का परिणाम नही माना जा सकता है। प्रो0 राव का यह मॉडल गुणक मॉडल है और यह दिखाता है कि वांछित घाटे की वित्त व्यवस्था और मूल्य-स्तर पर इसका प्रभाव लोगों की कर अदा करने की सीमान्त प्रवृत्ति तथा बचत प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। पर यदि अर्थव्यवस्था मे ये दशाए विद्यमान न हों तो घाटे की वित्त व्यवस्था अत्यन्त हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते है। इसी के साथ-साथ यदि पूँजी का निर्माण करती है तथा बलात् बचत के रूप मे यह आर्थिक विकास मे विनियोजन हेतु सहयोगी होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था मे इसी आधार पर घाटे की वित्त व्यवस्था का प्राविधान किया गया है। वस्तुत घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रभाव देश के वातावरण और अन्य नीतियों के

---

41. V.K.R.V. Rao, Essays in Economic Development, New York, 1964, pp. 105-41.

42. P.R.Brahmanand, Growthless inflation by means of stockless Money Supply, p. 451.

प्रभाव से सम्बन्धित है, यदि अर्थव्यवस्था मे पहले से स्फीतिकारी प्रवृत्तिया विद्यमान है तो घाटे की वित्त व्यवस्था से समस्याए और जटिल हो सकती है, पर यदि अर्थव्यवस्था मे स्फीतिकारी दबाव अधिक नहीं है, तो ऐसी दशा मे इस वित्तीय विधि का प्रयोग किया जा सकता है, पर एक ठोस साख नीति के अन्तर्गत इसकी एक निश्चित सीमा होनी चाहिए तथा साथ ही साथ मुद्रा पूर्ति के नियत्रण मे अन्य उपाय होने चाहिए। इस तरह स्फीति को रोकने और आर्थिक विकास का स्थिरता के साथ बढ़ाने के सम्बन्ध मे घाटे की वित्त व्यवस्था सबद्ध हो सकती है। इस तरह घाटे की व्यवस्था का सम्बन्ध जहा मौद्रिक नीति से है,वही इसका सम्बन्ध साख नीति से भी है। पर यहा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि आर्थिक विकास के साथ स्थायित्वता का उद्देश्य है तो घाटे की वित्त व्यवस्था का क्या अनुकूलतम् मात्रा होनी चाहिए। यद्यपि इसका निर्धारण बहुत जटिल है, पर मुद्रापूर्ति के वृद्धि के आधे भाग के रूप मे बिना स्फीतिकारी जोखिम के इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह वास्तव मे घाटे की वित्त व्यवस्था को साख नीति से जोड देना चाहिए, जो अर्थव्यवस्था के गत्यात्मक आवश्यकताओं के सन्दर्भ मे घाटे की वित्त व्यवस्था का निश्चित आकार निर्धारित कर सकती है। योजना आयोग ने प्रथम पचवर्षीय योजना से घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग आर्थिक विकास को तेज करने तथा मूल्य स्थायित्वता को प्राप्त करने मे किया है और इसमे परिणाम स्वरूप मूल्य स्तर मे सत्तरह प्रतिशत (17%) की कमी हुयी, पर द्वितीय पच वर्षीय योजना मे विकासात्मक देयों को पूरा करने मे बडी मात्रा मे घाटे की वित्त व्यवस्था करनी पडी। तृतीय पचवर्षीय योजना मे चीन और पाकिस्तान युद्ध के व्ययों के बढ़ने के कारण अतिरिक्त घाटे की वित्त व्यवस्था का प्राविधान किया गया। इस तरह आर्थिक विकास की परिस्थिति और विकासात्मक देयों के लगातार बढ़ने के कारण घाटे की वित्त व्यवस्था अपरिहार्य हो गयी ।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आर्थिक विकास और मूल्य स्थायित्वता के सन्दर्भ मे घाटे की वित्त व्यवस्था का महत्वपूर्ण भूमिका है। अत अर्थव्यवस्था मे मुद्रापूर्ति नियत्रण और स्फीतिकारी प्रवृत्ति के दबाव को कम करने तथा विकासात्मक देयों द्वारा आर्थिक विकास की दर को बढ़ाने के सम्बन्ध मे मौद्रिक एव साख नीति का महत्वपूर्ण रूप से घाटे की वित्त व्यवस्था से सम्बद्ध हो जाता है।

2.8 रेडक्लिफ समिति की रिपोर्ट

बिट्रिश सरकार द्वारा लार्ड रेडक्लिफ की अध्यक्षता मे एक समिति गठित की गयी, जिसने अपनी रिपोर्ट जुलाई, 1968 मे प्रस्तुत की और जिसका सन्दर्भ ग्रेट बिट्रेन मे मौद्रिक समस्याओं का पुनर्परीक्षण तथा मौद्रिक प्रक्रिया किस तरह कार्य करती है, से सम्बन्धित था [43], और इस समिति को बिट्रेन की मौद्रिक नीति और क्रियान्वयन के परीक्षण के लिए कहा गया, क्योंकि 1950 के समयावधि मे बिट्रेन मे मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन से सभी जुडे थे। इस तरह समिति का एक मात्र कार्य बिट्रेन मे मौद्रिक व्यवस्था के कार्यशीलता से सम्बन्धित था और उसमे मुद्रा स्फीति की समस्या के समाधान हेतु कोई सन्दर्भ नही दिया गया। इसी तरह इस समिति का सन्दर्भ वित्तीय या बजट अथवा राजकोषीय नीति से सम्बन्धित नही था। इस समिति ने बिट्रिश मौद्रिक नीति के सैद्धान्तिक विश्लेषण मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। मोटे तौर पर इस रिपोर्ट को चार भागों मे विभाजित किया जा सकता है

(1) आन्तरिक बैकिग व्यवस्था मे ट्रेजरी बिलो की पूर्ति को प्रभावी नियत्रण हेतु माना जायेगा, न कि कैश की पूर्ति हेतु। (पैरा 583)

(2) कुल माग को प्रभावित करने मे ब्याज दर प्रेरकों पर बहुत कम विश्वास किया जा सकता है। (पैरा 397)

(3) पूरे सन्दर्भ मे तरलता स्थिति पर मौद्रिक अधिकारियों को कार्य करना चाहिए। (पैरा 312)

(4) फर्मो तथा वित्तीय सस्थाओं की तरलता स्थिति के परिवर्तन के द्वारा मौद्रिक उपाय कार्य करते है तथा मात्र मुद्रा पूर्ति ही एक महत्वपूर्ण कारक नहीं है।(पैरा 365)

इस समिति ने इस बात को स्पष्ट नही किया कि बैंको के सन्दर्भ मे उनके आदेय

---

43. Sir Oliver Franks, Some Reflection on Monetary Policy in the Right of Redcliffe Report, Sir Dorab Tata Memorial Lectures, Asia, 1960, p. 1.

सहायता का कार्य करती है। इस सन्दर्भ मे यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है कि मौद्रिक नीति किन सन्दर्भो मे क्या कर सकती है और मौद्रिक नीति की क्या सीमाए है।

इस समिति का इस प्रकार मुख्य निष्कर्ष यह है कि मुद्रापूर्ति जो प्रत्यक्ष रूप से व स्पष्ट रूप से केन्द्रीय बैंक के प्रभाव मे है, वह सभी मौद्रिक कार्यो का एक मात्र कारक नही हो सकता और इस सन्दर्भ मे लोगों के व्यय करने सम्बन्धी निर्णयों मे अर्थव्यवस्था की तरलता महत्वपूर्ण है और इस तरह लोगों के विनियोग व व्यय सम्बन्धी निर्णय मात्र मुद्रापूर्ति से ही नियत्रित नहीं होते, अपितु वे इस बात से प्रभावित होते है कि लोग या व्यापारिक फर्मे गैर बैंकिग वित्तीय सस्थाओं से कितना ऋण प्राप्त कर सकते है। इस तरह तरलता के विस्तृत अर्थ मे बैंकों मे समय जमाए, बचतें, ऋण, शेयर आदि भी उसी तरह तरल है। इस तरह की तरलता के सृजन मे मात्र व्यापारिक बैंकों का योगदान नही है, अपितु गैर बैंकिग वित्तीय सस्थाए भी साख सृजन मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इस तरह रेडक्लिफ समिति के अनुसार आर्थिक क्रियाओं मे मुद्रा का बहुत अधिक योगदान नहीं है और अर्थव्यवस्था के स्थायीत्वता मे मौद्रिक नीति का कोई विशेष योगदान नही है।

2.9 मौद्रिक नीति का कार्यक्षेत्र एवं गैर कार्य क्षेत्र

मौद्रिक नीति और ऐतिहासिक अनुभवों से यह स्पष्ट हुआ है कि सबसे महत्वपूर्ण कार्य जो मौद्रिक नीति कर सकती है, वह मुद्रा पूर्ति के नियत्रण द्वारा देश मे अस्थायित्वता उत्पन्न करने वाले कारकों को नियत्रित कर के उपयुक्त मौद्रिक व्यवस्था द्वारा अर्थव्यवस्था को उचित लक्ष्यों की ओर प्रेरित कर सकती है। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य, जो मौद्रिक नीति कर सकती है, वह अर्थव्यवस्था को एक स्थायी पृष्ठभूमि दे सकती है। वस्तुत यह मौद्रिक व्यवस्था के आर्थिक धुरी मे तेल का कार्य करती है, क्योंकि यह आर्थिक व्यवस्था के पहियों को तीव्र गति से चलाने के लिए अर्थव्यवस्था को उत्पादकों, उपभोक्ताओं और नियोजकों मे पूर्ण विश्वास हो और भविष्य मे मूल्य स्थायित्वता आदि की निश्चितता हो। इसी तरह अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों से उत्पन्न होने वाले

महत्वपूर्ण अस्थिरता प्रेरक कारकों पर नियत्रण हेतु मौद्रिक नीति महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है और इस तरह आवश्यकतानुसार तीव्र और मन्द गति से मौद्रिक विकास और विस्तार के द्वारा वाक्षित उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते है। स्फीतिकारी और घाटे के बजट की स्थिति मे अल्पकालीन ब्याजदर मे वृद्धि के द्वारा अर्थव्यवस्था की स्थिति मे मौद्रिक नीति सहयोग कर सकती है।[45]

यद्यपि मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था के वास्तविक चरों तथा उनकी मात्रा के निर्धारण पर प्रभाव नही डालती, पर इनके प्रभावों मे यह महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। वस्तुत मुद्रा पूरी आर्थिक व्यवस्था की एक मशीन है और यह एक विशिष्ट और कुशल मशीन है और बिना इसके अप्रत्याशित विकास, उत्पादन और जीवन स्तर प्राप्त करना सम्भव न हुआ होता। मौद्रिक अधिकारी और सरकार देश की मौद्रिक व्यवस्था के द्वारा देश मे विकास एव स्थायित्वता को सही दिशा दे सकते है और इस तरह मौद्रिक नीति आर्थिक नीति के अग के रूप सबसे महत्वपूर्ण अग है। फ्रीडमैन ने जे0 एस0 मिल के इस कथन कि "अर्थव्यवस्था मे मुद्रा के अलावा और कोई भी बेकार चीज नहीं है, जिसका समाज ने आविष्कार किया हो", का विरोध करते हुए अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्थितियों और कार्य क्षेत्रों मे मौद्रिक नीति और मुद्रा के विशेष महत्व को स्थापित किया।[46] इसके लिए यह आवश्यक है कि यह उन उपायों से निर्देशित होने चाहिए, जिन्हे यह नियत्रित कर सकते है और उन उपायों से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए, जो इनके नियत्रण से परे हो। उन विभिन्न वैकल्पिक उपायो को, जो मौद्रिक अधिकारी नियत्रित कर सकते है,वे है विदेशी विनिमय दर, मूल्य स्तर, मुद्रा की मात्रा, करेन्सी तथा माग जमाए और विस्तृत अर्थ मे समय जमाओं को भी लिया जाता है। इस सम्बन्ध मे यह भी महत्वपूर्ण है कि मौद्रिक नीति किस तरह से सचालित की जाय। ऊपर निर्दिष्ट विकल्प नियत्रकों मे मूल्य स्तर सबसे महत्वपूर्ण है और इस पर मौद्रिक नीति का सीधा प्रभाव है तथा साथ ही साथ इस सम्बन्ध मे पूर्व कथन सम्भव किया जा सकता है। मौद्रिक नीति

---

45. C.S. Nagpal, Monetary Policy and Inflation in India, 1982, pp. 32-33.
46. W.L. Smith and R.L. Teigen (Ed.), Reading in Money, National Income and Stabilization Policy, 1970, What Monetary Policy can do by Milton Friedman, pp.484-485.

के सचालन की दूसरी महत्वपूर्ण बात जो मौद्रिक अधिकारियों के ध्यान देने योग्य है, वह मौद्रिक नीति मे तीव्र उतार चढ़ाव से बचे और इस तरह वर्ष प्रतिवर्ष जैसा कि फ्रीडमैन ने मौद्रिक नीति के योगदान के सम्बन्ध मे सुझाव दिया कि लगातार एक निश्चित वृद्धि दर (3 से 5%) से मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि होनी चाहिए।[47]

मौद्रिक नीति के उपर्युक्त कार्य - क्षेत्र और कार्य - सामर्थ्यता के साथ - साथ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि मौद्रिक नीति क्या नही कर सकती और इसकी क्या सीमाए है। इस सम्बन्ध मे मौद्रिक नीति की प्रथम सीमा यह है कि यह दीर्घ कालीन समय तक ब्याज दर को स्थिर नही बनाये रह सकती। यह सीमा मुद्रा और ब्याज - दर के सम्बन्ध मे भ्रामक स्थिति के कारण है। ब्याज दर को नीचा रखने के लिए समान्यतया केन्द्रीय बैंक लोगों से प्रतिभूतियों को खरीदता है, जिससे उनके मूल्य बढ़ जाते है और उन पर प्राप्तिया घट जाती है। इस प्रक्रिया मे यह बैंकों के आरक्षितों को बढा देते है। फलत बैंक - साख और अन्तत पूरी मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। यह बढ़ी हुयी मुद्रा ब्याज दर को गिरा देती है। तरलता पसन्दगी रेखा का नकारात्मक ढ़ाल इस बढ़ी हुई मुद्रा की मात्रा इस तरलता पसन्दगी को बढ़ा सकती है और ऋणों के लिए माग मे वृद्धि हो सकती है। यह मूल्य मे वृद्धि कर सकती है, जिससे मुद्रा - मात्रा का वास्तविक माग घट सकता है। इन प्रभावों का परिणाम ब्याज दर के गिरने पर पडने वाले दबाव को विपरीत कर सकता है। इस स्थिति मे ब्याज - दर पर महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव न पडने का विश्लेषण इसके पूर्व केन्सीय सस्ती मुद्रा नीति और उसकी उपादेयता के सम्बन्ध मे किया जा चुका है। अर्थव्यवस्था मे तीव्र गति से मौद्रिक विकास निम्न बाजारी ब्याज दरों तथा अन्य व्ययों पर पडने वाले दबावों के परिणामस्वरूप कुल व्यय को बढ़ाती है और इस तरह वांछित स्थिति से अधिक ऊचे नकद शेषों के तुलनात्मक कीमतों मे वृद्धि होती है और इस तरह आय के बढ़ने से तरलता पसन्दगी वक्र ऊपर बढ़ जाता है और

47. Milton Friedman, The Optimum Quantity of Money p.165

ब्याज दर बढ़ जाती है। इस तीव्र मौद्रिक विकास के साथ नीचे ब्याज दर के स्थान पर ऊँचा ब्याज दर कार्यरत होता है। तीव्र मौद्रिक विकास के साथ बढ़ती हुयी कीमतें और लोगों के द्वारा भविष्य मे कीमतें बढ़ने की प्रत्याशा के परिणाम स्वरूप मुद्रा ऊधार देने वाले लोग ऊँचे ब्याज दर की माग करते है, जैसा कि इरविंग फिशरनेअपने ग्रन्थ "परचेजिग पावर ऑफ मनी" मे दिखाया है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह देखा गया है कि ब्राजील, चिली, अमेरिका आदि देशों मे तीव्र मौद्रिक विकास के साथ ऊँचा ब्याज - दर रहा है और निम्न मौद्रिक विकास के साथ नीचा ब्याज दर सम्बन्धित रहा है। इस तरह मौद्रिक अधिकारी निम्न ब्याज दर के साथ अर्थव्यवस्था को मन्दी दशा की मौद्रिक नीति और ऊँचे ब्याज दर के साथ स्फीतिकारी मौद्रिक नीति से सम्बन्धित रहे है। ये बातें न केवल मौद्रिक नीति के सम्बन्ध मे यह स्पष्ट करते है कि यह ब्याज दर को क्यों स्थिर नहीं बनाये रख सकती, अपितु इनसे यह भी स्पष्ट है कि ब्याज दर मौद्रिक नीति, सस्ती मुद्रा नीति या महगी मुद्रा नीति पर आधारित है, के सम्बन्ध मे एक भ्रामक सूचक है।[48]

मौद्रिक नीति की दूसरी महत्वपूर्ण सीमा यह है कि यह बेरोजगारी दर को भी बहुत समय तक स्थिर नहीं बनाये रख सकती। यहा पर यह बात इस सामान्य मान्यता के विपरीत लगती है कि मौद्रिक नीति का उद्देश्य पूर्ण रोजगार को प्राप्त करना अथवा इसका उद्देश्य रोजगार सृजन से है, पर वास्तविकता यह है कि मौद्रिक नीति यह करने मे असमर्थ है। इसका कारण मुख्य रूप से ब्याज दर ही है। इस सम्बन्ध मे ऐसी नीति के तात्कालिक और समयान्तर परिणामों मे अन्तर का होना है। किसी भी समय - बिन्दु पर कोई न कोई बेराजगारी का स्तर होता है, जो वास्तविक मजदूरी दरों की सरचना मे संस्थिति के लिए जगत मे बने रहने का गुण लिए रहता है। इस बेरोजगारी स्तर पर औसत रूप से वास्तविक मजदूरी दरे एक सामान्य अस्थायी दर से बढ़ने की प्रवृत्ति रखते है। बेरोजगारी दर का निम्न स्तर इस बात का सूचक है कि श्रम की अतिरिक्त माग

---

48. Milton Friedman, The Role of Monetary Policy in Reading in Money, National Income and Stablization Policy by W.L. Smith and R.L. Teaigen. pp. 479-80.

है, जिसका प्रभाव वास्तविक मजदूरी दरों को बढ़ाने से होगा, दूसरे शब्दों मे, बेरोजगारी का प्राकृतिक दर वह स्तर है, जो वाल्रा के सामान्य सतुलन विश्लेषण के आधार पर अर्थव्यवस्था मे समायोजन कर सकेगा।[49] इस तरह से मौद्रिक अधिकारी ब्याज दर से अकित मौद्रिक मानों को परिवर्तित कर सकते है, पर वास्तविक मानों को नियन्त्रित नही कर सकते। इस तरह लगातार मुद्रापूर्ति मे वृद्धि से मौद्रिक मजदूरी और अन्तत वास्तविक मजदूरी गिरने की दशा मे और श्रमिकों के द्वारा ऊँची मजदूरी दर की माग की स्थिति मे तथा मूल्यों की वृद्धि की स्थिति मे बेरोजगारी दर बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। इस तरह मौद्रिक मानों के आधार पर वास्तविक ब्याज - दर, बेरोजगारी - दर, वास्तविक राष्ट्रीय आय स्तर, वास्तविक मुद्रा पूर्ति तथा वास्तविक मुद्रा मात्रा वृद्धि दर को स्थिर नही बनाया जा सकता है।[50]

---

49. Milton Friedman, A programme for Monetary Stability in Reading in Financial Institutions, Ed. by M.D. Ketchum and L.T. Kendill,1965.

50. Milton Friedman, he Role of Monetary Policy American Economic Review, Vol. 63, 1968, pp. 11-17.

------ 000 ------

अध्याय - 3

मुद्रापूर्ति के सिद्धान्त, रिजर्व बैंक विश्लेषण, मौद्रिक नीति हेतु नीतिपरक बातें

(THEORIES OF MONEY SUPPLY, RBI ANALYSIS - IMPLICATIONS FOR MONETARY POLICY)

प्रस्तुत अध्याय में मुद्रा पूर्ति और इसके विश्लेषण से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों की विवचना की जायेगी, क्योंकि भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति का मुख्य लक्ष्य मुद्रा पूर्ति के नियत्रण से है । सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों को प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देना आवश्यक है । यहा मुद्रापूर्ति के विश्लेषण से सम्बन्धित प्रमुख सिद्धान्तों के साथ रिजर्व बैंक के मुद्रापूर्ति विश्लेषण तथा मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण किया गया है । चूंकि मुद्रापूर्ति किसी एक देश से सम्बन्धित नहीं होती है, अत यहा पर मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्तों के विश्लेषण भारतीय संदर्भ में किया जायेगा, इसके पूर्व सामान्य मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया जायेगा । यहा यह आवश्यक होगा कि हम भारत में मुद्रा पूर्ति के अर्थ एव अवयवों को स्पष्ट कर दें ।

रिजर्व बैंक के 1961 के प्रथम वर्किंग ग्रुप रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि मुद्रा-पूर्ति की कोई सामान्य और सैद्धान्तिक परिभाषा नहीं दी जा सकती है । मुद्रा पूर्ति की अवधारणा एक फलनात्मक है, अत इसकी परिभाषा भी फलनात्मक और व्यवहारिक होनी चाहिए । इस तरह भारत में मुद्रापूर्ति की विशेषताओं में क्रय शक्ति, तरलता के गुण होने चाहिए ।[1] इस आधार पर भारत में लोगों के पास मुद्रा पूर्ति को निम्नलिखित समीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[2]

$$MS = C + DD + OD$$

यहा, MS = कुल मुद्रा पूर्ति है,

C = रिजर्व बैंक द्वारा नियमित कुल करेंसी नोट की मात्रा है,

---

1. R.B.I. Report of the First Working Group, July, 1961, pp. 65 - 66.
2. R.B.I. Report of the Committee to Review the working the Monetary system, 1985, p. 96.

DD = व्यापारिक और सहकारी बैंको में लोगों की माग जमाए हैं, इसमें समय जमाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता,

OD = रिजर्व बैंक की दीर्घ जमाए हैं, जिसमें रिजर्व बैंक के कर्मचारियों की पेन्शन, भविष्यनिधि तथा अर्ध सरकारी सस्थाओं की जमा तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के खाता सख्या दी शामिल रहते हैं ।

मौद्रिक सिद्धान्तों और बैंकिग क्रियाओं के विकास और परिवर्तन के परिणाम स्वरूप यह आवश्यक समझा गया कि भारत में मुद्रापूर्ति के उपागम और विश्लेषण में पवरिवर्तन किया जाय । इसके परिणाम स्वरूप 1976 में रिजर्व बैंक का द्वितीय वर्किंग ग्रुप नियुक्त किया गया और मुद्रा पूर्ति के नये अर्थ में चार स्वतत्र मापों को दिया गया । ये माप एम$_1$ एम$_2$ एम$_3$ एम$_4$ के रूप में है । एम$_1$ के अन्तर्गत रिजर्व बैंक के द्वारा कुल निर्गमित करेन्सी नोट की मात्रा, व्यापारिक और सहकारी बैंक की माग जमाए तथा रिजर्व बैंक की अन्य जमाए आती हैं । ए$_2$ के अन्तर्गत एम$_1$ तथा डाकधर बचत बैंकों की बचत जमाए आती हैं । एम$_3$ के अन्तर्गत एम$_1$ तथा व्यापारिक और सहकारी बैंकों की समय जमाए (या बचतें) सम्मिलित की जाती है। और एम$_4$ के अन्तर्गत एम$_3$ तथा डाकघर बचत व्यवस्था की कुल जमाए सम्मिलित हैं ।

इस नये मुद्रा पूर्ति की अवधारणा में एम$_1$ वही है, जो पूर्व मुद्रा पूर्ति के रूप में परिभाषित की गयी थी तथा एम$_3$ कुल मौद्रिक योग है । यहा पर व्यापारिक और सहकारी बैंको की समय जमाओं को भी मुद्रा पूर्ति में सम्मिलित किया गया है । इस तरह मुद्रा पूर्ति का यह नया विश्लेषण भारतीय मौद्रिक आकड़ों का परिष्कार मुख्य रूप से दो अर्थो में करेगा । प्रथमत तरलता परिवर्तन के आधार पर यह नया उपागम मौद्रिक योगों के लिये अधिक विस्तृत अर्थ प्रस्तुत करता है, दूसरे, नया मुद्रा माप अपने विस्तार वृद्धि के साथ मौद्रिक आकडों का वास्तविकता के सन्निकट लायेगा तथा यह आशा की जाती है कि मौद्रिक प्रवृत्तियों का अधिक वास्तविक तथा विशिष्ट

विश्लेषण किया जा सकेगा । [3]

3 । मुद्रा पूर्ति विश्लेषण - बैंकिग सर्वसमिका

1961 के रिजर्व बैंक के रिपोर्ट के अनुसार मुद्रा पूर्ति फलन को एक बैंकिग सर्वसमिका के आधार पर दिया गया है । इसे विशुद्ध बैंकिग कहा जा सकता है । इसमें यह दशायिा गया है कि बैंकिग व्यवस्था के कुल दायित्व कुल आदेयों के बराबर होता है । कुल दायित्व को मौद्रिक दायित्वों तथा गैर मौद्रिक दायित्विों में विभाजित किया जा सकता है और इसी तरह कुल आदेयों को वित्तीय आदेयों तथा गैर वित्तीय आदेयों में विभाजित किया जा सकता है और इस आधार पर निम्नलिखित बैंकिग समीकरण प्राप्त किया जा सकता है -

---

3. "On the whale, therefore, the new categories of money stock measures may be said to carry farwand the process of refinement of India monetary data in two distinct areas. Firstly, the new categories provide for a much wider spectrum of monetary aggregates, on the basis of their varying degrees of liquidity. Secondly, the new categories, by extending their coverage, would bring the data closer to readlity. The new series, it is hoped, would therefore facilitate a more sophisticated and realistic analysis of monetary trends." - R.B.I., Report of the Second Working Group,1977, p.9

$$TL = TA$$
$$ML + NML = FA + NFA$$
$$ML = FA + NFA - NML$$
$$ML = FA - (NML - NFA)$$
$$ML = FA - NNML$$

यहा पर ML या मुद्रा पूर्ति, (F A, N F A और N M L) का फलन है। मुद्रा फर्ति के पुलन के इस सिद्धान्त से यह देखा जा सकता है कि वित्तीय आदेयों, गैर वित्तीय आदेयों और गैर मौद्रिक दायित्वों के परिवर्तन के साथ किस तरह मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन होता है। यहा यह दिखाया जा सकता है कि यदि वित्तीय आदेयों में कमी या वृद्धि होती है तो मुद्रा पूर्ति में भी उसी तरह परिवर्तन होते हैं । इसी तरह गैर वित्तीय आदेयों के परिवर्तन के साथ धनात्मक रूप में मुद्रा पूर्ति परिवर्तित होती है । जहा तक गैर मौद्रिक दायित्वों का सम्बध है, मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन इसके विपरीत होता है । गैर मौद्रिक दायित्वों में वृद्धि के परिणाम स्वरूप मुद्रा पूर्ति में कमी होती है, जबकि गैर मौद्रिक दायित्वों में कमी होने से मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होती है। मुद्रा पूर्ति के इस फलनात्मक सम्बध को निम्न समीकरण से दिखाया जा सकता है -

$$\alpha (MS_O) = \frac{\delta MS_O}{\delta (FA)} \cdot d \ (FA) + \frac{\delta MS_O}{\delta (NFA)} \cdot d \ (NFA)$$

$$+ \frac{\delta MS_O}{\delta (NML)} \cdot d \ (NML)$$

मुद्रा पूर्ति परिवर्तन का यह सिद्धान्त बहुत समिति और सकीर्ण है और इसी के साथ - साथ इसका स्वभाव तकनीकी है । यहा मुद्रा पूर्ति विश्लेषण, एक सतोषप्रद व्यवहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करने में असफल है ।

3.2 मुद्रा या साख गुणक का सिद्धान्त

केन्द्रीय बैंक के उपर्युक्त मुद्रा पूर्ति परिवर्तन को कई कारणों से दोषपूर्ण मानने के कारण अधिक व्यवहारिक तथा मौद्रिक नियोजन की उपयुक्तता के दृष्टिकोण से मुद्रा गुणक सिद्धान्त दिया जाता है । अति सक्षेप में हम मुद्रा गुणक की निम्न व्याख्या कर सकते हैं । इस तरह मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन को मौद्रिक देयता में परितर्वन (ΔML) तथा मुद्रा गुणक परिवर्तन (ΔMK) के द्वारा दिखाया जाता है । अत

$$\Delta MS = \Delta ML + \Delta MK$$

तथा,

$$K = \frac{1}{C + r(1-C)}$$

जहा C कुल मुद्रा पूर्ति में करेन्सी का अनुपात है, r व्यापारिक बैंकों का मुद्रा माग के प्रति सुरक्षित कोष अनुपात, यहा पर ΔML को पुन विभाजित किया जा सकता है, जो केन्द्रीय बैंक के शुद्ध विदेशी परिसिम्पत्तिया में परिवर्तन (ΔMF), सरकार को दी गयी साख में शुद्ध परिवर्तन (ΔMG) तथा केन्द्रीय बैंक मौद्रिक नीतियों में परिवर्तन (ΔMP) के परिणाम स्वरूप होता है । इस प्रकार,

$$\Delta ML = \Delta MF + \Delta MG + \Delta MP$$

इस तरह ΔMK में गुणक से सम्बन्धित सुरक्षित कोष में दो तत्व है - वांक्षित सुरक्षित कोष (r) तथा अतिरिक्त सुरक्षित कोष (r_2) । अब चूंकि K निर्धारित किया जाता है C तथा r से, अत हम लिख सकते है -

$$\Delta ML = \Delta MC + \Delta Mr_1 + \Delta Mr_2$$

यहा ΔMC मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन को दिखाता है, जो करेन्सी अनुपात में परिवर्तन के कारण हुआ है ।

इस तरह मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन को निम्न अवयवों के परिवर्तन का परिणाम माना जाता है -

$$\Delta MS = (\Delta MF + \Delta MG + \Delta MP) + (\Delta MC + \Delta Mr_1 + \Delta Mr_2)$$

मुद्रा गुणक की उपर्युक्त व्याख्या के साथ मुद्रा गुणक और मुद्रा फलन को निम्न रूप में अधिक स्पष्टतया के साथ रखा जा सकता है -

प्रथमत चूंकि मोटे तौर पर मुद्रा पूर्ति (MS) में करेन्सी (C) तथा माग जमाए (DD) आती हैं, अत मुद्रा पूर्ति इनके योग के बराबर है,

$$MS = C + DD \quad \ldots\ldots \qquad (1)$$

इसी के साथ मौद्रिक आधार, वास्तविक बैंक संचितों (R) तथा करेन्सी (C) के योग के बराबर है, जिससे, $B = R + C$ .... (2)

अब समीरण (1) को मुद्रा पूर्ति (MS) से विभाजित करने पर

$$B/MS = R/MS + C/MS \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (3)$$

अब समीरण (3) से R/MSको बाहर करके इसे अनेक रूपों में विश्लेषित किया जा सकता है । प्रथमत इसे इकाई से गुणा करने पर अथवा $\frac{SM - C}{D}$ (या D/D) से गुणा करने पर -

$$\frac{R}{MS} = \frac{R}{MS} \cdot \frac{MS - C}{D} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (4)$$

या, $$\frac{R}{MS} = \frac{R(MS - C)}{MSD}$$

इससे हमें निम्न रूप प्राप्त होता है -

$$\frac{R}{MS} = \frac{RMS}{DMS} - \frac{RC}{DMS} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (5)$$

चूंकि $\frac{MS}{MS}$ इकाई के बराबर है, अत समीकरण (5) को सरल करने पर

$$\frac{R}{MS} = \frac{R}{D} - \frac{RC}{DMS} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (6)$$

अब समीरण (3) में समीकरण (6) को परिस्थापित करने पर निम्न प्राप्त होता है-

$$\frac{B}{MS} \quad \frac{R}{D} - \frac{RC}{DMS} + \frac{C}{MS} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (7)$$

अब यदि समीकरण (7) के दोनों पक्षों को B से भाग दें और उनका प्रतिलोम (Reciprocal) प्राप्त करें तो निम्न रूप प्राप्त होगा -

$$MS = \frac{R}{\frac{R}{D} + \frac{C}{MS} - \frac{RC}{DMS}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (8)$$

इस समीकरण से स्पष्ट है कि मुद्रा पूर्ति, मौद्रिक आधार (B) से सीधे प्रत्यक्ष रूप में में परिवर्तित होती है और R/D से विपरीत रूप से । मुद्रा पूर्ति के निर्धारकों को और अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त करने के लिये आरक्षित कोष अनुपात (R/D) को निम्न रूप में पुनर्विभाजित करके रखते हैं -

$$\frac{R}{D} = \frac{ER}{D} + \frac{LR}{D} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \quad (9)$$

जहा, E R = अतिरिक्त आरक्षितों तथा LR = केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित कानूनी आरक्षितों को दिखाते हैं । इस तरह इस विभाजन के साथ अब समीकरण (8) को निम्न रूप में दिखाया जा सकता है -

$$MS = \frac{B}{\frac{ER}{D} + \frac{LR}{D} + \frac{C}{MS} - \frac{C\ (LR + LR\ )}{DML}} \ldots\ldots\ldots\ldots \quad (10)$$

इस समीकरण को सामान्यतया मुद्रा गुणक के रूप में भी रखा जा सकता है । सरल रूप में इसे निम्न रूप में भी लिखा जा सकता है -

$$MS = B\ (m) \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (11)$$

अब समीकरण (10) को मुद्रा पूर्ति फलन रूप में भी रखा जा सकता है, यदि ER/D तथा C/MS को निर्धारित करने वाले चरों को अलग किया जा सके । अब यदि ER/D आरक्षितों को (r) बनाये रखने से होने वाले शुद्ध लाभ पर तथा C/MS को वास्तविक प्रति व्यक्ति आय Y/N पर निर्धारित माना जाय तो मुद्रा पूर्ति फलन का निम्न रूप लिखा जा सकता है -

$$MS = f\left(Br\frac{Y}{N}\right)$$

अब मुद्रा पूर्ति मुद्रा गुणक तथा मुद्रापूर्ति फलन से सम्बन्धित उपर्युक्त समीकरणों के आधार पर यह सम्भव है कि मुद्रा पूर्ति से सम्बन्धित विस्तृत विश्लेषण को प्रस्तुत किया जा सके[4]।

3.3 मुद्रा पूर्ति का उच्च अर्ध (एच) सिद्धान्त

मुद्रा पूर्ति की व्याख्या समझने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम साधारण - मुद्रा और उच्च अर्थ मुद्रा के अर्थ और अन्तर को समझ लें । इस अध्याय में मुद्रा पूर्ति के सम्बन्ध में पहले ही बहुत कुछ लिखा जा चुका है । उन सबका सम्बध साधारण मुद्रा से है । हमने साधारण मुद्रा को निम्न रूप में परिभाषित किया है -

$$M = C + DD + OD \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(1)$$

जिसमे M मुद्रा पूर्ति है, C रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित करेन्सी की कुल मात्रा है और OD रिजर्व बैंक के अन्य जमाए हैं । यहा पर हम सरलता के लिये OD को मुद्रा(M) से बाहर कर देते हैं और ऐसा करने से विश्लेषण में कोई विशेष अन्तर नहीं आयेगा, क्योंकि कुल मुद्रा में

4. Makinen, Money, Prices and Interest, p. 302.

OD का प्रतिशत लगभग एक के बराबर है ।

उपर्युक्त साधारण मुद्रा के विपरीत उच्च अर्घ मुद्रा (H) वह मुद्रा है, जो भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा निर्गमित (Produced) हुई और जो लोगों एव बैंक के पास है। इस उच्च अर्घ मुद्रा (H) को भारतीय रिजर्व बैंक आरक्षित मुद्रा कहती है । इस तरह H में निम्नलिखित सम्मिलित रहते हैं-

(i) लोगों के पास करेन्सी (C),

(ii) बैंकों के नकद आरक्षित (R),

(iii) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की अन्य जमाए (OD) उपर्युक्त आधार पर हम लिख सकते हैं कि

$$H = C + R + OD \quad .... \quad (2)$$

साधारण मुद्रा तथा उच्च अर्घ मुद्रा (H) के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इन दोनों में प्रमुख अन्तर को स्पष्ट कर देना आवश्यक हे । अगर दोनों समीकरणों (।) तथा (2) को देखे तो यह स्पष्ट होगा कि C तथा OD डी दोनों में समान हैं। दार्नो समीकरणों में जो अतर है वह समीकरण (।) के M में DD है तथा समीकरण (2) के H में R है । मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त के लिए यह अन्तर बहुत महत्वपूर्ण है । यह अन्तर बैंकों के उपस्थिति के कारण होती है, जो माग जमाओं को उत्पन्न करती हैं, जिसको करेन्सी (C) के समरूप ही मुद्रा माना जाता है । बैंको को इन माग जमाओं को उत्पन्न करने के लिए R रखना आवश्यक होता है और R यहा H का ही एक मात्र भाग है चूँकि माग जमाए (DD) R के एक गुणाक होते हैं और जो H के ही अवयव हैं, इससे H को उच्च अर्ध का मान प्राप्त हो जाता है । अर्थात् H को वह शक्ति प्राप्त हो जाती है, जो आधार बनकर DD के गुणाक उत्पन्न करता है । यही कारण है कि H को आधार मुद्रा कहते हैं ।

H सिद्धान्त को मुद्रा पूर्ति का मुद्रा गुणक सिद्धान्त भी कहते हैं, परन्तु इस सिद्धान्त को H सिद्धान्त कहना अधिक श्रेष्ठ हैं क्योंकि पूरे सिद्धान्त का विश्लेषण H के माग और पूर्ति

के आधार पर किया जाता है । इस रूप में मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त को माग और पूर्ति का आधार भी प्राप्त हो जाता है ।

H सिद्धान्त की व्याख्या के सम्बध में सबसे पहले हम H की पूर्ति को लेंगे । मान्यता रूप में यह मान लिया जाता है कि H की पूर्ति (H^S) नीति द्वारा निर्धारित है । इस मान्यता के आधार पर हम H के पूर्ति को निम्न रूप में लिख सकते हैं -

$$H^S = \bar{H} \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

यहा पर H के ऊपर पडी रेखा यह दिखाती हे कि यह लोगों एव बैंकों से बहिर्जातीय रूप में हैं ।

मुद्रा पूर्ति के H सिद्धान्त में H की पूत्रि की तुलना में H की माग (H^d) अधिक महत्वपूर्ण है । इसका महत्वपूर्ण पक्ष इसे DD अथवा M से सम्बन्धित करना है । इसे हम नीचे समझायेंगे ।

हम पहले से ही देख चुके हैं कि H लोगों द्वारा आंशिक रूप में करेन्सी (C) के रूप में तथा आंशिक रूप में बैंको द्वारा आरक्षित (R) के रूप में मागा जाता हे । इस तरह हमारे. विश्लेषण में H मान के यही उपर्युक्त दो स्रोत हैं । मुद्रा (M) के एक अवयव के रूप में करेन्सी की माग (C^d) उन्हीं कारकों से प्रभावित होती है । है जिनसे मुद्रा जैसे आय का स्तर और व्याज दर । और यही बात माग जमाओं (DD^d) के बारे में सत्य है । इस लिए प्राथमिक रूप से यह मानना तार्किक होगा कि करेन्सी की माग (C^d) तथा माग जमाओं की माग (DD^d) अत्यधिक सह-सम्बन्धित होगी । अथवा यह कहा जा सकता है कि C^d एक आनुपातिक फलन होगा DD का । इसे निम्न रूप में लिखा जा सकता है-

$$C^d = c\ DD \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (4)$$

यहा DD और C^d का C अनुपात है । सक्षेप में इसे हम लोगों का करेन्सी जमा अनुपात कहते हैं । यहा पर C लोगों के करेन्सी अथवा माग जमाओं के बीच पसन्दगी को प्रकट

करेगा । इस रूप में यह कई कारकों द्वारा प्रभावित होगा । फलस्वरूप यह समयोंपरि परिवर्तित हो सकता है । इस रूप में C एक फलनात्मक अनुपात है । हम आरक्षितों (R^d) के लिए बैंक की माग पर ध्यान देंगे । बैंको के आरक्षित सामान्तया दो मदों में विभाजित रहते हैं । प्रथम आवश्यक आरक्षित (RR) तथा अतिरिक्त आरक्षित (ER) यह देखा जा सकता है । RR तथा ER^d और इसलिए R^d बैंको के कुल माग एव समय दायित्वों के वृद्धि मान फलन हैं कि बैंको के मान एव समय दायित्वों का रूप प्रधान तथा लोगों को माग एव जमाओं के कारण है । इसके अतिरिक्त दायित्वों और जमाओं के बीच यह अनुपात एक दीर्घकालीन रूप में स्थायी है और सरलता के रूप में हम कह सकते हैं कि R^d अधिकाशत बैंकों के कुल जमाओं का एक आनुपातिक फलन है इसे हम निम्न रूप में रख सकते हैं -

$$R^d = r D \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (5)$$

यहा पर r बैंको के कुल जमा और R^d में अनुपात है । सक्षेप में इसे आरक्षित जमा अनुपात कहा जा सकता है ।

मुद्रा पूर्ति विश्लेषण में हम देख चुके हैं कि बैंकों की जमायें दो प्रकार की होती हैं । प्रथम माग जमाये (DD) तथा दूसरे समय जमाये (TD) । हमने यह भी देखा था कि माग जमा (DD) को मुद्रा पूर्ति में सम्मलित करते हैं और समय जमाओं (TD) को इसमें सम्मलित नहीं करते । बैंको में DD की तुलना में कितना TD रखना है, यह लोग ही निर्धारित करते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि TD^d एक DD का वृधि आनुपातिक फलन है । यथा,

$$TD^d = t\ DD \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6)$$

यहा पर t जो है वह DD और TD^d का अनुपात है । सक्षेप में इसे सावधि जमा अनुपात कहते हैं ।H सिद्धान्त में मुद्रा पूर्ति को निर्धारित करने में निम्न चित्र का प्रयोग किया जा सकता है । चित्र में H को OY अक्ष पर तथा DD को OX पर दिखाया गया है

चूंकि H की पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा दी हुयी होती है इसलिये H की

चित्र- 3 ।
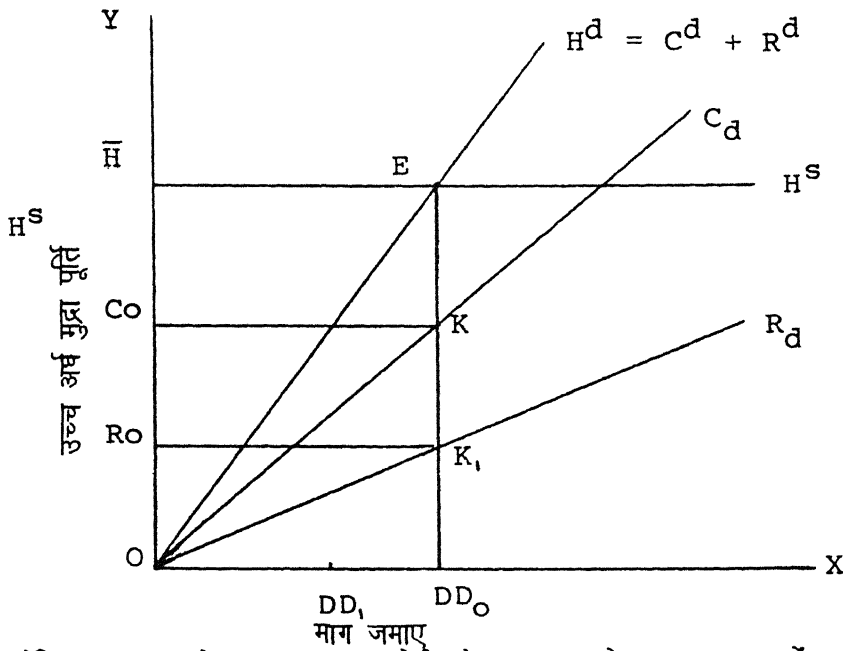
रेखा क्षैतिज OX के समानान्त्तर होती है । यह रेख इस रूप में यह दिखाती है कि H पूर्णतया DD से बेलोच होती है । H के माग की तीन रेखाए R^d, C^d तथा H^d नीचे मूल बिन्दू 0 से ऊपर की ओर सीधे जाती है ।

चित्र में H^d रेखा और H रेखा के कटान बिन्दु E पर H के बाजार में संस्थिति को दिखाती है । इस बिन्दु पर लोग तथा बैंक दोनों H के सम्पूर्ण मात्रा को रख कर सतुष्ट रहते हैं, जो मात्रा मौद्रिक अधिकारी मुद्रा बाजार में रखना चाहते हैं । यहा पर DD की संस्थिति मात्रा DD_O है । यहा लोगों के पास करेन्सी की मात्रा C_O है । अब H का अवशेष अर्थात् $H-C_O = R_O$ बैंको के पास है । DD_O मात्रा हेतु यह पूर्णतया बैंकों के R^d के बराबर है। यहा यह भी स्पष्ट है यदि C^d फलन दिया हुआ हो तो C_O ठीक करेन्सी की वह मात्रा होती हे, जिसे लोग अपने पास रखना चाहते हैं, जब कि $DD = DD_O$ है।[5]

उपर्युक्त विश्लेषण का मुख्य अभिप्राय यह है कि माग जमाओं के आधार पर मुद्रा पूर्ति के वृद्धि में द्वितीयक योगदान को स्पष्ट करना है । यहा पर मुद्रा पूर्ति परिवर्तनों में बैंक के योगदान को भी स्पष्ट किया गया है । यह बात और अधिक तब स्पष्ट हो जाती है, जब हम मुद्रा

---

5. S.B. Gupta, Monetary Economics, Institutions, Theory and Policy, 1982, pp. 286-92.

गुणक प्रक्रिया को समझते हैं । साथ ही साथ हम x तथा R बाजारों के सन्तुलन विश्लेषण का भी यह अध्ययन करते हैं ।

अतिरिक्त आरक्षितों पर कोई ब्याज प्राप्ति नहीं होती, अत बैंक अवांक्षित अतिरिक्त वांक्षितों से छुटकारा पाने के लिये लाभ अर्जित आदेयों की ओर उन्मुख होते हैं । लाभ अर्जित आदेयों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है - (1) विनियोग और (2) ऋण एव अग्रिम । विनियोग सरकारी या व्यक्तिगत क्षेत्रों के बाजारी प्रतिभूतियों में किया जाता है। 'एच' मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त की यह मान्यता हे कि प्रचलित ब्याज दर के सन्निकट लाभ अर्जित करने वाले आदेयों की पूर्ति अत्यधिक लोचदार होती है और सामान्यतया बैंक अपने अवांक्षित अतिरिक्त आरक्षितों के द्वारा इन लाभ अर्जित आदेयों की ओर उन्मुख नहीं होते । इस तरह 'एच' सिद्धान्त की यह महत्वपूर्ण मान्यता है कि बैंक अपने आरक्षितों जमाओं में संस्थिति प्राप्त करते हैं । किसी समय के सन्दर्भ में पहले बैंको को अधिकाश लाभ अर्जित करने वाले आदेयों को ऋणों एव अग्रिमों के रूप में रखा जाता था और प्रतिभूतियों में विनियोग बहुत कम होता था । इसका प्रधान कारण सरकारी ऋणों और प्रतिभूतियों के निम्न स्तर का होना था । मदी की ऐसी दशाओं में बैंक ऋणों और अग्रिमों की माग बहुत तेजी से गिरती थी और बैंकों के पास अवांक्षित अतिरिक्त आरक्षित बचते थे । अनेक कारणों से अधिकाश समयों में बैंकों के ऋण का बाजार अतिरिक्त पूर्ति की तुलना में अतिरिक्त माग से प्रभावित रहता है । सार्वजनिक क्षेत्रों के माध्यम से जब से सरकार ने नियोजित आर्थिक विकास की नीति अपनाया है, तब से सरकार को वित्त की आवश्यकता सदैव पडती रहती है ओर इस तरह सरकार खुले बाजार से बैंको तथा अन्य स्रोतों से उधार लेने के लिये तत्पर रहती है । सार्वजनिक ऋण के प्रबन्धक के रूप में रिजर्व बैंक ने सरकारी ऋणों के बाजार विस्तार पर विशेष बल दिया है। अत अल्प काल में बिना पूजी हानि के जोखिम उठाये बैंक अल्पकालीन सरकारी प्रतिभूतिया काफी बडी मात्रा में विनियोग कर सकते हैं। इसका तात्पर्य यह हे कि चाहे बैंक ऋणों और अग्रिमों की माग महत्वपूर्ण रूप से कम हो जाये, फिर भी बैंक अवांक्षित नकद आरक्षितों में अवरुद्ध के लिये वांक्षित नहीं है । वे लाभ अर्जित आदेयों के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों की ओर उन्मुख हो सकतें

हैं । इन सभी को हम भारतीय मौद्रिक अनुभवों के आधार पर सत्यापित कर सकते हैं । अनुसूचित व्यापारिक बैंकों के कुल माग और समय - जमाओं में अतिरिक्त आरक्षितों के अनुपात 1950-51 में 6 84 से लगातार गिरते हुये 1960-61 में 2 91 हो गये । इस स्थिति के अनेक महत्वपूर्ण कारण हैं, किन्तु यहा इनका विवरण देना सम्भव न होगा । यह बात हमारे सैद्धान्तिक मान्यता की पुष्टि करता है कि बैंकों की क्षमता लाभ अर्जित करने वाले आदेयों की ओर उन्मुख होने की तब होती है, जब उनके पास अवांक्षित अतिरिक्त आरक्षित होते है और वे वास्तविक अतिरिक्त आरक्षितों को वांक्षित अतिरिक्त आरक्षितों के बराबर रखते हैं ।

यहा पर 'एच' को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण भी महत्वपूर्ण होगा । यह माना जाता है कि एच का निर्धारण नीतिगत है, लेकिन वास्तविक व्यवहार में यह इतना आसान नहीं है । हम जानते हैं कि 'एच' व मुद्रा पूर्ति है, जो मौद्रिक अधिकारियों - सरकार और रिजर्व बैंक के द्वारा उत्पन्न की जाती है और लोगों तथा बैंको द्वारा रखी जाती है । इस तरह यह सरकारी करेन्सी तथा आरक्षित बैंक मुद्रा हैं, जो लोगों और बैंको द्वारा रखी जाती है । 'एच' का कुल स्टॉक मात्रा में सरकारी करेन्सी का भाग बहुत कम है । 1975-76 में यह 7 3 प्रतिशत था और इस तरह आरक्षित बैंक मुद्रा इसका सबसे बडा हिस्सा है । सरकारी करेन्सी में परिवर्तन का निर्धारण आरक्षित बैंक मुद्रा द्वारा होता है, क्योंकि रिजर्व बैंक द्वारा निर्गमित ऊँचे मूल्य के करेन्सी के सदर्भ में यह लोगों के छोटे सिक्के की माग को दिखाता है । इस तरह आरक्षित बैंक द्वारा मुद्रा में होने वाले परिवर्तन ही वस्तुत एच में होने वाले सभी परिवर्तनों के लिये जिम्मेदार है । नीचे हम आरक्षित बैंक मुद्रा को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करेंगे, क्योंकि रिजर्व बैंक इसे पूरी तरह से परिवर्तित नहीं करती । यहा पर पूर्णतया लेखा - जोखा का विवरण दिया गया है । पर यह प्रारम्भिक विश्लेषण है, जिसके आधार पर 'एच' पर कार्यशील जटिल शक्तियों को समझा जा सकता है ।

मुद्रापूर्ति का उच्च अर्घ सिद्धान्त एक तरह से मुद्रा गुणक का ही सिद्धान्त है । इसमें आरक्षितों के होने के कारण उसवे आधार पर मुद्रा को सृजित करने की शक्ति प्रदान हो जाती है ।

इसलिए इसे आरक्षित मुद्रा, उच्च अर्घ का मुद्रा मौद्रिक आधार कहते हैं।[6]

3.4 भारतीय रिजर्व बैंक का लेखा-जोखा मुद्रा पूर्ति विश्लेषण

यहा पर हम भारतीय रिजर्व बैंक के एक लेखा-जोखा चार्ट सर्वसमिका के रूप में प्रारम्भ करते हैं ।

मौद्रिक दायित्वता + गैर मौद्रिक दायित्वता = वित्तीय आदेय + अन्य दायित्वता

यहा पर हम देखते हैं कि शुद्ध गैर मौद्रिक दायित्वता तथा अन्य आदेयों के अन्तर के बराबर है और इसतरह उपर्युक्त सर्वसमिका को निम्न रूप में लिख सकते हैं मौद्रिक दायित्वता = वित्तीय आदेय, ॠण, शुद्ध गैर मौद्रिक दयित्वता ।

भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक दायित्वता वही है,जो आरक्षित बैंक मुद्रा है और इस तरह आरक्षित बैंक मुद्रा को प्रभावित करने वाले कारक भी वही हैं, जो भारतीय रिजर्व बैंक के वित्तीय आदेय अपने लेन - देन क्रियाओं के कारण उत्पन्न होते है अत इन्हें क्षेत्रवार विभाजित किया जा सकता है, परन्तु भारतीय रिजर्व बैंक के पास इसी प्रकार का क्षेत्रवार विभाजन गैर मौद्रिक दायित्वों के बारे में उपलब्ध नहीं है । एच को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक के लेन - देन कार्यो को चार क्षेत्रों में बाटा जा सकता है - (1) सरकार, (2) बैंक, (3) विकास बैंक, (4) विदेशी क्षेत्र । भारतीय रिजर्व बैंक इन्हें साख प्रदान करती है । अपने वित्तीय आदेयों को प्राप्त करती है और आरक्षित बैंक मुद्रा को सृजित करती है । इस तरह भारतीय रिजर्व बैंक के वित्तीय आदेयों तथा शुद्ध साख को निम्न रूप से लिखा जा सकता है -

---

6. Report of the committee to Review the Working of the Monetary System, 1985, p. 65.

आरक्षित बैंक मुद्रा = (1) सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक का शुद्ध साख
+ (11) भारतीय रिजर्व बैंक का बैंकों को शुद्ध साख
+ (111) भारतीय रिजर्व बैंक का विकास बैंकों को शुद्ध साख
+ (1v) भारतीय रिजर्व बैंक का शुद्ध विदेशी विनिमय आदेय
- (v) भारतीय रिजर्व बैंक का शुद्ध गैर मौद्रिक दायित्व

'एच' को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों के परिप्रेक्ष्य में तथा उपर्युक्त दी गयी भारतीय रिजर्व बैंक के बैंकिग सर्वसमिका के सदर्भ में रिवर्ज बैंक के मुद्रा पूर्ति के विश्लेषण को देना उपयुक्त होगा । यहा यह बात ध्यान देने योग्य हे कि भारतीय रिजर्व बैंक मुद्रापर्ति के किसी भी सिद्धान्त का अनुकरण नहीं करती । इसके स्थान पर यह प्रत्येक माह शुद्ध लेखा - जोखा के विश्लेषण को प्रकाशित करती है, जिससे यह मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों अथवा मुद्रा पूर्ति के परिवर्तन के स्रोतों के रूप में सम्बोधित करती है । इस तरह के तथाकथित मुद्रा पूर्ति विश्लेषण को सभी कार्यशील एजेन्यिों तथा अर्थशास्त्रियों द्वारा अनुशरण किया जाता है और इस तरह एक बिल्कुल लेखा - जोखा के रूप में मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त का स्थान ले लिया है । मुद्रा पूर्ति पर कार्यशील शक्तियों तथा सही मौद्रिक नीति निर्माण हेतु इस तरह का विश्लेषण बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है । इस बात को स्पष्ट करने के पूर्व यह महत्वपूर्ण होगा कि भारतीय रिजर्व बैंक के लेखा - जोखा मुद्रापूर्ति विश्लेषण को प्रथमत दिखाया जाय । इसे निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है -

मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन के स्रोत -

(I) सरकार को शुद्ध बैंक साख (अ + ब)

(अ) सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक का शुद्ध साख (1-11)

(1) सरकार पर अदायगी,

(11) रिजर्व बैंक में सरकार की जमाए,

(ब) सरकार को अन्य बैंक साख

(2) व्यापारिक क्षेत्र में बैंक साख (अ + ब)

(अ) व्यपारिक क्षेत्र में भारतीय रिजर्व बैंक साख

(ब) व्यापारिक क्षेत्र में अन्य बैंको का साख

(3) बैंकिग क्षेत्र के शुद्ध विदेशी विनियम आदेय (अ + अ)

(अ) भारतीय रिजर्व बैंक के शुद्ध विदेशी विनियम आदेय

(ब) अन्य बैंकों के शुद्ध विदेशी विनियम आदेय

(4) लोगों को सरकार की करेन्सी दायित्वता

(5) बैंकिग क्षेत्र को शुद्ध गैर मौद्रिक दायित्वता (अ + ब + स)

(अ) बैंकों की समय जमायें,

(ब) भारतीय रिजर्व बैंक की शुद्ध गैर मौद्रिक दायित्वता

(स) बैंकों की अन्य शुद्ध गैर मौद्रिक दायित्वता

इन उपरोक्त कारकों के सदर्भ में हम मुदा पूर्ति को निम्न रूप में लिख सकते हैं-

मुद्रा पूर्ति = 1 + 2 + 3 + 4 - 5

मुद्रा पूर्ति के उपर्युक्त विश्लेषण को भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य बैंकों के सग्रथित लेखा - जोखा चार्ट से प्राप्त किया गया है । इसको इसके वित्तीय आदेयों को क्षेत्रवार विभाजित करके बनाया जाता है । यहा यह उपर्युक्त होगा कि मुद्रा पूर्ति के इस लेखा - जोखा विश्लेषण को कुछ आलोचनात्मक बिन्दुओं का सकेत किया जाय ।

भारतीय रिजर्व बैंक इस मुद्रा पूर्ति विश्लेषण में व्याख्यात्मक गुण नहीं है, क्योंकि यह विशुद्ध लेखा - जोखा विश्लेषण है । यह अनेक नीतियों एव गैर नीतियों में होने वाले परिवर्तन के कारण उनके मुद्रा पूर्ति पर पड़ने वाले प्रभाव की व्याख्या नहीं कर सकता है । उदाहरणार्थ भारतीय रिजर्व बैंक की खुले बाजार की क्रियाए अथवा आरक्षित कोष अनुपात में परिवर्तन अथवा शुद्ध विदेशी

सहायता में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप उत्पन्न प्रभावों को नहीं समझा जा सकता । कुल मिलाकर के यह मुद्रा स्टॉक की माप कर सकता है, किन्तु उसके अनुमानों का विश्लेषण नहीं कर सकता । आकर्डो का वर्गीकरण किसी भी व्याख्या को स्पष्ट नहीं करता और यह मुद्रा पूर्ति के किसी सिद्धान्त का प्रतिस्थापन रूप ले सकता है । यह सभी तर्क मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले करकों के विश्लेषण पर भी लागू होते हैं । यदि हमें मुद्रा पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करना है तो मुद्रा पूर्ति के किसी सिद्धान्त का आश्रय लेना पडेगा । इस सम्बध में हमने पहले ही ऐसे सिद्धान्त की व्याख्या की हे, जो 'एच' के परितर्वन रूपों में मुद्रा पूर्ति में परितर्वनों की व्याख्या करता है । दूसरी बात जो इस विश्लेषण के सम्बध में उल्लेखनीय है, वह यह है कि मुद्रा पूर्ति का लेखा - जोखा विश्लेषण 'एच' और 'एम' के अवयवों के योग को प्रस्तुत करता है और इसमें एच पर 'एम' के आश्रित होने पर ध्यान नहीं दिया जाता । इसके परिमणाम स्वरूप इस विश्लेषण में मुद्रा गुणक विश्लेषण की प्रक्रिया का पूर्णतया अभाव है । यह बात किसी मौद्रिक अर्थशास्त्री अथवा रिजर्व बैंक द्वारा गभीरतापूर्वक नहीं किया गया था, क्योंकि मुद्रा पूर्ति सम्बधी उपागमों में इसके कारण कई कमिया आ जाती है । यह दिखाया जाता है कि मुद्रा पूर्ति पर सरकारी क्षेत्र का कुल प्रभाव है, कुल बजट घाटे और इसके भारतीय रिजर्व बैंक से शुद्ध विदेशी आदेयों के क्रय के अन्तर के बराबर । किन्तु यह तथ्य पूर्णत गलत है । साथ ही साथ यह बात भी स्पष्ट की गयी है कि सरकार को अन्य बैंकों का साख उसी मात्रा में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि करता है । परन्तु यह तथ्य भी सही नहीं है । इस तरह भारतीय रिजर्व बैंक का लेखा - जोखा सारणी मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले एक कारक के रूप में बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक की साख को पूर्णतया अपेक्षित करता है, क्योंकि बैंकिग व्यवस्था के समग्र आदेयों तथा दायित्वों को सग्रथित करने में यह आन्तरिक लेन - देन के रूप में छिप जाता है, किन्तु यह बात गलत है, क्योंकि बैंक द्वारा भारतीय रिजर्व बैंक से ऋण लेना 'एच' और अन्तत एम में वृद्धि करता है ।[7]

---

7. R.B.I., Report on Curency and Finance, (Various Issues)

3 5 साख की पूर्ति तथा इसका निर्धारण

मुद्रा पूर्ति और सम्बंधित सिद्धान्तों के विश्लेषण के साथ यहा पर साख - पूर्ति और उसके निर्धारण से सम्बन्धित विश्लेषण को भी देना उपयुक्त होगा । यहा पर प्रथमत कुल बैंक साख पूर्ति सिद्धान्त का विश्लेषण तथा सस्थागत साख के निर्धारण सम्बधी कारकों का विश्लेषण किया जायेगा । प्रथम रूप में मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त का प्रयोग किया जायेगा और मुद्रा गुणक विश्लेषण को साख पूर्ति के विश्लेषण में प्रयोग किया जायेगा । साथ ही साथ कुल साख की मात्रा के साथ बैंकों से साख के अन्तर ऋण ग्राहकों का निर्धारण भी महत्वपूर्ण है । यहां हम बैंक तथा गैर बैंक साख में भेद नहीं करेंगे, अपितु हर तरह के सस्थागत साख को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण करेंगे ।

प्रारम्भ में बैंक साख और बैंक जमाओं सिद्धान्त का विश्लेषण किया जा सकता है । यहा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि बैंक साख और बैंक जमाओं का पारस्परिक सम्बध है । वस्तुत वे एक ही सिक्के के दो पक्ष है अर्थात् बैंको का लेखा-जोखा चार्ट, यद्यपि पहले मौद्रिक अर्थशास्त्रियों में इन दोनों के सम्बध को लेकर विवाद रहा है, विशेषकर इस बात से कि को कारक है और कौन परिणाम यह इस रूप में विवाद का विषय रहा है कि क्या ऋणों से जमाए बढ़ती हैं या जमाओं से ऋण बढ़ता हे । इस सम्बध में दो प्रकार के उत्तर दिये जाते हैं । एक रूप में यह कहा जा सकता है कि एक छोटे बैंक के दृष्टिकोण से यह कहना अधिक उपयुक्त है कि जमाओं से ऋण में वृद्धि होती है, किन्तु पूरी बैंकिग व्यवस्था की दृष्टि से यह कहना अधिक सही होगा कि ऋणों से जमाए बढ़ती हैं । दूसरे तरह का उत्तर पहले के इस उत्तर से भिन्न है । पूरी बैंकिग व्यवस्था को ध्यान में रखते हुये यहा पर दूसरे तरह के उत्तर में बैंक जमाओं और साख के बीच सम्बध को एक चक्रीय रूप में देखा जाता है, जिससे यह बात कहना सही है कि जमाए ऋण उत्पन्न करती है और ऋण जमाए उत्पन्न करती है । इसी तरह का विश्लेषण केन्स के आय -

निर्धारण सिद्धान्त में आय और व्यय के चक्रीय प्रवाह [8] के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु दोनों दशाओं में बैंक जमाओं तथा साख सम्बधी चरों का साथ - साथ निर्धारण किया जाता हे, न कारण रूप में और न ही परिणाम के रूप में । वस्तुत दोनों एक तीसरे स्वतत्र कारक के द्वारा निर्धारित होते हैं और व्यवस्था के कुछ फलनात्मक सम्बधों के द्वारा निर्धारित होते हैं । अत इस सिद्धान्त का कार्य है कि इस तीसरे कारक को दिखाये और व्यवहारिक सम्बधों को स्पष्ट करे और ब्याज, बैंक जमाओं और साख के पारस्परिक निर्भरता के सम्बध में इनके पारस्परिक क्रियाशीलता को स्पष्ट करे । इस सम्बध में साख - सिद्धान्त का रूप मुद्रा पूर्ति के 'एच' सिद्धान्त का सरलीकरण रूप होगा, जिसे हम बैंक जमाओं का 'एच' सिद्धान्त कहेंगे । क्यों कि मुद्रा पूर्ति, बैंक जमाओं और बैंक साख को निर्धारित करने वाले कारकों में बहुत गहरा सम्बध है। अब हम बैंक साख अथवा बैंक साख गुणक सिद्धान्त को सक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं । यहा पर मुद्रा पूर्ति के एच सिद्धान्त से इसका अन्तर मुद्रा और बैंक साख के अलग - अलग परिणाम के कारण हाता है यहा पर मुद्रा पूर्ति को सकीर्ण अर्थ में कुल करेन्सी तथा माग जमाओं के योग के रूप में दिखाते हैं, जो लोगों के पास है वहीं हम बैंक साख (BC) को विस्तृत रूप में सरकार और व्यापारिक बैंकों के कुल साख योग के रूप में दिखाते हैं । एक लेखा - जोखा चार्ट के रूप में यह हर तरह के ऋणों और अग्रिमों (LA)) तथा विनियोगों (I) योग है । विनिोग और ऋण तथा अग्रिमों को साथ - साथ बैंकों के लाभार्जित आदेय (EA) भी कहते हैं । इस तरह हम निम्न रूप में पाते हैं -

$$BC = I + LA = EA \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (1)$$

इसको सरल रूप में हम यह मानते हैं कि सभी सग्रथित बैंको का लेखा - जोखा चार्ट निम्न रूप में दिखाया जा सकता है -

$$DD + TD = R + I + LA \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

यहा पर DD , कुल माग जमाए, TD , कुल समय जमाए तथा R , कुल बैंक आरक्षित हैं ।

---

8. R.D. Gupta, Keynes and Post Keynesian Economics, p. 65.

यहा यह उल्लेखनीय है कि पूरे बैंक के दृष्टिकोण से अतर बैंक जमाओं, तात्कालिक ऋण तथा अन्य ऋणों के रूप में अन्तर बैंक लेन - देन का समायोजन हो जाता है और बैंको के सग्रथित लेखा - जोखा चार्ट पर इसे नहीं दिखाया जाता । मुद्रा पूर्ति सिद्धान्त के पिछले विवरण के आधार पर हम निम्न समीकरण प्राप्त कर सकते हैं -

$$T D_d = t\ DD \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

$$D = DD + TD$$

$$= (1+t)\ DD \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (4)$$

$$R_d = r(1+t)\ DD \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (5)$$

$$DD = \left[c+r\ (1+t)\right]^{-1} H \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (6)$$

अब समीकरण (1) तथा (2) से निम्न प्राप्त कर सकते हैं -

$$Bc = I + L\ A$$

$$= DD + TD - R \quad \ldots\ \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (7)$$

अब संस्थिति हेतु, जिसमें $R = R_d$ तथा TD_d समीकरण (4), (5) तथा (7) के रूप में हम निम्न प्राप्त कर सकते हैं -

$$Bc = (I - r)^{D}$$

$$= (I - r) - (I+t)\ DD \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ \ldots\ldots\ldots\ldots (8)$$

अब समीकरण (6) का प्रयोग करने पर हम निम्न पाते हैं -

$$Bc = \frac{(I - r)\ (I + t)}{c + r\ (I + t)} \cdot H \quad \ldots\ldots\ldots\ldots (9)$$

समीकरण (9) में Bc को H का आनुपातिक फलन बनाता है, जहा कारक अनुपातिता तीन फलनात्मक आदेय अनुपातों c, t तथा r के फलन रूप में हैं । इस कारक को बैंक साख गुणक b कहा जा सकता है , जिससे समीकरण (9) को निम्न रूप में लिखा जा सकता है -

$$Bc = b\ (.)\ H \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (10)$$

जहा, $$b = \frac{(I-r)\ (I+t)}{c + r\ (I+t)}$$

यहा पर समीकरण (9) में बैंक साख गुणक प्रक्रिया वही है, जो पहले त्वरक गुणक में देखी गयी थी, यदि b को समयोपरि स्थिराक मान लिया जाय तो B_C H का बढ़ता हुआ आनुपातिक फलन है । यही बैंक साख के 'एच' सिद्धान्त का मूल तथ्य है । नीति नियोजन के सन्दर्भ में इसका अभिप्राय यह होगा कि कुल बैंक साख पूर्ति के नियत्रण के लिये 'एच' का नियत्रण आवश्यक होगा । अब समीकरण (9) को मुद्रा पूर्ति समीकरण से तुलना करने पर हम दोनों में बहुत बड़ी समानता पाते हैं और साथ ही साथ यह समानता मुद्रा पूर्ति के 'एच' सिद्धान्त में और बैंक साख के 'एच' सिद्धान्त में भी है । यहा पर 'एच' को प्रभावित करने वाली वही शक्तिया तथा फलनात्मक आदेय अनुपात c, t, r,दोनों को निर्धारित करते हैं । ये तीनों आदेय अनुपात मुद्रा गुणक तथा बैंक साख गुणक के अनुमानित कारक है । इस तरह बैंक जमाओं का सिद्धान्त इस विश्लेषण में पूरी तरह निहित है । अब समीकरण (4) तथा समीकरण (6) से निम्न प्राप्त करते हैं -

$$D = \frac{1 + t}{c + r(1 + t)} \qquad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots \qquad (11)$$

जहा पर एच को गुणा करने वाला अनुपात कुल जमा गुणक के मान को प्रदान करता है । पहले जो बैंक साख को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में कहा गया है, वही बैंक जमाओं के बारे में भी उपयुक्त होगा ।[9]

साख निर्माण के सामान्य प्रश्न पर मानक सिद्धान्त अत्यन्त सरल है । यहा पर एक समरूप साख बाजार की मान्यता है, जिसमें ऋण ग्राहकों के सभी साख आदाओं को साख देने की एक जैसी बात कही जाती है । साथ ही साथ यह भी मान्यता है कि बाजार के दोनों पक्षों में पूर्ण प्रतियोगिता कार्यशील है, जिससे कुल माग कुल पूर्ति के आधार पर एक ही समरूप ब्याज दर का निर्धारण होता है । इसतरह का बाजारी निर्धारित ब्याज दर प्रतिस्पर्धा ऋण ग्राहकों और ऋण

---

9. S.B. Gupta, Monetary Economics - Institutions, Theory and Policy, 1982, pp. 298 - 299.

दाताओं में विभिन्न उद्देश्यों के लिये एक निर्धारक के रूप में कार्य करता है । विशेष रूप मे यहा यह निहित है कि प्रत्येक ऋण ग्राहक, जितनी भी मात्रा में ऋण लेना चाहे, वह प्रचलित ब्याज दर पर वह ले सकता है अर्थात् व्यवस्था में कोई भी साख राशिनिग नहीं है । इस तरह के साख बाजार का फलन पूर्णत अवास्तविक है । न तो साख बाजार पूर्णत समरूप होते हैं और न ही इन बाजारों में सदैव पूर्ण प्रतियोगिता रहती है । पूर्ति साख के पूर्ति पक्ष पर बडी वित्तीय सस्थाओं का अधिपत्य रहता है और माग पक्ष पर प्रभावी व्यक्तिगत उधार ग्राहकों के साख की प्रतिज्ञा एक जैसे नहीं रहती है। यहा पर प्रत्येक ऋण ग्राहक की साख योग्यता इन वित्तीय सस्थाओं के सामने रहती है। ये सभी बातें सस्थागत साख तथा सस्थागत प्रक्रिया को बाजारी प्रक्रिया से दूर रखती है। यहा पर सस्थागत प्रक्रिया बाजारी प्रक्रिया से भिन्न होती है, क्योंकि यह मूल्य प्रक्रिया से सचालित नहीं होती है। प्राय योग्य ऋण ग्राहकों का चुनाव गैर मूल्य प्रक्रिया द्वारा किया जाता है तथा इसी तरह कुल साख मात्रा का भी निर्धारण किया जाता है । इसके विपरीत विशुद्ध बाजारी प्रक्रिया में दोनो पक्षो में मूल्य ही प्रधान होता है । वे लोग जो बाजारी मूल्य अदा करने के इच्छुक होते हैं, वे योग्य ग्राहकों में आते हैं और अन्य को छोड दिया जाता है अर्थात् इसके अन्तर्गत उधार ग्राहकों को पूर्णत उनकी माग वक्र पर पूर्णत स्वतत्र छोड दिया जाता है ।

एक दिये मूल्य पर जितनी साख की मात्रा उधार लेना चाहें, ले सकते हैं । दूसरे रूप में सस्थागत प्रक्रिया गैर मूल्य कारकों नियमों पर आधारित है और इसमें किसी मूल्य की मान्यता नहीं होती है । अधिक सपष्ट रूप में मूल्य स्वय माग तथा पूर्ति के निर्धारक रूप में नहीं होती, बल्कि यह स्वय माग तथा पूर्ति के बाजारी दशाओं के कुछ अन्य गैर बाजारी दशाओं से प्रभावित होती है । कार्यशील प्रक्रिया नियम तथा गैर कार्यशील प्रक्रिया यहा साख राशिनिग के लिये महत्वपूर्ण है । अत साख निर्धारण में यहा इन प्रयोगों तथा गैर मूल्य कारकों को स्पष्ट करना आवश्यक होगा । यहां यह दिखाना आवश्यक होगा कि गैर मूल्य कारक किस तरह मूल्य कारक पर अधिक प्रभावी है । सस्थागत कारक को प्रभावित कारकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1 वित्तीय

2 गैर वित्तीय

जहा तक सस्थागत साख के निर्धारण में वित्तीय कारकों का प्रश्न है, उनमें साख की अदायगी तथा शुद्ध प्रतिफल दर है । इन दो कारकों के साथ और बहुत से कारक हैं । यहा पर सक्षेप में इन दो कारकों का विश्लेषण किया जा रहा है । साथ ही साथ यहा पर ऋण तथा साख को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है । जहा तक प्रतिफल के शुद्ध दर का प्रश्न है, यह ऋण के ब्याज दर और ऋण के सेवा लागत के अतर से प्राप्त होता है । प्राप्त सिद्धान्त के अनुसार ऋण ब्याज दर साख का अकेले नियत्रक कारक है । वास्तविक जीवन में संस्थागत ऋण ब्याज दर को प्रशासनिक कीमते कहते हैं ।यह दर जो महत्वपूर्ण कार्य करता है, वह यह है कि इच्छुक ऋण ग्राहक और गैर ऋण ग्राहक को अलग करता है । जो लोग स्वतत्र दिये गये ब्याज दर पर ऋण प्राप्त करने के इच्छुक है, उन्हें इसमें स्वत निर्धारित कर लिया जाता है और सीमित अर्थ में यह ब्याज दर एक राशिनिग प्रक्रिया का कार्य करता है, किन्तु इच्छुक ऋण ग्राहकों में ब्याज दर के अलावा अन्य शक्तिया भी कार्य करती हैं और यही शक्तिया सस्थागत साख के निर्धारण में महत्वपूर्ण रोल अदा करती है । यहा ऋण सेवा लागत पर भी ध्यान दिया जा सकता है कि ऋण सेवाओं पर क्या लागत है । यहा पर यह पर्याप्त होगा कि मध्यम ऋणों की सेवा लागते बड़े सेवा लागतों से अधिक होती हैं और इसलिए यदि एक जैसा प्रतिफल दिया गया हो और अन्य बाते समान हों तो छोटे ऋणों पर शुद्ध प्रतिफल दर बड़े ऋणों के प्रतिफल दर से कम होती है । इससे सस्थागत ऋण दाताओं को छोटे ऋण देने में हतोत्साहित होना पडता है किसी भी दिये गये ऋण में दो तरह के अदा करने की प्रतिज्ञा निहित है । वह मात्रा, जो ऋण ग्राहक द्वारा ली गयी है, उसे अदा करने की तथा ऋण पर ब्याज दर अदा करने की प्रतिज्ञा। इन दोनों अदायगियों का सम्बध भविष्य से हैं । अत इसमें अनिश्चयता तथा जोखिम निहित है कि इसमें से ऋण ग्राहक एक को या दोनों को अदा न कर सके । सामान्यतया एक स्थायी राजनैतिक वातावरण में सरकारी ऋणों पर अदायगी का जोखिम बहुत कम होता है, क्योंकि लोगों से अदायगी के इसके अनेक अधिकार होते हैं, परन्तु व्यक्तिगत

क्षेत्रों के सभी ऋणों पर कुछ न कुछ जोखिम सम्बन्धित है । अत ऋण दाता का सबसे महत्वपूर्ण सम्बध इस जोखिम का पता लगाना हे और प्रर्याप्त उपयुक्त रूप से इसके सम्बध में सुरक्षित होना है । यहा पर कुल मिला करके साख ग्राहकों की साख योग्यता का प्रश्न हे । इस तरह के साख निर्धारण की प्रक्रिया पूरी तरह से बाजारी शक्तियों द्वारा निर्धारित नहीं है और वे मात्र माग और पूर्ति शक्तियों से निर्धारित नहीं होती और यह कई गैर बाजारी शक्तियों पर आधारित है तथा हर देश में अलग - अलग होती है ।

यहा पर साख अदायगी से सम्बन्धित जोखिम के दो स्रोतों में भेद करना महत्वपूर्ण होगा (1) व्यक्तिगत (नैतिक) जोखिम, (2) व्यापारिक जोखिम । पहला जोखिम उधार लेने वाले की इमानदारी से सम्बंधित है, जो ऋण की अदायगी न कर सके और यह भी बाजारी शक्तियों पर आधारित नहीं है । इस पर मुख्य रूप से राजनैतिक प्रवाह भ्रष्टाचार, गैर इमानदारी आदि है, व्यापार जोखिम, उद्यमों के जोखिम पर निर्भर करता है । मोटे तौर पर यह उधार लेने वाले की अदायगी क्षमता पर आधारित है । यह ऋण ग्राहकों के वर्तमान और सम्भावित सम्पत्तियों तथा आय दशाओं पर निर्भर करता है । अत ऋण देने के पूर्व ऋण दाताओं को ऋण ग्राहकों की पूरी वित्तीय स्थिति को प्राप्त कर लेना चाहिए ।

अनुभव के आधार पर यह प्राप्त हुआ है कि भुगतान साम्थर्यता भी ऋण दाता के लिये ऋण देने के लिये उत्साहित नहीं करता, क्योंकि वास्तविक साख क्षति की दशा में यह प्रर्याप्त नहीं है कि ऋण दाता ऋण और ब्याज की वसूली कर सके । परिणाम स्वरूप ऋण दाता पर्याप्त मात्रा में ऋण के बदले प्रतिभूति रखने पर जोर देता है । इसी तरह प्रतिभूति के बदले दिये गये ऋण को सुरक्षित ऋण कहा जाता है और जो ऋण प्रतिभूतियों के आधार पर नहीं दिया जाता , उन्हें असुरक्षित ऋण कहा जाता हे और उसे अल्पावधि के लिये विश्वसनीय ग्राहकों को दिया जाता है । [10] प्रतिभूति आधार पर ऋण देने का मुख्य आधार ऋण क्षति से सुरक्षित रखना है । तथा

---

10. State Bank of India, Manthly Review, June, 1988.

ये वस्तुओं, सेवाओं की मात्रा, मशीन, मोटर गाडिया, वास्तविक सम्पदा, सोना - चादी, अन्य जेवरात, वस्तुओं की रसीदें, बिल आदि तथा विनियम स्टॉक प्रतिभूतिया, जैसे जीवन बीमा निगम प्रतिभतिया, सार्वाधिक जमा रसीदें, बिल आदि हो सकते हैं । इन्हें बैंकिग आदेय कहते हैं, क्योंकि ये प्रतिभूतिया बैंको में स्वीकार होती है । किसी ऋण के बदले प्रतिभूति के रूप में आदेय का स्वीकार होना वाक्षनीय गुणों पर आधारित है अर्थात् वे स्थायी तथा अचल हैं और ऋण समयावधि में उनके मूल्य में गिरावट न हो और उन्हें आसानी से रखा जा सके और उनका मूल्य स्थिर हो, और इनका आर्थिक मूल्य पर्याप्त हो, जिससे ऋण तथा ब्याज की वसूली की जा सके । यहा यह समझ लेने की बात है कि जब किसी आदेय को एक प्रतिभूति के रूप में रखा जाता है, तो ओदयों पर ऋण दाता का अधिकार होना चाहए और यह अधिकार सस्थागत है, न कि बाजारी प्रक्रिया । यह अधिकार व्यापारिक क्रिया तथा देश के नियम के अन्तर्गत होना चाहिये । उदाहरण के लिये अचल सम्पत्ति के सम्बध में ऋण दाता को सम्पति का अधिकार हस्तान्तरण कर दिया जाता है । इन सब बातों का महत्व अर्थशास्त्रियों के लिये दो दृष्टिकोणों से है । प्रथम तो यह कि ऋण प्रस्तावों के मूल्याकन में प्रर्याप्त सक्षम कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है और दूसरे इससे जुडे हुये सेवा लागत है, जिसमें ऋण प्रस्तावों का मूल्याकन स्वीकृत, बंटवारा, ऋणों की अदायगी, कानूनी कार्यवाही, आदेयों की बिक्री आदि सम्मिलित है ।

जब स्वीकृत प्रतिभूति प्रदत्त की गयी हो, उस दशा में ऋण ग्राहकों को कितना साख इसके बदले में दिया जाय, बैंक सामान्यतया बैंकिग आदेयों के पूरे मूल्य के बराबर ऋण प्रदान नहीं करते, उसके एक प्रतिशत के रूप में ऋण के रूप में दिया जाता है और प्रतिभूति के मूल्य और प्रतिशत ऋण के अन्तर को ऋण ग्राहक के उधार लेने की शक्ति को प्रदर्शित करता है । इस प्रितिशत ऋण व्यवस्था का मुख्य योगदान ऋण द्वारा वित्तीय व्यापारिक कार्यो में स्थिरता बनाये रखना है । यदि ऋण दाता प्रतिभूति के पूरे मूल्य के बराबर ऋण निर्गत कर देते हैं तो ऋण ग्राहक का व्यापारिक कार्यो में स्थिरता न बनी रह सकेगी और ऐसी स्थिति में भुगतान जोखिम अधिक

इसके आधार पर ऋण ग्राहक को पुन ऋण लेने के लिये योग्य बनाना है। ऋण के बदले में दी जाने वाली ये प्रतिभूतिया मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं - प्राथमिक प्रतिभूतिया तथा कोलेट्रल प्रतिभूतिया । प्राथमिक प्रतिभूतिया आदेयों की प्रतिभूतिया, जो ऋण फड द्वारा सृजित या प्राप्त की जाती हैं तथा कोलट्रल प्रतिभूतियां, प्राथमिक प्रतिभूतियों के सहायक के रूप में अतिरिक्त प्रतिभूतियों पर होती है, ये प्राय ऋण ग्राहक द्वारा स्वय या तीसरे पक्ष द्वारा प्रस्तुत की जाती है, जो लिये गये ऋण की शर्तो या गारटी रूप में होती है । प्राय व्यक्ति ऋणों में इस तरह का अन्तर महत्वपूर्ण नहीं होता, क्योंकि ऋण दाता प्राय स्वर्णाभूषणों या अचल सम्पतियों के आधार पर ऋण देते हैं, किन्तु उभयोग वस्तुओं के वित्तीयन में हायर परचेज वित्त कम्पनिया प्राय प्राप्त कोलेट्रल प्रतिभूतियों की माग करते हैं, क्योंकि उसको प्राप्त करने वाला उन उपभोग वस्तुओं के स्वामित्व और उनके उपयोग को करता है । इसी तरह व्यवसायिक ऋण उत्पादक व्यवसायी आदेयों को सृजित करने या प्राप्त करने हेतु लिये जाते हैं, चाहे वे फैक्ट्ररी निर्माण, मशीन क्रय आदि को प्राथमिक प्रतिभूति के रूप में ऋणदाता को देते हैं । इस तरह के प्रश्नों का सम्बध साख निर्धारण से महत्वपूर्ण रूप से जुडा है । यह बात स्पष्ट है कि कालेट्रेल प्रतिभूतियों को कड़ाई से लागू करने में सस्थागत ऋणदाता जैसे बैंक को अपने आधारभूत कार्यो में अडचने पड़ सकती है , जेसे उत्पादक साख देने में, क्यों कि सभी सम्भावी ऋण ग्राहक इस स्थिति में नहीं होते कि बैंको द्वारा प्रदत्त साख अग्रिमों के बदले वे पर्याप्त कोलेट्रल प्रतिभूतिया दे सके । इसी तरह यहा महत्वपूर्ण बात इस तथ्य से जुडा है कि बैंक साख को प्राप्त करने वाले निर्धन वर्ग इस तरह को प्राप्त करने वाले निर्धन वर्ग इस तरह की प्रतिभूतियों को कैसे अदा कर सकते हैं । बड़े ऋण ग्राहकों के सम्बंध में निदेशकों के व्यक्तिगत प्रतिभूतिया प्राप्त समझी जाती है, जिसके कारण यह प्रक्रिया बड़े एवं धनी ऋण ग्राहकों के लिये अनुकूल है, जब कि इससे नये और छोटे उद्यमी विपरीत रूप में प्रभावित होते हैं । अत॰ यह उपयुक्त होगा कि कोलेट्रल प्रतिभूतियों के रूप में अधिक जोर न दिया जाय और ऋण ग्राहक के भुगतान सामर्थ्यता को देखा जाय । अत यहा ऋण ग्राहक के प्राथमिक प्रतिभूति से है, न कि कालेट्रल प्रतिभूति से । अनेक प्रकार के आदेयों का प्रयोग प्रतिभूति के रूप में किया जा सकता है,

होगा । भारत के साथ अनेक देशों में केन्द्रीय बैंक ने इस सीमा प्रतिशत का प्रयोग चयनात्मक साख विधियों में किया है । इसका प्रयोग करने से विभिन्न व्यापारिक तथा आर्थिक क्रियाओं में ऋण का हतोत्साहित या उत्साहित किया जा सकता है । वास्तविक व्यवहार में साख जोखिम के सम्बध में ये सभी सस्थागत सभावनाए है, विशिष्ट ऋण ग्राहकों द्वारा प्रतिवर्तित की जा सकती है, क्योंकि प्रतिभूतियों के मूल्यों को ऊँचा दिखाया जा सकता है । इस विवरण से स्पष्ट होता है कि सस्थागत वित्तों में ऋण ग्राहक के साथ योग्यता प्रशिक्षण में कई जटिल शक्तिया सम्बन्धित हैं । ये सारी समस्याओं का ध्यान एक साख निर्धारण के एक मानक सिद्धान्त में ध्यान नहीं दिया जाता, ऋण बाजार में ऋण दाता और ऋण ग्राहक का सम्बध काफी समय के लिये बना रहता है और ऋण की अदायगी तक यह कायम रहती है । अत साख निर्धारण सिद्धान्त में इस बात को विशेष ध्यान देना चाहिये ।

ऋण दाता द्वारा ऋण ग्राहकों के सम्बध में होने वाले जोखिम के इस विश्लेषण के साथ इन सारी बातों को एक साथ माग और पूर्ति विश्लेषण में रख सकते हैं और एक साख पूर्ति वक्र बनायी जा सकती है, जो साख की उपलब्धता को प्रदर्शित करती है और इन कारकों पर आधारित हैं, जिस सीमा तक सम्भावी ऋण ग्राहक इन कारकों पर ध्यान देते हैं, उस सीमा तक उनकी साख मांग प्रभावित होती है । परंपरागत सिद्धान्त में किसी व्यक्गित ऋण ग्राहक की पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार होती है और यह बाजारी निर्धारित ब्याजदर पर इस वक्र पर इन कारकों को ध्यान में रखते हुये कोई व्यक्तिगत ऋण ग्राहक जितना चाहे उधार नहीं ले सकता और इस तरह साख पूर्ति वक्र ऊपर की ओर ढ़ाल लिये होती है । इस सम्बध में साख पूर्ति वक्र या तो ऊपर की ओर सीधे ढ़ाल लिये हो सकती है या एल (L) आकार में हो सकती है, जैसा कि चित्र 2 में दिखाया गया है । दोनों ही दिशाओं में यह आवश्यक है कि ऋण ग्राहक की साख योग्यता और ऋण ग्राहक की प्रकृति के आधार पर ऋण दाता द्वारा जोखिम का अनुपात अनुमानित किया जा सकता है । एक सीमा के बाद यह अनुमानित जोखिम इतना अधिक हो सकती है कि ऊँची ब्याज दर पर भी वह ऋण देने को तैयार न होगा ।अब यहा पर एक महत्वपूर्ण परिकल्पना का समावेश किया जा सकता है, जो ऋण

देने की प्रतिज्ञा से सम्बन्धित है । सरल रूप में यह परिकल्पना यह निर्देश करती है कि ऋण ग्राहक की यदि शुद्ध क्षमता दिया गया है तो ऋण पर जोखिम, ऋण मात्रा का बढ़ता हुआ फलन है यह इसलिये है कि जोखिम अनिश्चयता कि ससार में किसी विनियोग परियोजना से संभावित प्रतिफल सफल न हो सके और उनमें हानि हो सकती है और ऋण ग्राहक ऋण का भुगतान करने में असफल हो सकता है, इसलिये यदि ऋण ग्राहक का इक्विटी दी हो तो जैसे जैसे ऋण मात्रा में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे यह जोखिम बढ़ेगी। इसका अभिप्राय यह है कि यदि अन्य बाते सामान्य हों तो जैसे-जैसे ऋण दिया जाता है, जोखिम बढ़ता जाता है । अत वह ऋण ग्राहको को अधिक ऋण दने का तभी तैयार होगा, जब ब्याज की दर ऊँची हो । साख पूर्ति वक्र के दोनों रूपों को L A S और R A S_b के रूप में होगा । इन दोनों पूर्ति वक्रों का निर्माण इस मान्यता पर आधारित है कि ब्याज दर के अलावा अन्य कारक जो ऋण दाता को उधार देने के लिये प्रभावित करते हैं, वे स्थिर हैं । ये अन्य कारक LS वक्र पर स्थिति का निर्धारित करते हैं । LS_a वक्र यह दिखाता है कि L_o मात्रा तक ऊँचा ब्याज दर अधिक साख पूर्ति का है यहा L_o पर यह वक्र पूर्णतया औनुभौमिक हो जाती है, जो यह बात प्रदर्शित करती हे कि एल ओ से अधिक साख की मात्रा पर ऋण दाता किसी भी ऊँचे नीचे ब्याज दर पर उसे ऋण जोखिम के बदले उसे ऋण देने के लिये उत्साहित नहीं करती।

चित्र- 3 2
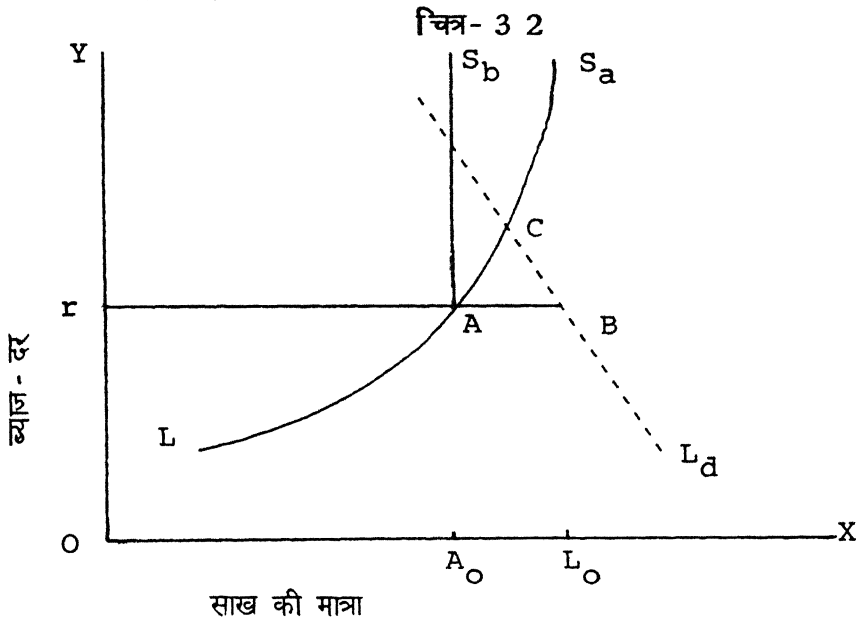
साख पूर्ति का L स्वरूप वक्र RASB इस मान्यता पर खींचा गया है कि R ब्याज पर स्वतत्र रूप से निर्धारित होती है, चाहे यह मौद्रिक अधिकारी अथवा बैंक संघ द्वारा निर्धारित हो । यही बात सस्थागत ऋणों और अग्रिमों के बाजारों में भी सत्य है । इस वक्र पर A बिन्दु पर तीव्र विकुचन होती है, जो LSA वक्र पर स्थित है । यह साख की न्यूनतम् मात्र (A_o) को दिखाती है, जो ब्याज दर पर प्रस्तावित किया जाता है । इस मॉडल में मान्यता के आधार पर कोई भी ऊँची साख की मात्रा तभी प्रस्तावित की जायेगी, जब ब्याज दर R से अधिक हो और इस तरह A बिन्दु LSA वक्र पर ऊपर की ओर बढ़ेगी, जहा तक साख की माग वक्र, जो नीचे की ओर गिरती हुयी LD रेखा द्वारा दिखायी गयी है, वह RA साख मात्रा से अधिक नहीं होती, तब तक कोई ऋण ग्राहक निर्धारित साख प्राप्त करता है, वह AB मात्रा के बराबर होता है । इस मांडल में माग पक्ष का फलन यह निर्धारित करता है कि कोई ऋण ग्राहक साख की निर्धारित मात्रा को प्राप्त कर रहा है और यह मात्रा कितनी है । इस माडल में साख पूर्ति वक्र में यदि LD और LSA वक्र बाजारी माग और पूर्ति वक्र है तो साख बाजार में संस्थिति C बिन्दु पर होती है, जो संस्थित ब्याज दर और मागी जाने वाली संस्थिति साख माग और पूर्ति को दिखाती है ।

उपुर्यक्त विश्लेषण को अब अन्तर ऋण दाता साख निर्धारण को दिये गये ब्याज दर विश्लेषण किया जा सकता है । पूर्व किये गये विश्लेषण से स्पष्ट है कि परंपरागत प्रतिभूति उन्मुख साख पूर्ति के सम्बंध में जो कारक ऋण दाता के लिये महत्वपूर्ण है, वह ऋणग्राहक की इक्विटी या शुद्ध स्थिति है, जिससे उसकी वांक्षित प्रतिभूति द्वारा अदा करने की योग्यता तथा प्रतिशत ऋण को पूरा करने की स्थिति पता चलती है और कारक जैसे ब्याज दर तथा ऋण ग्राहक के विनियोग परियोजनाओं का जोखिम गैर महत्व के हैं। पुन साख की पूर्ति ऋण ग्राहक के इक्विटी का बढ़ता हुआ फलन है। जितनी अधिक ऋण ग्राहक की इक्विटी होगी, उतना अधिक उसे साख प्रदान किया जायेगा । इस तरह प्रतिभूति उन्मुख साख के निर्धारण का स्थान जिसके पास जितना

है उतना देना है, इस मॉडल में इस तरह पूर्ति वक्र का अभिप्राय होगा कि एक धनी ऋण ग्राहक एक निर्धन ऋण ग्राहक की तुलना में आगे की स्थिति में होगा । इसका अभिप्राय यह होगा कि मॉडल में क्षैतिज रेखा दाहिनी ओर बढ़ेगी, क्योंकि साख की माग वक्र LD एक धनी ग्राहक के लिये दाहिनी ओर आगे की ओर स्थित होगी, एक निर्धन ग्राहक की तुलना में । अत धनी ऋण ग्राहक को साख प्रदत्त की मात्रा निर्धन ऋण ग्राहक की तुलना में अधिक होगी । इस तरह ऋण ग्राहक में साख राशिनिग का अनुपात अनुपातिक रूप से समान नहीं होगा । अधिक रूपों में यह ऋण ग्राहकों में अलग - अलग होगा और यह अन्तर अधिकाशत पूर्ति पर होगी । यदि साख की मांग R ब्याज दर दिया हुआ मान लिया जाय । इससे साख सस्थाओं को कुछ ऋण दाताओं की तुलना में साख देने की शक्ति प्राप्त हो जाती है, जिसके कारण कुछ लोगों को कई रूपों में सहायता की जा सकती है । जैसे, प्रतिभूति के मूल्य को ऊँचा करके, आसान आदेयों को स्वीकृत करके एक ही प्रतिभूति के बदले कई साख दे कर के, साख देने में सुविधा तथा कम समय ले कर आदि । सस्थागत साख निर्धारण में गैर वित्तीय कारकों का भी विश्लेषण किया जा सकता है । यदि सस्थागत साख का निर्धारण सस्थागत है और एक बाजारी प्रक्रिया नहीं है तो इसको गैर वित्तीय कारक भी उसी तरह प्रभावित करेंगे । ये मुख्य कारक सामाजिक और राजनैतिक हैं । जहा तक सामाजिक कारकों का प्रश्न है, वह वित्तीय सस्थाओं से उत्पनन होते हैं । ये सामाजिक सम्बध पारवारिक सम्बधों के कारण सामाजिक प्रतिष्ठा, बैठकों आदि द्वारा होती हैं तथा साथ ही साथ सामाजिक विकास, भ्रष्टाचार आदि से प्रभावित है । इन सब का परिणाम बडे उधार ऋण ग्राहकों के पक्ष में होता है । आधुनिक वित्तीय सस्थाओं का उदय वस्तुत आधुनिक उद्योग और व्यापार के कारण हुआ है और इस तरह समयोपरि उनके सम्बधों में परिवर्तन हुये हैं, जैसे कि औद्योगिक और व्यापारिक ऋण ग्राहकों द्वारा वित्तीय प्रतिभूतियों को लेने, स्टॉक विनिमय के सगठनों, उनके वैधानिक संरचना, साख प्रदान करने की विधि आदि है । स्वाभाविक रूप से वित्तीय प्रबन्धक बडे उधार ग्राहक को ऋण देने में सुविधा का अनुभव करते हैं और इस रूप में निर्धन ऋण ग्राहकों की उपेक्षा की जाती है। सामाजिक कारकों के साथ-साथ राजनैतिक कारक भी सस्थागत साख निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका

अदा करते हैं, परन्तु अधिकाश रूप में राजनैतिक प्रभावों का लाभ बडे ऋण ग्राहकों को प्राप्त होता है । अपनी आर्थिक शक्ति के आधार पर बड़े ऋण ग्राहक राजनैतिकि शक्ति को भी एकत्र कर लेते हैं, क्योंकि ये अपनी आर्थिक शक्ति द्वारा राजनैतिक निर्णय कर्ताओं को भी भ्रष्ट करने में अधिक सफल हो जाते हैं । भ्रष्टाचार की प्रक्रिया पूर्णतया व्यापक और सर्वमान्य है । यद्यपि भ्रष्टाचार का साधारण अनुमान नहीं लगाया जा सकता, किन्तु अधिकाश लोग इसको स्वीकार करते हैं । छोटे ऋण ग्राहक में भी यह भ्रष्टाचार करने की प्रवृत्ति होती है, परन्तु उनके सगठन तुलनात्मक रूप से कमजोर और असगठित होता है । और इसलिये यदि सिद्धात रूप में भी छोटे ऋण ग्राहकों के पक्ष में नीति निर्धारण होते हैं, तो वे भी साख का वास्तविक क्रियान्वयन एव योजनाए उनके पक्ष में नहीं होती । अत· इस बात की आवश्यकता हे कि इन साख योजनाओं की आधारभूत दशाओं को स्पष्ट किया जाए तथा इन दशाओं को किस तरह से प्रभावी ढग से प्राप्त किया जा सकता है, इसका विश्लेषण होना चाहिए ।

मुद्रापूर्ति और साख पूर्ति की अवधारणा और सिद्धान्त के उपुर्यक्त विश्लेषण हमारे वर्तमान मौद्रिक और साख विश्लेषण में नीति-निर्माण में बड़े महत्वपूर्ण हैं । मुद्रापूर्ति की अवधारणा, जिसमें करेन्सी तथा माग जमाए सम्मिलित हैं तथा उच्च अर्घ मुद्रापूर्ति, जिसमें करेन्सी तथा आरक्षित सम्मिलित हैं, यह स्पष्ट करती है कि किस तरह मौद्रिक नीति विशिष्ट मौद्रिक आरक्षितों का समायोजन करेगी । मुद्रा पूर्ति का विशुद्ध बैंकिग सिद्धान्त मुद्रा पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों के विभिन्न स्रोतों को दिया गया है और अर्थव्यवस्था में किसी विशिष्ट अवयव के नियत्रण द्वारा मौद्रिक स्थायित्वता प्राप्त करने में सहयोगी है । भारत जैसी अर्थव्यवस्था में बैंकिग दशा तथा मुद्रा माग के विभिन्न अवयव मौद्रिक नियत्रण हेतु बड़े महत्वपूर्ण है । इसी तरह मुद्रा पूर्ति स्टाक में भी मुद्रा पूर्ति के क्षेत्रवार नियत्रण हेतु उपयोगी है । मुद्रा पूर्ति के इस अवधारणा और सिद्धानत के साथ यह सम्भव है कि किसी एक विशेष मुद्रा पूर्ति स्टाक अवयव को नियत्रित किया जाय और अन्य अवयवों को स्वतत्र रूप से नियत्रित सकिया जाय ।[11] चूंकि यहां उच्च

11. R.B.I, Report of the Second Workıng Group 1977, p.9.

भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एवं साख नीति पंचवर्षीय योजनावधि के अन्तर्गत

(MONETARY AND CREDIT POLICY OF RBI, DURING THE PLAN PERIOD)

मुद्रापूर्ति के विभिन्न सैद्धान्तिक विश्लेषणों के दिये गये विवरण तथा भारतीय रिजर्व बैंक के मुद्रापूर्ति सम्बन्धी विश्लेषण के बाद यह महत्वपूर्ण होगा कि हम योजनावधि के अन्तर्गत विशेषकर 1961 के बाद से भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति तथा उसमे समय-समय पर हुए परिवर्तनों का विश्लेषण प्रस्तुत करे। प्रस्तुत अध्याय मे भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति का विश्लेषण विशेषकर 1961 के बाद से करने का प्रधान कारण यह रहा है कि 1961 के बाद देश के कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र मे मुद्रा एव साख का अत्यधिक विस्तार हुआ ओर कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु मौद्रिक तथा साख नीति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व के अधिकाश देश अपनी अर्थव्यवस्था को पुन स्थापित करने हेतु मौद्रिक नीति मे परिवर्तन का आधार लिया है, जिसमे ऊँचे स्तर के विनियोग द्वारा आर्थिक विकास को तीव्र करने की प्राथमिकता दी गयी है। आर्थिक विकास के रूप मे केन्द्रीय बैंक नीति के उद्देश्य के कारण मौद्रिक नीति के विकास मे महत्वपूर्ण कदम लिये गये और इस तरह तीव्र आर्थिक विकास एव पूर्ण रोजगार को प्राप्त करना मौद्रिक नीति का प्रधान उद्देश्य बन गया। भारतीय रिजर्व बैंक, जो देश का प्रधान मौद्रिक अधिकारी है, वह द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्त तक नियन्त्रित रूप मे कार्य किया और युद्ध के समयावधि मे इसके मौद्रिक नीति का प्रधान उद्देश्य युद्ध से हुये वित्तीय घाटे की व्यवस्था करने से था। इस तरह मौद्रिक नीति की तकनीक, जो भारतीय रिजर्व बैंक ने अनुसरण किया उसकी इस रूप मे पुष्टि प्रो० के०एन० राज ने भी की है।[1]

1947 मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ आर्थिक विकास को नई दिशा तथा गति प्राप्त हुई और नियोजित अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक विकास तथा क्रियाओ मे सरकारी हस्तक्षेप के साथ मौद्रिक

---

1. K.N. Raj, The Monetary Policy of the Reserve Bank of India, 1948, p. 160.

नीति के कार्यशीलता एव क्षेत्र मे विस्तार हुआ। इस तरह युद्ध सम्बन्धी वित्तीय व्यवस्था के स्थान पर मौद्रिक नीति का उद्देश्य अब बदल कर विकासात्मक योजनाओ के वित्तीयन से हो गया। यह अनिवार्य समझा गया कि भारतीय रिजर्व बैंक को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास हेतु सीधे अधिकार दिये जाये। फलत बैंक नियत्रण एक्ट 1949 पारित किया गया, जिसके अन्तर्गत बैंकिग व्यवस्था के नियत्रण एव निरीक्षण सम्बन्धी विस्तृत अधिकार दिये गये और विकासात्मक योजनाओं मे उद्देश्य के अनुसार, सामाजिक रूप से वांछित क्षेत्रों मे तथा प्राथमिक क्षेत्रों मे साख के प्रवाह को सुनिश्चित कर सके। इस तरह युद्धोपरात स्वतत्र भारत मे भारतीय रिजर्व बैंक देश के मौद्रिक एव साख सरचना का सरक्षक एव नियत्रक के रूप मे उभर कर सामने आया। मोटे तौर पर भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति अधिक प्रभावी ढग से विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं मे विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उभर कर सामने आया।

4.1 प्रथम तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में मौद्रिक एव साख नीति (1950-51 — 1955-56 तथा 1956-57 — 1960-61)

भारत सरकार ने अपने प्रथम पचवर्षीय योजना मे एक सुदृढ़ मौद्रिक नीति के महत्व पर बल दिया है।[2] एक केन्द्रीय बैंक के रूप मे भारतीय रिजर्व बैंक का योगदान विकासात्मक क्रियाओं मे वित्तीय प्रवाह को सुनिश्चित करना हो गया। मौद्रिक नीति के इस उद्देश्य को योजनापर्यन्त कायम रखा गया और ऐसे कदम उठाये गये, जिससे बचत प्रोत्साहित हो, विनियोग उत्प्रेरित हो सके तथा ऐसा वातावारण उत्पन्न हो सके कि योजना के अन्तर्गत उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। इस तरह मौद्रिक नीति का अब प्रधान उद्देश्य आर्थिक विकास को त्वरित करने के साथ-साथ उपयुक्त मूल्य स्थायित्वता को प्राप्त करना हो गया। इस तरह प्रथम पचवर्षीय योजना मे मौद्रिक तथा साख नीति का मोटे तौर पर दो प्रमुख उद्देश्य थे- प्रथम आर्थिक विकास तथा उत्पादन हेतु बढ़ती हुई साख आवश्यकता को उपलब्ध कराना तथा दूसरे, समग्र माग तथा पूर्ति के बीच सतुलन स्थापित करना। इस तरह उद्योग तथा कृषि क्षेत्र मे बढ़ती हुई साख आवश्यकताओं को उपलब्ध कराना ही इन नीतियों

---

2. First Five Year Plan, Govt. of India, p.38.

का प्रधान उद्देश्य रहा है। इसी के साथ यह भी माना गया कि विकास के प्रारम्भिक चरणों मे उत्पादन की तुलना मे लोगों की मौद्रिक आय मे अधिक तीव्र वृद्धि हो सकती है,जिससे उपभोग तथा व्यय मे वृद्धि के साथ स्फीतिकारी दशाए उत्पन्न हो सकती है और इससे अर्थव्यवस्था की वांछित समृद्धि प्रभावित हो सकती है। इस उद्देश्य हेतु मौद्रिक नीति को एक शक्तिशाली उपकरण समझा गया, जिससे साख नियत्रण द्वारा स्फीतिकारी दबाओं को नियन्त्रित किया जा सकता है। इस योजना मे इस बात की सस्तुति की गयी कि प्रभावकारी साख नियत्रण विनियोग तथा व्यापारिक क्रियाओं के नियत्रण हेतु आवश्यक उपकरण के रूप मे बना रहना चाहिए।[3]

प्रथम पचवर्षीय योजना मे एक नियोजित अर्थव्यवस्था के प्रादुर्भाव के साथ भारतीय रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नीति के कुछ नये उपागम प्रारम्भ किये और बैंक दर को नवम्बर 1951 मे 3 से 3 5 प्रतिशत बढ़ा दिया। यह बैंकिग व्यवस्था के लिए इस बात का सकेत था कि दृढ़ साख नीति का प्रादुर्भाव तथा सस्ती मुद्रा नीति का समापन होना है।[4]

प्रथम पचवर्षीय योजना मे घाटे की वित्त व्यवस्था को विदेशी विनिमय आरक्षितों अथवा बाह्य ससाधनों से पूरा करने का लक्ष्य रखा गया। प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह स्पष्ट चेतावनी दी गयी कि घाटे की वित व्यवस्था को उसी दशा तथा मात्रा मे किया जाय, जब उपभोग सम्बन्धी आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति शीघ्र सुनिश्चित की जा सके और घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा मुद्रा की पूर्ति मे विस्तार न किया जाय, अपितु यह साख व्यवस्था से किया जाय।[5]

प्रथम पचवर्षीर्य योजना के प्रारम्भ मे अर्थव्यवस्था स्फीतिकारी दबाओं से पीड़ित थी,अत भारतीय रिजर्व बैंक की साख-नीति को कुछ सीमा तक महगी और नियंत्रित रखी गयी। बैंक दर मे

---

3. Planning Commission, Problem of Economic development First Five Year Plan, p. 37.

4. C.R. Basu, Central Banking in A Planned Economy, 1978, p. 27.

5. First Five Year Plan, Planning Commission, p. 61.

वृद्धि के साथ-साथ खुले बाजार की क्रियाओ मे भी परिवर्तन किये गये। इनके परिणाम स्वरूप पचवर्षीय योजना के दो वर्षों मे मुद्रा पूर्ति मे महत्वपूर्ण कमी रू0 214 करोड की हुई। इसी के साथ सरकार को बैंक का साख भी शुद्ध रूप से घटा और साथ-साथ व्यक्तिगत क्षेत्र मे भी बैंक साख नियत्रित रहा। इस योजना के बाद के वर्षों मे पुन मुद्रापूर्ति तथा स्फीतिकारी दबाओं मे तीव्र वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण रिजर्व बैंक के द्वारा सरकार को दिये जाने वाले साख के कारण हुई। इस योजना मे थोक मूल्य,जो 1954-55 मे घट कर 11 8 हो गये थे, वे बढ़कर पुन 1955-56 मे 11 6 हो गये। इस तरह समग्र रूप मे इस योजनावधि मे मुद्रा पूर्ति मे 10 प्रतिशत वृद्धि हुई तथा थोक मूल्यों की स्थिति 13 प्रतिशत रही और यह स्थिति देश के राष्ट्रीय आय की समृद्धि दर 19 प्रतिशत कृषि क्षेत्र मे और 22 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र मे होने के कारण हुई।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे विकास की समस्याओ के समाधान हेतु मौद्रिक एव साख नीतियों पर विशेष बल दिया गया। इस सम्बन्ध मे भारतीय रिजर्व बैंक मौद्रिक एव साख नीति मोटे तौर पर दो उद्देश्यों से सम्बन्धित रहे अर्थात् अर्थव्यवस्था के विकास मे सहयोग प्रदान करना तथा विकास के साथ स्फीतिकारी दबावों को नियत्रित करना। इन उद्देश्यों के परिणामस्वरूप 1956 मे भारतीय रिजर्व बैंक के एक्ट मे सशोधन किया गया और योजनाकाल मे आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप वित्तीय ढॉचें को अपनाया गया। मोटे तौर पर द्वितीय पचवर्षीय योजना मे रिवर्ज बैंक के मौद्रिक और साख नीति को 'नियत्रित विस्तार' कहा जा सकता है, जिसका अभिप्राय विस्तार के साथ स्थायित्वता है। यद्यपि रिजर्व बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था के विविधीकरण तथा तीव्र विकास हेतु साख एव मुद्रा पूर्ति मे विस्तार की आवश्यकता समझी गयी, परन्तु इस बात पर विशेष बल दिया गया कि अत्यधिक मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि स्फीतिकारी होगी और अतत अर्थ व्यवस्था के वित्तीय स्थायित्वता के लिए हानिकारक होगी। ऐसे सदर्भ मे रिजर्व बैंक की साख नीति साख एवं मुद्रा पर सामान्य नियत्रण रखते हुए आवश्यक उत्पादक क्षेत्रों के क्रियाओं एव विकास कार्यक्रमों को बिना नुकसान पहुचाये हुए होना चाहिए।[6]

द्वितीय पचवर्षीय योजना के समयावधि मे साख को नियत्रित रखने हेतु 1957 में बैंक दर

---

6. Report of the Central Board of Directors, RBI, 1956-57, p.14.

का 3 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया। इसी के साथ-साथ खुले बाजार की क्रियाओं का अधिकाशत प्रयोग सरकार को उसके कर्ज लेने की प्रक्रिया मे सहयोग प्रदान करने के लिये किया गया। परिणामत 1957-1960 के समयावधि मे भारतीय रिजर्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियों का एक मात्र विक्रेता बन गया और बाजार के तरल ससाधनों को प्राप्त करने एव साख विस्तार को प्रतिबन्धित करने मे सहायक रहा। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे एक सबसे महत्वपूर्ण उपरकण जिसका प्रयोग साख नियत्रण हेतु किया गया वह था, कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं एव प्रतिभूतियों पर अग्रिमों के लिये चयनात्मक विधि । इनका उद्देश्य मुख्य रूप से इन वस्तुओं के मूल्यों मे अव्यवस्थित परिवर्तन को रोकना तथा सट्टेबाजी प्रवृत्ति से स्टॉक सचयन को रोकना था। भारतीय रिजर्व बैंक ने चयनात्मक साख विधि द्वारा आवश्यक खाद्य पदार्थों जैसे, धान, गेहू, मूगफली, तिलहन, जूट, चीनी तथा अन्य खाद्यानों पर दिये जाने वाले अग्रिमों को इस विधि द्वारा नियत्रित किया

इस योजना के अन्तर्गत रिजर्व बैंक ने साख विस्तार के नियत्रण हेतु व्यापारिक बैंकों द्वारा गैर आपेक्षित साख विस्तार को रोकने हेतु नैतिक दबाव का भी महत्वपूर्ण रूप से प्रयोग किया। इसी के साथ-साथ 1960 मे बैकों द्वारा दिये जाने वाले मजदूरी मे भी परिर्वन किया गया। रिजर्व बैक ने सभी बैंकों को यह निर्देश दिया कि न्यूनतम् ऋण दर सभी तरह के अग्रिमों पर 5 प्रतिशत होगी।

उपर्युक्त मुद्रा एव साख नियत्रण सम्बन्धी नीति के परिणामस्वरूप उनका तत्कालिक प्रभाव यह पडा कि बैंक साख 1957-58 तथा 1958-59 मे महत्वपूर्ण रूप से घट गये, परन्तु उसके बाद पुन बैंक साख मे विस्तार हुआ, जबकि इसके नियत्रण के अनेक उपाय किये गये।

मोटे तौर पर द्वितीय पचवर्षीय योजना मे मुद्रा पूर्ति का अत्यधिक विस्तार हुआ अर्थात् 32 प्रतिशत, जबकि प्रथम पचवर्षीय योजना मे यह केवल 10 प्रतिशत रही। यहीं पर वास्तविक उत्पादन मात्रा की वृद्धि मात्र 18 प्रतिशत रही। थोक मूल्य सूचकाक लगभग सदैव बढ़ता रहा और वार्षिक औसत वृद्धि दर लगभग 6 प्रतिशत रही।

इस योजना मे मुद्रापूर्ति के अत्यधिक विस्तार का सबसे प्रमुख कारक सरकारी क्षेत्र मे बैंक साख मे महत्वपूर्ण वृद्धि रही, जो कि बड़ी मात्रा मे घाटे की वित्त व्यवस्था से उत्पन्न हुयी। इस तरह इस योजना मे मौद्रिक नीति अपने उद्देश्य अर्थात् स्थायित्वता को प्राप्त करने मे सफल न हो

सकी। साथ ही साथ वित्तीय एव अन्य नीतियों मे मौद्रिक नीति का समन्वय न स्थापित किया जा सका। इसी तरह साख नीति जो नियंत्रित विस्तार के आधार पर अपनायी गयी, वह भी स्फीतिकारी ही रही। बैंक-दर मे मात्र आधा प्रतिशत वृद्धि किया गया और इस तरह उसका प्रभावी ढग से प्रयोग नही किया जा सका। प्रो0 बी0के0 मदान ने इस सन्दर्भ मे यह अभिव्यक्त किया है कि मौद्रिक नीति के प्रधान उपकरण के रूप मे बैंक दर भारत मे न तो बार-बार और न ही महत्वपूर्ण रूप से प्रयोग किया गया है।[7] इसी तरह यद्यपि रिजर्व बैंक के एक्ट सशोधनों के परिणामस्वरूप आरक्षित कोष तथा ऋण देने एव लेने के दरों के नियत्रण सम्बन्धी अधिकार दिये गये थे किन्तु योजनावधि मे अन्तिम वर्षों तक मे इन अधिकारों का प्रयोग नही किया जा सका था। इसी तरह इस योजना मे चयनात्मक साख नियत्रक विधि भी विशेष महत्व की नही रही। देश मे अव्यवस्थित तथा वैकल्पिक वित्त के स्रोतों के कारण तथा सामान्य साख विस्तार की स्थित मे मौद्रिक एव साख नीतियाँ प्रभावकारी सिद्ध न हो सकी।

4.2 तृतीय पंचवर्षीय योजना में मौद्रिक और साख नीति (1961-62 से 1965-66)

देश के तृतीय पचवर्षीय योजनावधि मे केन्द्रीय बैंक के मौद्रिक एव साख नीतियों के कई तरह के प्रभाव देखे जा सकते है। लगभग पूरी योजनावधि मे पूरी बैंकिग व्यवस्था को सामान्यत चुस्त बनाया गया। यह इस बात से स्पष्ट है कि साख जमा अनुपात मे वृद्धि हुई, किन्तु इस योजना के अन्तर्गत अपनायी गई मौद्रिक नीति नियोजित अर्थव्यवस्था के विकास-आवश्यकताओं के अनुरूप न थी। भारतीय रिजर्व बैंक से अत्यधिक मात्रा मे ऋण लेने की प्रक्रिया मौद्रिक नीति के उद्देश्यों एव साधनों मे विभेद उत्पन्न करने लगी। मौद्रिक नीति के अन्तर्गत 1965-66 मे भारतीय रिजर्व बैंक ने तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों मे साख उपलब्धता को सुनिश्चित किया था-रक्षा, निर्यात तथा खाद्य पदार्थ। देश की औद्योगिक व्यवस्था मे उद्योगों के विकास हेतु बैंक साख की माग मे वृद्धि हुई, जिससे व्यापारिक बैंकों ने बढ़ती हुई माग दशाओं के कारण साख पूर्ति करने की कठिनाइयों को अनुभव किया। इस योजना मे भी यह अनुभव किया गया कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप लोगों की मौद्रिक आयों मे तीव्र वृद्धि होगी, अपेक्षाकृत वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा से। इसके कारण पुन मुद्रा स्फीति के दबावों सम्बन्धी भय को सोचा गया अत मौद्रिक एव साख नीति के साथ वित्तीय नीति के सचालन

---

7. B.K. Madan, Role of Monetary & Credit Policy in developing Economy, 1961, p.33.

को इस रूप मे रखने का प्रयास किया गया कि स्फीतिकारी प्रवृतिया न बन सके। साथ ही साथ इस योजना मे इस बात पर विशेष बल दिया गया कि घाटे की वित्त व्यवस्था को न्यूनतम् मौद्रिक आवश्यकताओं के अनुरूप रखें।

इसमे यह भी प्रस्तावित किया गया है कि सरकार के बजट सम्बन्धी क्रियाये तथा साख के सृजन दोनों को साथ-साथ दृष्टिगत करते हुए उपर्युक्त सीमा को निर्धारित करना चाहिए। जहाँ तक व्यापारिक बैंकों द्वारा साख प्रदान करने की बात है इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि व्यक्तिगत क्षेत्र का उत्पादन देश के मूलभूत विकास उद्देश्यों से दूर न जा सके।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मौद्रिक एव साख नीति के सम्बन्ध मे 1960-61 के अन्त तक जो महत्वपूर्ण उपाय अपनाये गये थे, उनमे 1961-62 की मौद्रिक और साख नीति मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नही किये गये थे, केवल इस बात को छोडकर कि चयनात्मक साख नियत्रण कुछ सीमा तक सरल कर दिये गये थे और साथ ही साथ प्रत्येक बैंक के लिए आधारभूत कोटा हेतु बैंक दर पर ऋण लेने को जनवरी, 1962 मे बढ़ा दिया गया था, इसका उद्देश्य लघु उद्योगों तथा सहकारिता के वित्तीयन मे सहयोग करना था, परन्तु 1962-63 के बाद लगातार मूल्य वृद्धि के दबाव के कारण साख नीति कुछ प्राथमिक क्षेत्रों मे बढ़े हुए साख की मात्रा को छोडकर मोटे तौर पर अधिक दृढ थी। बैंक साख मे यह दृढ़ता इस कारण से और भी महत्वपूर्ण थी कि व्यक्तिगत तथा व्यापारिक क्षेत्र मे बैंक साख मे तीव्र विस्तार हो रहा था। इस तरह तृतीय पचवर्षीय योजनावधि मे मौद्रिक और साख नीति मे हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों को नीचे स्पष्ट किया जा सकता है।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे जनवरी, 1963 मे बैंक दर को 4 प्रतिशत से बढ़ा कर 4 5 प्रतिशत कर दिया गया तथा पुन सितम्बर, 1964 मे इसे बढ़ाकर 5 प्रतिशत और फरवरी, 1965 मे 6 प्रतिशत कर दिया गया। इन परिवर्तनों का उद्देश्य बढ़ते हुए बैंक साख प्रवृति पर रोक लगाना था। इसी तरह के साख नीति के सन्दर्भ मे भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को की जाने वाली पुनर्वित्तीयन की सुविधा धीरे धीरे कडी कर दी गयी। इस समयावधि मे विदेशी विनिमय-दर को बिगड़ती हुयी स्थिति के सन्दर्भ मे आयातों पर अग्रिम जमा योजना प्रारम्भ की गयी। यह योजना 1965 मे समाप्त कर दी गयी। बैंक-दर तथा पुनर्वित्तीयन की लागत के बढ़ने के कारण बैंकों के

जमा तथा उधार दरों मे वृद्धि हुई, 1963 मे अनेक बैंकों ने अपना न्यूनतम् ऋण 6 5 प्रतिशत रखा अर्थात् बैंक - दर से 2 प्रतिशत अधिक। साथ ही साथ अन्य वित्तीय सस्थाओं ने भी अपने ऋण दरों मे वृद्धि की। भारतीय रिजर्व बैंक से बैंकों द्वारा उधार लेने के लिए एक सीमा निर्धारित की गयी। व्यक्तिगत वस्तुओं विशेष कर कृषि वस्तुओं पर दी जाने वाली अग्रिम सम्बन्धी चयनात्मक साख नियत्रण उत्पादन तथा मूल्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ मे पविर्तनशील रूप मे रहा, पर अक्टूबर 1963 के बाद इसमें कड़ाई कर दी गयी। यद्यपि साख नीति को महत्वपूर्ण रूप से कड़ा कर दिया गया था, फिर भी जैसा कि सारणी 4 । मे प्रदर्शित है बैंक साख 1963-64 के व्यस्त मौसम मे बडी तेजी से बढ़े, जैसा कि यहा भी स्पष्ट है कि मन्दी के मौसम मे जो उतार हुआ, व्यस्त मौसम के विस्तार की तुलना मे बहुत कम था।

सारणी 4.1

अनुसूचित बैंकों की साख तथा जमाओं में मौसमी प्रवृत्ति

(रूपये करोड़ मे)

		अनुसूचित बैंक साख	भारतीय रिजर्व बैंक से उधार	समग्र उत्तरदायित्व जमाए
1961 - 62	मन्दी	- 76	- 32	+ 44
	व्यस्त	+ 204	+ 6	+ 157
1962 - 63	मन्दी	- 42	- 3	+ 84
	व्यस्त	+ 203	+ 22	+ 36
1963 - 64	मन्दी	- 121	- 29	+ 143
	व्यस्त	+ 376	+ 44	+ 84
1964 - 65	मन्दी	- 139	- 43	+ 211
	व्यस्त	+ 407	+ 124	+ 106
1965 - 66	मन्दी	- 93	- 123	+ 178
	व्यस्त	+ 309	+ 28	+ 214

स्रोत - Report on Currency and Finance, 1965 - 66.

इन वर्षों मे, साख विस्तार मोटे तौर पर जमाओं मे तीव्र वृद्धि थी। यहा पर यह भी महत्वपूर्ण है कि 1964-65 के व्यस्त मौसम मे बैंक साख विस्तार का वित्तीयन भारतीय रिजर्व बैंक से लिए गये उधार से था।

तृतीय पचवर्षीय योजनाओं मे मोटे तौर पर मौद्रिक नीति अत्यधिक स्फीतिकारी रही। योजनावधि मे कुल मिलाकर मुद्रापूर्ति वृद्धि लगभग 58 प्रतिशत रही, जबकि प्रथम तथा द्वितीय पचवर्षीय योजनाओं मे यह क्रमश 10 प्रतिशत और 33 प्रतिशत रही। इसी के साथ मौद्रिक विस्तार तथा अर्थव्यवस्था के वृद्धि मे अन्तराल 13 7 प्रतिशत वास्तविक राष्ट्रीय आय के रूप मे रही। ऐसी स्थिति मे जब विकास दर बहुत कम हो और कुल उत्पादन मे उतार चढाव (2 7 प्रतिशत वार्षिक औसत दर) हो, वहा आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति मे अभाव और तगी का होना स्वाभाविक है और इसके परिणामस्वरूप इस समयावधि मे मूल्यों मे और वृद्धि हुयी। इस योजना के अन्तिम तीन वर्षों मे थोक मूल्य सूचकाक बढ कर 29 प्रतिशत हो गया।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भारतीय रिजर्व बैंक का सरकार को साख, जो मोटे तौर पर घाटे की वित्तव्यवस्था को दिखाता है तथा सकल बैंक साख मे विस्तार में दो महत्वपूर्ण कारक थे, जिन से मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि हुई । तृतीय पचवर्षीय योजना मे मुद्रापूर्ति मे वृद्धि की प्रवृत्ति तथा उसके प्रभावित करने वाले कारकों का विवरण सारणी 4 2 प्रदर्शित है ।

सारणी मे यह स्पष्ट है कि विदेशी विनिमय आदेयों मे शुद्ध कमी का एक सामान्य प्रभाव विस्तार को कम करने से था । गैर मौद्रिक दायित्वों मे तीव्र विकास विशेषकर समय-जमाओं मे अन्तिम दो वर्षो मे हुई वृद्धि से मौद्रिक विस्तार प्रभावित हुआ। यद्यपि इस योजना मे घाटे की वित्त व्यवस्था को अत्यधिक न करने का प्रारूप किया गया था, परन्तु वस्तुत यह बहुत ही महत्वपूर्ण रूप से ऊँची रही (रू0 1133 करोड)। इसी के साथ-साथ विकास व्ययों को बनाये रखने के लिए, ताकि समृद्धि दर त्वरित किया जा सके, बडे पैमाने पर गैर विकासात्मक व्यय हुये और जिनके पीछे अनेक कारण रहे, जैसे, अत्यधिक रक्षा-व्यय, अतिरिक्त महगाई भत्ते का देना, मजदूरी में वृद्धि तथा

सारणी 4 2

मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि की प्रवृत्ति तथा उसे प्रभावित करने वाले कारक

(रूपये करोड़ में)

	1961-62	1962-63	1963-64	1964-65	1965-66	योग तीसरी योजना में
मुद्रा पूर्ति	177	264	442	328	449	1560
	(6 1)	(8.6)	(23 3)	(8.7)	(10.6)	(57.8)
1 सरकारी क्षेत्र को शुद्ध बैंक साख जिसमे से	157	269	281	268	448	1563
शुद्ध भारतीय रिजर्व बैंक साख	159	207	195	128	371	1060
2 निजी क्षेत्र को शुद्ध बैंक साख	-18	105	178	53	80	398
(ए) व्यक्तिगत क्षेत्र को सकल बैंक साख	140	218	259	247	286	1150
(बी) बैंको की अमौद्रिक दायित्व	103	46	42	133	186	510
3. शुद्ध विदेशी विनिमय आदेय	-57	-43	35	-19	-24	-108

कोष्ठक मे अक मुद्रा पूर्ति मे प्रतिशत वृद्धि को दर्शाता है ।
स्रोत - Report on Currency and Finanace, 1965-66.
देवी - आपदाओं यथा, सूखा (1965 - 66) आदि मे दिये गये सहायता व्ययों के कारण हुआ ।

इस पचवर्षीय योजना मे मौद्रिक तथा साख नीति के सन्दर्भ मे यह बात कही जा सकती है कि बड़े पैमाने पर घाटे की वित्त व्यवस्था ने मौद्रिक अधिकारियों के मौद्रिक विस्तार नियत्रण को समिति कर दिया था, फिर भी साख नीति स्थायित्वता को प्राप्त करने हेतु पर्याप्त रूप से सुधरी नहीं थी । साख नीति द्वारा साख नियत्रण के दबाव के बावजूद भी तथा कडे उपायों के अपनाने पर भी

सफल बैंक साख मे महत्वपूर्ण विस्तार विशेषकर, व्यक्तिगत क्षेत्र मे हुआ । कुछ सीमा तक यह स्थिति आर्थिक विकास के साथ स्थायित्वता प्राप्त करने मे ताल-मेल न हो सकने के कारण हुई । इस अवधि मे मुद्रा स्फीति के अनेक महत्वपूर्ण कारणों मे वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति मे अभाव के कारण रहा। अत साख नीति सामान्य साख विस्तार के साथ-साथ उत्पादन क्षेत्रों की वृद्धि मे विशेष उन्मुख रही और औद्योगिक उत्पादन की साख की आवश्यकता को पूरा करने मे महत्वपूर्ण रही । साथ ही साथ साख नीति का उद्देश्य प्राथमिक एव चयनित क्षेत्रों तथा कृषि लघु उद्योग, सहकारी क्षेत्र तथा निर्यात आदि की साख आवश्यकता को पूरा करना भी रही । इस तरह से इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों मे साख प्रभाव के उपर्युक्त प्रभावीकरण विधि के अभाव से व्यक्तिगत क्षेत्र में साख को नियंत्रित करना सभव न हो सका ।

इस योजना के अन्तिम वर्षो मे यद्यपि महगी मुद्रा नीति को अपनाया गया, परन्तु यह भी अधिक नहीं रही । इसका प्रधान कारण कीमतों मे तीव्र वृद्धि का होना था, जिसके द्वारा साख लागत मे वृद्धि को प्रभावहीन कर देती है । जमा वृद्धि मे तीव्र विकास विशेषकर जमाओं पर बढ़े हुए ब्याज दर के कारण बैंकों की तरलता में वृद्धि कर के साख प्रसार किया ।

4.3 वार्षिक योजनाओं में मौद्रिक एवं साख नीति (1966-67 —— 1968-69)

भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं मे तीसरी पचवर्षीय योजना के बाद तीन वार्षिक योजनाओं के समयावधि में मौद्रिक एवं साख नीति का मोटे तौर पर प्रमुख उद्देश्य साख - नियत्रणों को सरलीकृत करना तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रदत्त पुनर्वित्तीयन सुविधा का उदारीकरण करना था । इस समयावधि मे इस बात पर विशेष जोर दिया गया कि निर्धारित प्राथमिक क्षेत्रों, कृषि, लघु उद्योग तथा निर्यात के क्षेत्र मे चयनात्मक आधार पर प्रोत्साहन तथा बढ़ी हुई एव सस्ती साख सुविधा दी जाय । इस समयावधि में 1966 के अवमूल्यन के सदर्भ मे तथा 1966-67 में अच्छी कृषि उत्पाद की प्रत्याशा मे 1966 के व्यस्त काल मे साख नीति को शिथिल (लचीला) कर दिया गया था । बाद मे 1967-68 और 1968 - 69 मे कृषि उत्पाद स्तर मे अधिक वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में तथा औद्योगिक क्षेत्र में मंदी

की प्रवृत्ति के सदर्भ मे औद्योगिक उत्पादन को तीव्र करने के दृष्टिकोण से साख नीति को पुन और अधिक आसान कर दिया गया ।

वार्षिक योजना सम्बंधी उपर्युक्त मुद्रा और साख नीति के सदर्भ मे कई महत्वपूर्ण कदम लिये गये । 1968 के अन्तिम मन्दी काल मे बैंकों को अतिरिक्त 10 प्रतिशत उधार लेने की छूट दी गयी तथा बडे बैंको को यह सुझाव दिया गया कि वे अपने साख मे वृद्धि का 80 प्रतिशत उद्योग तथा निर्यात - आयात के बिलों के वित्तीयन मे लगावे । मन्दी की दशा विद्यमान होने के कारण निर्यात वृद्धि हेतु कई उपाय किये गये और जिसमे भारतीय रिजर्व बैंक से रियायती दर (4 5 प्रतिशत) पर पुनर्वित्तीयन भी सम्मिलित है । यह सुविधा मुख्य रूप से ईंजिनियरिंग तथा सम्बंधित उत्पादों पर विशेष रूप से दिया गया था । इसी के साथ - साथ नवम्बर, 1967 मे राज्य सरकारों तथा भारतीय खाद्य निगम को खाद्यानों की प्राप्ति, वितरण, भण्डारण, रसायनिक उर्वरक, तथा कीट - नाशक के वितरण हेतु पुनर्वित्तीयन मे बैंक-दर पर सुविधा दी गयी । साथ ही साथ कुछ विशिष्ट बैंकों को औचित्य पूर्ण आवश्यकताओं के संदर्भ में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विवेकपूर्ण व्यवस्था की गयी । जनवरी, 1968 के बाद से रियायती दर (4 5 प्रतिशत) को व्यापारिक बैंको के पुनर्वित्तीयन में उनके कुल अग्रिमों में वृद्धि, जो प्राथमिक क्षेत्रों से सम्बन्धित थी, के संदर्भ मे कर दिया गया । प्राथमिक क्षेत्रों को और अधिक सहयोग हेतु कृषि की परिभाषा को और अधिक विस्तृत करके उसके मध्य कालीन साख को विनियोग और उत्पादन उद्देश्यों हेतु किया गया । इस सम्यावधि मे पिछले वर्षो की तुलना मे बैंक दर को मार्च, 1968 में 6 प्रतिशत से घटा करके 5 प्रतिशत कर दिया गया था । व्यापारिक बैंको के अग्रिमों पर निर्धारित अधिकतम् दर को भी घटा कर के 10 प्रतिशत से 9.5 प्रतिशत कर दिया गया और इस बात पर जोर दिया गया था कि इस आधे प्रतिशत की कमी को 80 प्रतिशत बैंक अग्रिमों मे प्रदान किया जायेगा । इसी के साथ - साथ भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा भी इसके उदारीकरण के अलावा साख लागत को कम कर दिया गया था। 1968-69 की समयावधि मे खाद्यानों, तिलहनों तथा कपास के सन्दर्भ मे चयनात्मक साख नियत्रण को सामान्यतया उदार कर दिया गया था ओर इसका प्रमुख कारण इसकी दशाओं मे सुधार का होना था । वार्षिक

योजनाओं की समयावधि मे एक महत्वपूर्ण विकास बैंकों के ऊपर 'सामाजिक नियंत्रण' की नीति को प्रारम्भ करने से है । प्राथमिक क्षेत्रों मे साख प्रवाह के बढ़ाने के उद्देश्य से तथा साख प्रवाह मे समानता तथा उचित वितरण के दृष्टिकोण से 'राष्ट्रीय साख परिषद' की स्थापना की गयी । इसी तरह कुल संसाधनों के अनुकूलतम और कुशल प्रयोग हेतु व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के [illegible] इन तीन वर्षों में साख के उदारीकरण नीति के परिणाम स्वरूप बैंकों के बैंक - साख में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई । इस स्थिति को सारणी 4 3 मे प्रदर्शित किया गया है ।

सारणी 4.3

अनुसूचित व्यापारिक बैंकों के साख में मौसमी उतार - चढ़ाव

(रूपये करोड़ में)

		1966-67		1967-68		1968-69	
		मन्दी	व्यस्त	मन्दी	व्यस्त	मन्दी	व्यस्त
1.	बैंक साख	-66	+426	-101	+509	-43	+ 427
2	भारतीय रिजर्व बैंक से उधार	-30	+ 41	-36	+105	-82	+ 70
3	समग्र जमाए	+265	+169	+194	+219	+239	+325

स्रोत Report on Currency and Finance, Various Issues.

बैंक साख मे यह वृद्धि अशत 1967-68 तथा 1968-69 मे अच्छी फसल के कारण हुई तथा बाद के वर्षो मे औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि के कारण भी हुई । इसके साथ ही प्राथमिक क्षेत्रों मे भारतीय रिजर्व बैंक की नीतियों के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण साख वृद्धि हुई । उदाहरण के लिए 1968 मे कृषि क्षेत्र मे साख रू0 45 करोड से बढ़कर 1969 मे रू0 188 करोड़ हो गया तथा इन्ही वर्षो मे लघु उद्योगों के लिए यह साख रू0 194 करोड से बढ़कर रू0 294 करोड़ तथा निर्यात के क्षेत्र मे यह साख रू0 174 करोड़ से बढ़कर रू0 255 करोड़ हो गया । मोटे तौर पर तीन वार्षिक योजनाओं की समयावधि ऐसे मौद्रिक एव साख उपायों से सम्बन्धित है, जो सरलीकृत एवं उदारीकृत प्रवृत्तियों से सम्बंधित है तथा तुलनात्मक रूप मे मौद्रिक विस्तार के नीचे दर से सम्बन्धित है । मुद्रा पूर्ति तथा इसके महत्वपूर्ण अवयवों के वृद्धि - प्रवृत्ति को सारणी 4 4 मे प्रदर्शित की जा सकती है-

सारणी 4.4

मुद्रा पूर्ति में वृद्धि की प्रवृत्ति एवं महत्वपूर्ण घटक

(रूपये करोड़ में)

		वर्ष भर मे बढ़ोत्तरी		
		1966-67	1967-68	1968-69
	मुद्रा पूति	421 (+9 3)	400 (+8 1)	429 (+8 0)
1	सरकारी क्षेत्र को शुद्ध बैंक साख, जिसमें से	199	296	444
	सरकारी क्षेत्र को भारतीय रिजर्व बैंक का साख	120	168	347
2	(अ) व्यापारिक बैंक को सकल बैंक साख	487	421	502
	(ब) व्यापारिक क्षेत्र को शुद्ध बैंक साख	198	181	89
	(स) बैंको के गैर मौद्रिक दायित्व	262	244	917
3	बैंक क्षेत्र के शुद्ध विदेशी विनिमय आदेय	78	13	164

स्रोत- - Report on Currency and Finance, Various Issues.

मुद्रापूर्ति मे कम वृद्धि का प्रधान कारण विकास परिव्ययों के घटने तथा कम मात्रा मे घाटे की वित्त व्यवस्था का होना था, जैसा कि सरकारी क्षेत्र मे रिजर्व बैंक के शुद्ध साख की स्थिति से स्पष्ट है । यद्यपि व्यक्तिगत क्षेत्र में बैंक साख मे वृद्धि महत्वपूर्ण रूप से ऊँची थी, पर यह काफी हद तक बैंकों के गैर मौद्रिक दायित्वों मे वृद्धि से समायोजित हो गयी । सुधरी हुई भुगतान सन्तुलन की स्थिति के कारण विदेशी विनिमय आदेयों द्वारा भी मुद्रा पूर्ति मे थोड़ी वृद्धि हुई । थोक मूल्यों में वृद्धि 1966-69 समयावधि मे 25.7 प्रतिशत रही और इसमे भी 1966-67 में यह वृद्धि सर्वाधिक 16 प्रतिशत रही ।

4.4. चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में मौद्रिक एवं साख नीति (1969-70 --- 1974-75)

तृतीय पचवर्षीय योजना के मध्य से स्फीतिकारी दबावों के प्रारम्भ हो जाने के परिणामस्वरूप चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे आर्थिक विकास को स्थायित्वता को प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया । इस पचवर्षीय योजना में मौद्रिक तथा साख नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से समग्र माग एवं पूर्ति मे संतुलन कायम करना, नयी उभरती हुई स्थिति के संदर्भ में घाटे की वित्त व्यवस्था की मात्रा को निर्धारित करना तथा बड़े बैंको के राष्ट्रीयकरण (जुलाई, 1969) के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के नियोजन के वित्तीयन के लिए अधिक ससाधन उपलब्ध कराना, प्राथमिक क्षेत्रों और विशेषकर उपेक्षित क्षेत्रों, कृषि, छोटे उद्योग आदि में साख प्रवाह निर्धारित करना तथा विकास के साथ-साथ निर्यातों एवं उद्योगों की आवश्यकता के लिए साख की पूर्ति करना था ।

इस समयावधि मे भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति का प्रमुख लक्ष्य व्यापारिक क्षेत्र, प्राथमिक क्षेत्र एवं उपेक्षित क्षेत्रों मे सगत हेतु साख को नियमित रखना था । इस दिशा मे अनेक मौद्रिक एव साख उपकरणों को अपनाया गया, यथा बैंक दर मे वृद्धि वैधानिक तरलता एवं शुद्ध तरलता अनुपात मे परिवर्तन और नकद आरक्षित अनुपातों में परितर्वन, व्यापारिक बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दी गयी पुनर्वित्तीयन सुविधाओं को सीमित करना, अग्रिमों तथा जमाओं में ब्याज दर में परिवर्तन करना तथा चयनात्मक साख नियत्रण उपायों में सुधार करना था । इस समयावधि मे प्रमुख

साख एव वित्तीय उपायों का विवरण इस तरह से व्यक्त किया जा सकता है। बैंक दर को 5 प्रतिशत से बढ़ाकर जनवरी, 1971 मे 6 प्रतिशत तथा पुन मई, 1973 मे 7 प्रतिशत कर दिया गया । 1970 मे सवैधानिक तरलता अनुपात को दो बार 25 प्रतिशत से बढ़ाकर क्रमश 27 तथा 28 प्रतिशत कर दिया गया और पुन अगस्त, 1972 मे इसे 30 प्रतिशत तथा 1973 में 32 प्रतिशत कर दिया गया । इसी के साथ-साथ आवश्यक शुद्ध तरलता अनुपात को भी 30 प्रतिशत से बढ़ाकर 1970 मे 32 प्रतिशत, 1971 मे 34 प्रतिशत तथा 1972 मे 36 प्रतिशत कर दिया गया । इसे पुन मार्च, 1973 मे 37 प्रतिशत तथा जून,1973 मे 39 प्रतिशत तथा सितम्बर, 1973 में 40 प्रतिशत कर दिया गया । 1973 - 74 के दो मन्दी काल मे नकद आरक्षित अनुपात को भी क्रमश बढ़ाकर 3 प्रतिशत एवं 7 प्रतिशत कर दिया गया । भारतीय रिजर्व बैंक से प्राप्त पुनर्वित्तीयन की सुविधा को क्रमश अधिक कठोर कर दिया गया, जिससे इसे नियत्रित किया जा सके । बैंको के अग्रिमों पर ब्याज दरों को क्रमश बढ़ा दिया गया । न्यूनतम् उधार देय ब्याजदर को जून, 1973 मे 10 प्रतिशत कर दिया गया । पुन इसे बढ़ाकर दिसम्बर, 1973 मे 11 प्रतिशत कर दिया गया । चूँकि इस समयावधि में मुद्रा एव साख नियंत्रण को अनेक विधिया व्यापारिक क्षेत्र में साख प्रसार को रोकने मे असमर्थ रहीं । अत 1973-74 के व्यस्त काल में परिमाणात्मक साख विधियों को अपनाया गया । यह अनुमान किया गया कि 1973-74 के बीच कुल बैंक साख रू0 400-450 करोड़ से अधिक नहीं होगा । अत निर्यात साख को परिमाणात्मक विधियों से मुक्त रखा गया । कुछ महत्वपूर्ण कृषि वस्तुओं यथा, खाद्यान्न तिलहन, कपास, चीनी, वनस्पति तथा जूट एव सूती वस्त्रों पर दिये जाने वाले अग्रिमों मे चयनात्मक साख नियत्रण विधियों मे समय-समय पर परिवर्तन किया गया । 1972-73 के व्यस्त काल मे खाद्यान्नों, तिलहनों के सदर्भ मे अग्रिमों हेतु साख नियंत्रण को कठोर कर दिया गया । पुन 1973-74 के व्यस्त काल में न्यूनतम् उधार ऋण को कुछ महत्वपूर्ण वस्तुओं के संदर्भ मे एक प्रतिशत बढ़ा दिया गया ।

न्यूनतम शुद्ध तरलता अनुपात मे हुए परिवर्तनों तथा भारतीय रिजर्व बैंक से लिये गये ऋणों पर ब्याज दरों को सारणी 4 5 मे व्यक्त किया जा सकता है ।

सारणी 4.5

शुद्ध तरलता अनुपात में परिवर्तन तथा उस पर ब्याज की दर

शुद्ध तरलता अनुपात	भारतीय रिजर्व बैंक से लिये गये उधार पर ब्याज की दर (प्रति वर्ष प्रतिशत)
39 और इससे अधिक	9
38 और इससे अधिक लेकिन 39 से कम	10
37 और इससे अधिक लेकिन 38 से कम	11
36 और इससे अधिक लेकिन 37 से कम	12
35 और इससे अधिक लेकिन 36 से कम	13
34 और इससे अधिक लेकिन 35 से कम	14
33 और इससे अधिक लेकिन 34 से कम	15
32 और इससे अधिक लेकिन 33 से कम	16
31 और इससे अधिक लेकिन 32 से कम	17
31 से कम	18

स्रोत :- C.R. Basu, Central Banking in a Planned Economy, 1978.

इस समयावधि मे मौद्रिक एवं साख नीति सम्बंधी उपर्युक्त उपायों को लेने का अभिप्राय यह था कि चयनात्मक आधार पर साख प्रवाह को विनियोग, उत्पादन वृद्धि तथा बेहतर आवश्यक वस्तुओं के वितरण को बनाये रखा जाए । मौद्रिक विस्तार के नियन्त्रण सम्बंधी लागू की गयी नीति का यह उद्देश्य था कि जमा वृद्धि दर पर इसका कुछ प्रभाव पड़े । तरलता आवश्यकताओं को ध्यान

मे रखते हुये बैंकों को अपने साख प्रवाह को इस रूप से नियोजित करना है कि वह पूर्वत चयनात्मक आधार पर हो और प्राथमिक क्षेत्रों के लिए हो और यथासम्भव अपने संसाधनों पर आधारित हो । इस बात पर प्रधान दृष्टि रखी जायेगी कि कृषि उत्पादन में वृद्धि हो और खाद्यान्नों के सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दृढ़ किया जा सके । साथ ही साथ निर्यात क्षेत्र के विशेष मांगों को ऊँची प्राथमिकता जारी रहेगी । सक्षेप मे मुद्रा स्फीति के दबावों को अर्थव्यवस्था मे बने रहने से सामान्य रूप से मौद्रिक नीति को इसे नियंत्रित करने का प्रधान उद्देश्य बनाया गया । साख प्रसार को सीमित करके बैंको के निजी ससाधनों पर आधारित किया गया । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रदत्त सहायता को मोटे तौर पर नाममात्र के लिए तथा अस्थायी रखा गया । उपर्युक्त मौद्रिक एवं वित्तीय नीति सम्बधी उठाये गये कदमों के बावजूद भी व्यापारिक क्षेत्र मे साख की वृद्धि महत्वपूर्ण रही, विशेषकर 1972-73 तथा 1973-74 मे । 1972-73 तथा 1973-74 के व्यस्त काल मे बैंक साख मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई और बाद के वर्षो मे साख विस्तार अपने सर्वोच्च सीमा तक पहुच गया, यह साख विस्तार परिमाणात्मक साख विस्तार की नियत्रणात्मक सीमा के बाद भी हुआ, जो भारत के मौद्रिक इतिहास में पहली बार हुआ । इस समयावधि मे व्यापारिक क्षेत्र मे व्यापारिक क्षेत्र में अनुसूचित व्यापारिक बैंको के साख मे मौसमी परिवर्तन को सारणी 4 6 मे प्रदर्शित किया जा सकता है ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के समयावधि मे मुद्रापूर्ति बढ़कर 88 प्रतिशत हो गई, जो इसी समयावधि में वास्तविक उत्पादन वृद्धि 18.9 से बहुत अधिक ऊँची थी । मुद्रा पूर्ति मे तथा वास्तविक उत्पादन मे अन्तराल विशेष कर 1971-72 तथा 1972-73 में बहुत बढ़ गया । इससे न केवल समग्र माग एवं पूर्ति असतुलन बढ़ गया, अपितु मुद्रा - स्फीति दबावों के कारणों में यह महत्वपूर्ण कारण रहा । किन्तु विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि पूरे योजना के समयावधि मे थोक कीमतों के वार्षिक औसत वृद्धि दर मुद्रापूर्ति तथा वास्तविक आय के वास्तविक औसत आय के काफी सन्निकट था। इस स्थिति को सारणी 4 7 मे प्रदर्शित किया जा सकता है ।

अनुसूचित वाणिज्य बैंक द्वारा वाणिज्य क्षेत्र को निर्गत साख मे उतार - चढ़ाव

(रूपये करोड मे)

	मन्दी 1969	व्यस्त 1969-70	मन्दी 1970	व्यस्त 1970-71	मन्दी 1971	व्यस्त 1971-72	मन्दी 1972	व्यस्त 1972-73	मन्दी 1973	व्यस्त 1973-74
1. सकल बैंक साख बिल सहित (छूट के बाद)	31	563	226	394	163	352	57	916	361	1355
(अ) खाद्य	-	-	34	70	156	-71	-1	6	-57	188
(ब)अखाद्य पदार्थ	31	563	192	324	7	423	58	910	418	1167
2. समग्र जमा	348	324	449	436	624	624	705	811	899	677
3 साख जमा अनुपात मौसम के अत मे (पुनर्छूट बिल को छोडकर)	72 4	79 4	77 0	78 0	73 1	71 7	66 2	70 3	67 4	73 7

स्रोत - Report on Currency and Finance Varuous Issues.

सारणी 4.7

मुद्रा पूर्ति, राष्ट्रीय आय तथा थोक मूल्य सूचकांक में वार्षिक उतार - चढ़ाव

वर्ष	प्रतिशत वृद्धि		
	मुद्रापूर्ति	राष्ट्रीय आय (1960-61 के मूल्य आधार पर)	थोंक मूल्य सूचकांक (1970-71 = 100)
1969-70	10 5	6 4	3 7
1970-71	11 8	6.0	5.5
1971-72	14 0	1 1	5.6
1972-73	15.7	1 3	10.0
1973-74	15.2	5 7	20 2
1969-74 (वार्षिक औसत)	13 4	3 5	8 9

स्रोत - Report on Currency and Finance Various Issues.

इसके बावजूद कि चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे इस बात पर जोर दिया गया था कि घाटे की वित्त को उभरती हुई आर्थिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ मे निर्धारित किया जायेगा, पर वास्तविकता यह रही कि पाकिस्तान युद्ध तथा बगला देश शरणार्थियों के परिणामस्वरूप रक्षा व्यय मे वृद्धि के कारण यह काफी ऊँची हो गई । ऐसी परिस्थिति मे साख नीति की प्रभावकारिता सामान्यतया सीमित हो गयी । मूलत सरकार के वित्तीय क्रियान्वयन एव व्यापारिक क्षेत्रों से सम्बन्धित साख नीति मे उपयुक्त

समन्वय के अभाव मे इस समयावधि मे मुद्रा पूर्ति मे वृद्दि के परिणामस्वरूप लोगों की माग तथा वस्तुओं के मूल्य मे वृद्धि हुई । इस समयावधि मे प्राथमिक क्षेत्रों मे साख की मात्रा जून, 1969 में रू0 774 करोड़ से बढ़कर दिसम्बर, 1973 मे रू0 2466 करोड हो गयी अर्थात् पूरी समयावधि में कुल प्रदत्त साख 22.3 प्रतिशत से बढ़कर 36 7 प्रतिशत हो गयी ।

चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्षो मे मौद्रिक स्थिति मे एक महत्वपूर्ण बात यह रही है कि बैंक साख मे वृद्धि वास्तविक उत्पादन वृद्धि से काफी अधिक हो गयी । उदाहरण के लिए बृहद एव मध्यम उद्योगों मे साख वृद्धि 1972-73 में 13 प्रतिशत से बढ़कर 1973-74 में 30 प्रतिशत हो गयी । जबकि औद्योगिक उत्पादन 1972-73 मे 4 प्रतिशत तथा 1973-74 मे मात्र 2 प्रतिशत ही रहा । इस समयावधि मे एक महत्वपूर्ण कारक जो साख नियत्रण उपकरणों की प्रभावकारिता को न केवल सीमित किया, अपितु बैंकिग व्यवस्था का संचालन इस तरह किया कि उद्योग एव व्यापार हेतु विस्तृत स्तर पर साख प्रदत्त किया जाय, वह उधार देय ससाधनों से सम्बन्धित था । इस योजना के प्रारम्भिक समय मे बैंक के राष्ट्रीयकरण क साथ - साथ बैंक क्षेत्रों में तीव्रगति से बैंक शाखाओं के विस्तार के परिणामस्वरूप बैंक जमाओं की वृद्दि दर बहुत तीव्र गति से बढ़ी । ऐसी परिस्थिति मे मौद्रिक अधिकारियों द्वारा अपनाये गये उपाय महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो सके। चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे देश मे गैर-लेखा जोखा वित्त के साथ स्फीतिकारी दशाएं विकसित हुयी और इनका पुन प्रभाव मौद्रिक एव साख नीतियों के प्रभावकारिता पर पड़ा ।

4.5 पंचम पंचवर्षीय योजना में मौद्रिक एवं साख नीति (1974-75 --- 1979-80)

पाचवी पचवर्षीय योजना के ड्राफ्ट मे गैर स्फीतिकारी विकास को प्राप्त करने पर विशेष जोर दिया गया, क्योंकि इस योजना के पूर्व स्फीतिकारी प्रवृत्ति बहुत अधिक प्रबल हो चुकी थी । इसमे यह प्रस्ताव किया गया कि योजनाकाल के प्रथम दो वर्षो मे कोई भी घाटे की वित्त व्यवस्था नहीं की जायेगी और बाद के वर्षो मे घाटे की वित्त व्यवस्था को उस न्यूनतम् स्तर पर किया जायेगा, जिससे

मुद्रा पूर्ति बढ़कर के स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न न कर सके । [8] इस योजना मे इस बात पर भी बल दिया गया कि वित्तीय एव मौद्रिक नीतियों मे उद्देश्य प्राप्ति हेतु समन्वित सगति होनी चाहिए । इस योजना में इस बात पर पुन बल दिया गया कि सरकार के मौद्रिक एव वित्तीय नीतियों मे अधिक से अधिक निकटतम् सगति उत्पन्न की जाये । [9] इस बात को भी स्पष्ट किया गया कि विनियोग व्ययों के नियोजन के साथ उसी तरह से साख नियोजन भी होना चाहिए, जिससे इसका नियत्रण अधिक सफलता पूर्वक उद्देश्य के अनुसार किया जा सके और जो बढ़ते हुऐ उत्पादन की आवश्यकता के अनुरूप हो ।

पाचवी पचवर्षीय योजना का प्रारम्भ इस विशेष बात से आरम्भ होता है कि 1974-75 मे मुद्रा स्फीतिदर अत्यधिक ऊँची रही । जुलाई, 1974 मे केन्द्रीय सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गैर स्फीतिकारी नीति उपायों को बड़े विस्तृत एव कड़ाई के साथ प्रारम्भ किया गया । इस तरह इस समयावधि मे भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक एव साख नीति सम्बधी महत्वपूर्ण नीतियों को निम्न रूप मे स्पष्ट किया जा सकता है ।

इस योजना मे मुद्रा प्रसार और स्फीतिकारी प्रवृत्तियों पर नियत्रण पाने हेतु बैंक दर को महत्वपूर्ण ढग से 7 प्रतिशत से बढ़ाकर के 9 प्रतिशत कर दिया गया । इसी के साथ-साथ व्यापारिक बैंको के अग्रिमों सम्बधी न्यूनतम् ऋण दरों को भी 11 प्रतिशत से बढ़ा कर 12 5 प्रतिशत कर दिया गया और अधिकतम् ऋण दरों को 9 प्रतिशत से 10 5 प्रतिशत कर दिया गया । उपभोग प्रवृत्ति को नियंत्रित करने तथा घरेलू बचतों की उगाही हेतु सावधि जमाओं तथा बैंक बचतों पर जमा दर मे परिवर्तन 0 5 प्रतिशत से 2 प्रतिशत के रूप मे किया गया । इसी क्रम मे भारतीय रिजर्व बैंक से बैंको द्वारा लिए जाने वाले उधार के अधिकतम् दर को बढ़ा कर 15 प्रतिशत से 18 प्रतिशत कर

---

8. Planing Commission, Draft of Vth Five Year **Plan, Part-I**, 1974-79, p. 53.
9. Planning Commission, Draft of Vth Five Year Plan, Part 1, 1974-79, p. 16.

दिया गया । इस योजना मे विस्तृत निर्धारित प्राथमिकताओं के आधार पर नियोजित साख प्रयोग पर बल दिया गया । साथ-साथ बैंक साख मे अत्यधिक वृद्धि को रोकने तथा उसके उपयुक्त प्रयोग हेतु व्यक्तिगत रूप से बैंको द्वारा साख बजट पर नियंत्रण किया गया । इस समयावधि मे टण्डन समिति की रिपोर्ट और प्रस्तावों के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक ने 1974 मे व्यापारिक बैंको के साख वितरण सम्बधी महत्वपूर्ण निर्देश निर्गत किये ।

मौद्रिक एव साख सम्बंधी उपर्युक्त उपायों के परिणामस्वरूप 1974-75 की समयावधि मे मुद्रा पूर्ति तथा अन्य मौद्रिक कारकों में कमी होने के साथ - साथ थोक कीमतों का सूचकाक 1974-75 में गिरकर 7.1 प्रतिशत हो गया । 1975-76 की मौद्रिक एव साख नीति मोटे तौर पर 1974-75 में अपनायी गयी नीति को ही कुछ परिवर्तनों के साथ अपनायी गयी। इस सन्दर्भ मे भारतीय रिजर्व बैंक मे मौद्रिक एव साख नीति सम्बधी पूरे वर्ष के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपायों की घोषणा की ।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा उद्घोषित उपायों मे कहा गया कि सामान्य तथा चयनात्मक साख उपाय अधिक लचीले ढंग से प्रयोग किये जायेंगे । शुद्ध तरलता अनुपात की व्यवस्था, जो पिछले दस वर्षो से चली आ रही थी, उसे समाप्त कर दिया गया । अर्थव्यवस्था मे विनियोग को प्रोत्साहित करने की दृष्टिकोण से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों को सलाह दिया कि चयनित प्राथमिक क्षेत्रों में वित्तीयन हेतु, वे मध्यकालीन वित्त प्रदान करने को प्राथमिकता दे ।

वर्ष 1976-77 की समयावधि मे भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एब साख नीति सम्बधी परिवर्तनों का भी उल्लेख किया जा सकता है । इस समयावधि मे वैधानिक नकद अवशेष अनुपात को 1976 मे 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया और पुन उसी वर्ष 6 प्रतिशत कर दिया गया । जनवरी, 1977 में बैंकों के लिए यह पुन आवश्यक हो गया कि वे अपने बढ़े हुए मांग एवं समय जमाओं के 10 प्रतिशत भाग को भारतीय रिजर्व बैंक मे जमा कर दें । बैंकों को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा यह भी सुझाव दिया कि वे सीमित ससाधनों के आधार पर विवेकपूर्ण साख की मात्रा, दिशा तथा ब्याजदर को निश्चित करे, परन्तु इसके बावजूद भी वित्तीय वर्ष 1976-77 मे व्यापारिक क्षेत्रों

मे समग्र बैंक साख बढ़कर के रू0 2276 करोड़ हो गयी, जो 1975-76 मे रू0 2108 करोड़ थी । इस तरह व्यापारिक क्षेत्रों मे बैंक साख मे उल्लेखनीय वृद्धि, मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक रही और मुद्रा पूर्ति 1976-77 मे बढ़कर 18.8 प्रतिशत हो गयी । व्यापारिक क्षेत्रों को प्रदत्त समग्र बैंक साख के वितरण को सारणी 4.8 मे प्रदर्शित किया जा सकता है। इस सारणी से यह स्पष्ट हे कि कुल साख वृद्धि का लगभग 1/3 भाग वर्ष 1974 से 1977 के बीच खाद्यान्न प्राप्ति क्रियाकलापों से सम्बन्धित था । इस तरह प्राथमिक क्षेत्रों यथा कृषि, लघु उद्योग आदि मे समग्र साख का प्रसार 30 प्रतिशत से अधिक रहा ।

मुद्रापूर्ति विस्तार मे एक नया कारक जो वर्ष 1975-76 से विराजमान रहा, वह विदेशी विनियम आदेयों मे तीव्र वृद्धि का होना था, इसमे 1975-76 मे वृद्धि रू0 711 करोड़ हुआ जो 1974-75 मे केवल रू0 238 करोड़ था । मुद्रापूर्ति मे वृद्धि वस्तुत इससे भी अधिक होती । किन्तु तुलनात्मक रूप से बैंकिग क्षेत्र के गैर मौद्रिक दायित्वों मे तीव्र वृद्धि हुई । इस समयावधि मे भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जो साख नीति अपनायी गई, वह प्रथम दो वर्षो मे नियत्रणात्मक प्रवृत्ति के साथ सफल रही । इसी के साथ कुछ वृद्धि मूल्यों मे अत्यधिक वृद्धि होने के कारण हुई, जो सुस्ती की दशाओं के कारण अर्थव्यवस्था मे उत्पन्न हुई और जिसके लिए खाद्य पदार्थो में साख की पूर्ति की गयी । वर्ष 1975-76 मे गैर-खाद्य साख लगभग 14 4 प्रतिशत रहा । वस्तुत उद्योग एव व्यापारिक क्षेत्र दृढ़ साख नीति से ग्रस्त थी ।

वर्ष 1976-77 मे साख नीति ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्णतया व्यवस्थित रूप मे नहीं थी, जैसा कि कुल उत्पाद मे वृद्धि तथा मूल्यों मे वृद्धि के दबाव के कारण आवश्यक थी । भारतीय रिजर्व बैंक के वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार साख मे वृद्धि के अलावा जो खाद्य पदार्थो के उगाही तथा प्राथमिक क्षेत्रों से सम्बन्धित थी, साख मे वृद्धि का एक बहुत बड़ा भाग बढ़ते हुए औद्योगिक इकाइयों के वित्तीयन हेतु यथा रूग्ण औद्योगिक इकाइयों के वित्तीयन हेतु था ।[10] इस समयावधि मे साख नीति

---

10. Reserve Bank of India, Annual Report, 1876-77, p.12.

सारणी 4.8

सकल बैंक साख का क्षेत्रीय वितरण

(रूपये करोड़ में)

		वर्ष भर मे उतार - चढ़ाव		
		अप्रैल अत 1974 से अप्रैल अत 1975	अप्रैल अत 1975 से अप्रैल अंत 1976	अप्रैल अत 1976 से अप्रैल अंत 1977
1	खाद्यान्न साख	+140 (14 6)	+1047 (42 9)	+669 (29 4)
2	प्राथमिकता वालेक्षेत्र इस क्षेत्र को निर्यात साख सहित)	+348 (36 4)	+688 (23 2)	+774 (34 0)
	(अ) लघु उद्योग	+116	+172	+215
	(ब) कृषि	+186	+282	+277
	(स) अन्य प्राथमिकता वाले क्षेत्र	+ 46	+234	+282
3	अन्य सभी क्षेत्र (इन क्षेत्रों को निर्यात साख सहित)	+469 (49 0)	+703 (28 8)	+833 (36.6)
4.	खाद्येत्तर साख	+817 (85 4)	+1391 (57 1)	+1607 (70.6)
	जिसमे से			
	निर्यात साख	- 85	+275 (11 3)	+219 (9.6)
5	सकल बैंक साख	+957	+2438	+2276

स्रोत :- (i) Reserve Bank of India, Annual Report, 1976-77.
(ii) Report on Currency and Finance, 1976-77.

मे एक महत्वपूर्ण विकास क्षेत्रीय साख बटवारे से सम्बन्धित था, जिससे अधिक आर्थिक और तार्किक रूप से बैंक संसाधनों का प्रयोग हो सके । इस समयावधि मे चयनात्मक साख नीति भी लागू रहे, जो संवेदनशील वस्तुओं के सम्बध मे साख - नियत्रण से सम्बंधित थे ।

जहा तक वर्ष 1977-78 मे साख नीति का प्रश्न है, वह भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अप्रत्याशित मुद्रा पूर्ति वृद्धि के सदर्भ मे तैयार की गयी थी तथा साथ ही साथ अत्यधिक मूल्य स्तर के वृद्धि के सदर्भ मे भी । इसमे इस बात पर विशेष जोर दिया गया कि मौद्रिक एव साख नीति को मौद्रिक विस्तार से जहा तक सम्भव हो रोका जाय । इसका उद्देश्य विनियोग को प्रोत्साहित करने, उत्पादन तथा निर्यात मे वृद्धि करने तथा आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं एव औद्योगिक कच्चा माल की पूर्ति करने से था । बैंकिग व्यवस्था और अत्यधिक तरलता को नियंत्रित करने तथा बैंक साख विस्तार को रोकने के सम्बध मे इस समयावधि मे अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये।ये निम्नलिखित है -

पहला, बैंकों को यह सलाह दिया गया कि प्रत्येक बैंक साख नियोजन करें और साख वितरण पद्धति को राष्ट्रीय प्राथमिकता के उद्देश्य के समकक्ष ले आयें । उन्हे यह सलाह दिया गया कि प्राथमिक क्षेत्रों, समाज के गरीब तबके तथा खास तौर से गरीबी रेखा के नीचे के जीवन यापन करने वालों के लिये अधिक साख निर्धारित करे ।

दूसरा, मौद्रिक नीति का एक बहुत बड़ा अश, जो बैकों के ब्याज दर सरचना के विवेकीकरण से सम्बंधित है, उसे अपनाया गया । समय जमाओं पर ब्याज दर को 5 प्रतिशत से घटा कर के 3 प्रतिशत कर दिया गया । व्यापारिक बैंकों के सभी सगठित जमाओं पर ब्याज दर 5.5 प्रतिशत से बढ़ाकर के 6 प्रतिशत कर दिया गया।

तीसरे, दीर्घकालीन पूर्जी निवेशों को प्रोत्साहित करने की दृष्टिकोण से सावधि ऋणों पर ब्याज की सीमा, जो 3 वर्ष से कम हो,वह 14-15 प्रतिशत से घटा करके 12.5 प्रतिशत कर दिया गया । तेल तथा तिलहनों के लगातार बढ़ते हुए मूल्य दबाव के सदर्भ में बैंक सीमा को बढ़ा कर

के 10 प्रतिशत कर दिया गया ।

चौथे, जनवरी, 1977 से वर्धमान नकदी आरक्षित अनुपात को 10 प्रतिशत कर दिया गया।

वर्ष 1977 मे भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंको को यह सलाह दिया कि कृषि तथा तघु उद्योगों के क्षेत्र मे साख को आवटित करे प्रत्यक्ष व्यक्तिगत ऋण रू0 2500 जो लघु कृषकों से सम्बन्धित था, उसे 11 प्रतिशत के ब्याज दर पर उपलब्ध कराया गया और ऐसे ऋणों को 50 प्रतिशत भाग पुनर्वित्तीय के दृष्टिकोण से बैंक - दर पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया गया । सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को पुन सलाह दिया गया कि उपेक्षित क्षेत्रों के समग्र साख का 33 प्रतिशत 1979 तक कर दिया जाना चाहिए ।

व्यापारिक क्षेत्रों में बैंक साख मे निम्न वृद्धि के कारण मौद्रिक विस्तार की दर में कमी हुई, फिर भी 1977-78 मे मुद्रा पूर्ति मे जो 15 4 प्रतिशत वृद्धि हुई, वह राष्ट्रीय आय मे 5 प्रतिशत की तुलना में अधिक थी । इससे भी अधिक पिछले वर्ष मुद्रा पूर्ति में अप्रत्याशित वृद्धि 18.5 प्रतिशत से हुयी । इस समयावधि मे मौद्रिक विस्तार के लिए दो प्रमुख कारक रहे । प्रथम, सरकारी क्षेत्र में शुद्ध बैंक साख मे महत्वपूर्ण वृद्धि, जो पिछले वर्ष रू0 908 करोड़ की तुलना में बढ़कर रू0 1942 करोड़ हो गयी और दूसरा, लगातार तथा बड़े पैमाने पर विदेशी विनियम आदेशों में वृद्धि जो 1976-77 मे रू0 1463 करोड़ थी वह बढ़कर रू0 1990 करोड़ हो गयी । इस समयावधि मे एक महत्वपूर्ण बात यह रही कि समय जमाओं मे वृद्धि दर कम रही, जो 1976-77 मे 27.7 प्रतिशत से गिरकर 1977-78 में 22 9 प्रतिशत हो गयी ।

1977 मे केन्द्र में नई सरकार का गठन हुआ, जिसने पाचवीं योजना को एक वर्ष पूर्व ही 1977-78 मे समाप्त कर दिया और छठीं योजना का प्रारूप प्रस्तुत किया, जो 1983-84 तक चलती, किन्तु 1980 मे केन्द्र मे सत्ता परिवर्तन हो गया और उसने उपयुर्क्त छठीं योजना को समाप्त करके नई छठीं योजना को प्रस्तुत किया ।

4 6 छठी पचवर्षीय योजना मे मौद्रिक एव साख नीति (1979-80 -- 1984-85)

मार्च, 1979 के पश्चात अत्यधिक स्फीतिकारी दबावो के विद्यमान रहने तथा इसके पूर्व पेट्रोलियम आदि उत्पादो की कीमतो मे तीव्र वृद्धि आदि ने अर्थव्यवस्था के समग्र विकास की सम्भावनाओ पर और इसके अतिरिक्त विकास क लिए अतिरिक्त ससाधन गतिमान करने की गुन्जाइश पर दुष्प्रभाव डाला । छठी योजना के पहले वर्ष मे कीमत स्तर मे 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई, परन्तु दृढ कीमत नियन्त्रण एव मौद्रिक एव राजकोषीय उपायो का प्रयोग करके सरकार कीमतो पर काबू पाने मे सफल हो गयी, बावजूद इसके कि इस दोरान भारी घाटे की वित्त व्यवस्था किया गया। छठी योजना के दोरान कीमत स्तर मे 9 2 प्रतिशत की औसत वर्षिक चक्रवृद्धि हुई और इसके नतीजे के तौर पर श्रम - वर्ग की वास्तविक मजदूरी मे शोचनीय कटौती हुई ।

छठीं योजना के दौरान भारत सरकार की मौद्रिक नीति अनिवार्यत अत्यधिक तरलता को रोकने की रही है। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा गया कि उत्पादक एव प्राथमिकता वाले क्षेत्रो की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय । मुद्रा एव उधार के विस्तार पर कड़ा नियत्रण करने के उद्देश्य से सितम्बर, 1981 मे नकद आरक्षित अनुपात 6 प्रतिशत से बढाकर 8 प्रतिशत कर दिया गया। इस प्रकार एक ओर मागप्रबन्ध द्वारा और दूसरी ओर पूर्ति प्रबन्ध द्वारा 1981 से 1983 के बीच कीमत - स्तर को स्थिर करने मे मदद दी गयी । छठी योजना मे चावल, गेहू, चीनी, गुड़ तथा अन्य जनोपयोग वस्तुओं के मूल्य नियत्रण का प्रयास किया गया। छठी योजना की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि इसका निर्माण दीर्घकालीन परिपेक्ष्य मे किया गया था। इसमे पन्द्रह वर्षीय एक दीर्घकालीन योजना तेयार की गयी, जिससे विकासगत समस्याओं का निदान हो सके। यह न केवल सफल राष्ट्रीय उत्पादन, उपभोग, रोजगार, बचत एव विनियोग जैसे परम्परागत तत्वों पर आधारित था, बल्कि इसका विकास गरीबी के प्रतिशत, सम्भावित आयु, खाद्यान्न, चीनी, वस्त्र आदि के उपभोग के सदर्भ मे भी किया गया था । गरीब वर्ग के लिये अधिक धन उपलब्ध कराने के उद्देश्य से लक्ष्य निर्धारित किया गया । [11]

---

11. Sixth Five Year Plan, 1980 - 85, P. 78

छठीं पयवर्षीय योजना के जून 1981 मे अनुसूचित वणिज्य बैंको की शाखाओं की सख्या 35,548 थी तथा इनके द्वारा जुटायी गयी कुल जमाराशिया रूपये 40,413 करोड थी । इसी प्रकार बैंक ऋण बढ़कर रूपये 21,332 करोड हो गया । वित्तीय सस्थाओ द्वारा की जाने वाला वित्तीय सहायता का वितरण 1980-81 मे रूपये 1,603 करोड था। 1980-81 मे पूर्ववर्ती वृद्धिकारी नकद शेष को समाप्त कर दिया गया, फलस्वरूप इस अवधि मे नकदी प्रारक्षित अनुपात 6 प्रतिशत रहा, लेकिन आगे के वर्षो मे इसमे लगातार वृद्धि बनी थी ।

1981-82 मे मौद्रिक एव साख नीति एक नियत्रणात्मक रूप मे रही । जहा एक ओर मुद्रापूर्ति मे कमी करने का प्रयास रहा, वहीं सावधि जमा को बढ़ाकर बचत उत्पन्न करना रहा। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मुद्रापूर्ति एव बैंक साख नियत्रण वही रही, जो पिछले वर्षो मे विश्लेषित किया गया है। इस समयावधि मे एक महत्वपूर्ण विकास साख नीति मे यह रहा कि भारतीय रिजर्व बैंक दिसम्बर 1980 मे नकदी साख व्यवस्था मे व्यापारिक बैंकों पर नियत्रण रखी । व्यापारिक बैंकों द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया गया । 1981-82 के बजट के साथ ब्याज दर मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किया गया ताकि ब्याज दर और अधिक विवेकपूर्ण बनाया जा सके । ब्याज - दर बैंक जमाओं पर, जो सितम्बर 1979 मे पुर्नसशोधित किया गया था, उनका समायोजन मार्च, 1980 मे बचतों को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया। अधिकतम् ब्याज - दर 10 प्रतिशत रखा गया।[12] सहकारी बैंको को यह निर्देश दिया गया कि सावधि जमाओं पर अतिरिक्त ब्याज दे । ब्याज दर के सरचनात्मक परिवर्तन के साथ उधार देय ब्याज व्यापारिक बैंको के भी विवेकपूर्ण बनाये गये। इसका उद्देश्य वर्तमान मे कई निर्दिष्ट दरो को कम करना था और बेहतर ब्याज दर विभिन्न वर्ग के ऋण ग्राहको से वसूल करना था। इसका उद्देश्य साख वृद्धि को नियंत्रित करने से भी रहा । एक महत्वपूर्ण बात, जो नई उधार देय नीति मे रही, वह उधार देयता मे चार दशाओ से और विभिन्न वर्ग के ऋण ग्राहको से सम्बन्धित रही । ऋणो, अग्रिमो, ओवर ड्राफ्ट आदि के न्यूनतम दर को उर्ध्वा सशोधन किया गया है। लगातार मुद्रा स्फीति की दशाओ के बने रहने के कारण भारतीय

---

12. Economic Survey 1981 - 82, P. 50

रिजर्व बैंक ने 1981 मे सामान्य निर्देश व्यापारिक बैंको को दिया कि गैर - खाद्य साख मे प्रसार पूरे वित्तीय वर्ष मे अत्यधिक विस्तार न हो। नकदी आरक्षित अनुपात को ऊँचा कर दिया गया । विवेकपूर्ण वित्तीयन तथा पुनर्गणना दर उर्ध्वोमुखी सशोधित किये गये, ताकि भारतीय रिजर्व बैंक से बैंक पुनर्वित्तीयन कम कर सके। पुनर्वित्तीयन पर अधिकतम ब्याज दर 11 प्रतिशत से बढ़ा कर 14 प्रतिशत कर दिया गया, परन्तु इसका प्रभाव बैंक द्वारा दिये गये ऋणो पर नहीं पडेगा । इसका अभिप्राय यह था कि व्यापारिक बैंको का पुनर्वित्तीयन केवल अल्पकालीन तथा विशिष्ट सन्दर्भो मे होगा । इस समयावधि मे बैंक दर 9 प्रतिशत से बढ़ाकर के 10 प्रतिशत कर दियागया । बैंक दर मे इस परिवर्तन के साथ खाद्य तथा निर्यात का पुनर्वित्तीयन भी 9 प्रतिशत से बढ़ाकर के 10 प्रतिशत कर दिया गया ।[13]

कुछ सवेदनशील वस्तुओं के सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण समायोजन चयनात्मक साख नियत्रण के द्वारा किया गया । गेहू, धान, चावल तथा अन्य खाद्यान्नो को न्यूनतम मार्जिन को 10 प्रतिशत बिन्दु तक बढ़ा दिया गया, फिर भी चयनात्मक साख नियत्रण चीनी से सम्बन्धित उत्पादन तथा स्टॉक की दृष्टिकोण से उसी रूप मे समयोजित किया गया ।

प्राथमिक क्षेत्रो और समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को साख प्रवाह के सम्बध मे भारतीय रिजर्व बैंक ने सामान्य निर्देश इन्हे और अधिक बढ़ाने के सन्दर्भ मे किया । प्राथमिक क्षेत्रों मे ये अग्रिम इस रूप मे बढ़ाये जाये कि समग्र ग्रामीण ऋण का 40 प्रतिशत भाग इसके अन्तर्गत हो । पुन यह 40 प्रतिशत प्राथमिक एव सम्बन्धित क्षेत्र को हो । प्राथमिक क्षेत्रो के अन्तर्गत, कृषि, लघु उद्योग तथा सम्बन्धित क्षेत्रों मे निर्धारित किया गया । विभेदात्मक ब्याज दर योजना को व्यक्तिगत क्षेत्र के बैंको को भी लेकर पुन विस्तृत की गयी, जिससे इसका क्षेत्र पूरे देश भर मे फैल सके । यह परियोजना पुन सशोधित की गयी कि बैंक इस कार्य को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के माध्यम से कर सके इस समयावधि मे 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम को प्राथमिकता दी गयी । बैंको को यह निर्देश दिया गया कि 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले कमजोर वर्गो को ऋण एव अग्रिम प्रदान करे। इस

---

13. Economic Survey - 1981-82, P. 51

समयावधि मे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को हर विकास खण्डो मे प्रसारित किया गया ।

संस्थागत व्यवस्था, जो कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र की साख पूर्ति से सम्बन्धित है, उसे अधिक मजबूत बनाने के लिये सरकार ने एक नये बैंक नाबार्ड की स्थापना जुलाई, 1982 को किया, जो अल्पकालीन, मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन ऋणो हेतु व्यापारिक बैंको, सहकारी बैंको और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को पुनर्वित्तीयन करता है। नाबार्ड को यह भी अधिकार है कि वह अपने ससाधनों को सरकार तथा बाजार से उत्पन्न कर सके। यह भारतीय रिजर्व बैंक से भी अल्प समयावधि के लिये सहायता प्राप्त कर सकती है । नाबार्ड के सम्बध मे विस्तृत वर्णन आगे अध्याय 6 मे किया जायेगा ।

देश के विकास कार्यक्रमों मे निर्यात के महत्व को मानते हुए सरकार ने जनवरी, 1982 मे निर्यात - आयात बैंक की स्थापना किया । यह बैंक निर्यातको और आयातों को वित्तीय सहायता प्रदान करेगा तथा प्रधान वित्तीय सस्था के रूप मे अन्य वित्तीय सस्थाओं का, जो आयात - निर्यात से सम्बन्धित है, उनका सचालन करेगा । मोटे तौर पर इस बैंक के कार्य निर्यात एव आयात का वित्तीयन भारत तथा अन्य देशों मे करना, सहयोग के उद्यमो मे बाहरी देशो का आयात - निर्यात मे पुनर्वित्तीयन करना , भारतीय पक्ष के लोगो को ऋणप्रदान करना, जिससे वे विदेशो मे अपने शेयर पूजी को सह उद्यमो मे लगा सके। इस तरह यह बैंक भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (आई डी बी.आई) के अन्तर्गत राष्ट्रीय वित्त के कार्यो को स्वय करेगा ।

इस प्रकार इस अवधिमेमुद्रापूर्ति मे एम$_1$ तथा एम$_3$ भी सीमित रही, प्राथमिक क्षेत्रों मे साख - प्रवाह ऊँचा रहा और खाद्य पदार्थो मे कुल बैंक साख अधिक रहा । चूंकि स्फीतिकारी प्रवृत्तिया बनी रही,इसलिये मौद्रिक एव साख नीति को नियत्रित रखने का प्रयास किया गया ।

1983-84 मे मौद्रिक एव साख नीति दो महत्वपूर्ण उद्देश्यों से सम्बन्धित थी। अतिरिक्त तरलता का न उत्पन्न होना और स्फीतिकारी दबावो को फिर से न उभरने देना तथा साख को इस रूप मे नियंत्रित करना कि उत्पादन बना रह सके। समग्र मौद्रिक ससाधन मे प्रसार जनवरी, 1984

तक काफी तेज था, पिछले वर्ष की तुलना मे । इसके परिणामस्वरूप बैंकिग व्यवस्था मे अतिरिक्त तरलता की स्थिति उत्पन्न हो गयी, जिससे अवांछिनीय साख प्रसार हुआ, इसको समापत करने के लिये और स्फीतिकारी दबावो पर नियत्रण रखने के लिये नकदी आरक्षित अनुपात को बढ़ा दिया । साथ ही साथ इस बात का ध्यान रखा गया कि साख की पूर्ति उत्पादक क्षेत्रों मे रूकावट न हो और चयनित क्षेत्रों मे साख की उपलब्धता बनी रह सके। मौद्रिक नीति को 1982 - 83 मे उदार रखा गया, 1981-82 की तुलना मे । चूंकि स्फीति कारी प्रवृत्तियो पर नियत्रण पाया जा सका, अत मौद्रिक नीति को 1982-83 मे चयनात्मक ढग से उदारीकृत किया गया, परिणामस्वरूप एम$_3$ मे वृद्धि, जो 1981-82 मे 12 5 प्रतिशत पर रूक गया था, वह 1983-84 मे 16 1 प्रतिशत हो गया। इसी के साथ साथ एम$_1$ मे भी 1982-83 मे विस्तार पिछले वर्ष की तुलना मे अधिक हो गया। पूरे आरक्षित बैक मे भारतीय रिजर्व बैंक का योगदान रूपये 2508 करोड़ रहा, जो पिछले वर्ष की तुलना मे काफी कम रहा। इस अवधि मे भारतीय रिजर्व बैंक का साख केन्द्र और राज्य सरकारों मे राज्य सरकारो को कम प्राप्त हुई । वर्ष 1982-83 मे व्यापारिक क्षेत्रो को बैंक साख बढ़कर के रूपये 8247 करोड हो गया अर्थात् 19 प्रतिशत ,जो पिछले वर्ष मे केवल 18 6 प्रतिशत था। साख नीति 1982-83 मे धीरे धीरे सरलीकृत कर दी गयी, परिणामस्वरूप साख की उपलब्धता कई उत्पादक क्षेत्रो मे बढ़ गयी । इन उपायों मे नकदी आरक्षित अनुपात को कम करना तथा सौ प्रतिशत पुनर्वित्तीयन करना था । निर्यात - आयात के क्षेत्र मे पुनर्वित्तीयन को सुधारा गया और निर्यात के क्षेत्र मे साख के प्रसार का विस्तार किया गया ।

साख नीति 1983-84 मे इस रूप मे बनायी गयी कि अतिरिक्त तरलता को रोका जा सके और साथ ही साथ साख को चयनित उत्पादन क्षेत्रो मे बढ़ाया जा सके। वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ मे उत्पादन बढ़ाने का प्रस्ताव किया गया और उधार देय ऋण दरो मे कमी की गयी। इससे अधिकाश ऋण ग्राहको मे उत्साह उत्पन्न हुआ । ब्याज दर मे अल्पकालीन ऋणों के सन्दर्भ मे कृषि, लघु क्षेत्र, निर्यात, ग्रामीण एव कुटीर उद्योगो मे महत्वपूर्ण कमी की गयी । साथ ही साथ साख नीति मे इस बात पर ध्यान दिया गया कि अप्रत्यासित जमा मे वृद्धि बनाये रखा जाय । बैंकिग क्षेत्र मे अत्यधिक

तरलता विद्यमान थी, जिससे साख तरलता मे महत्वपूर्ण अस्थिरता उत्पन्न हो गयी थी। इस सन्दर्भ मे नकदी साख अनुपात का 7 प्रतिशत से बढ़ा करके 8 5 प्रतिशत कर दिया गया । इन विभिन्न दशाओ मे नकदी साख अनुपात को कम करने के बावजूद भी जमा मे वृद्धि बनी रही और साख मे वृद्धि भी बढ़ती रही । इस समयावधि मे कुछ परिवर्तन खाद्य - साख वित्तीयन की सीमा से सम्बन्धित रहे । व्यापारिक बैंको की वास्तविक वृद्धि 1983-84 के मध्य तक रूपये 4880 करोड़ थी। यह भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अनुमानित राशि से बहुत अधिक थी । प्राथमिक मुद्रा मे भी वृद्धि इसी तरह रही।

अर्थव्यवस्था मे पूजीगत विनियोगों को और तेज करने की दृष्टि से भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा अन्य वित्तीय सस्थाओ द्वारा 1984 मे उदार ऋण नीति अपनाया गया। इस नीति के परिपेक्ष्य मे रियायत दर 12 5 प्रतिशत पर सहायता दिया गया । विशेष दबाव इस बात पर दिया गया कि उत्पाद उच्च कोटि का हो तथा उनकी प्रक्रिया तकनीकी और औद्योगिक इकाइयों से सम्बन्धित हो । ऐसी यूनिट जो शत प्रतिशत निर्यात करती है, उसे 1 5 प्रतिशत की छूट देने की घोषणा की गयी । मन्दी तथा व्यस्त मौसम मे ऐसी नीतियों को बनाया गया, जो 20 सूत्री कार्यक्रम के उद्देश्यो के अनुसार हो । यद्यपि उधार देय दर का सरचनात्मक परिवर्तन जो 1983 मे था, उसे परिवर्तित नहीं किया गया, परन्तु कुछ समायोजन किये गये, जिससे साख नीति पर परिमाणात्मक प्रभाव पड़ सके । इनमे से उर्वरकों पर दिये गये अग्रिमों मे कमी, दालो तथा तिलहनो की उगाही, कृषको, व्यवसायियो तथा स्वरोजगार के लोगो पर रियायती दरे लागू रहीं ।

चयनात्मक साख नीति के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये, जिसमे चीनी उद्योग सबसे महत्वपूर्ण है, जो चीनी के अबिक्रीत स्टॉक के कारण किया गया । आबकारी ड्यूटी कुछ परिवर्तनों के साथ कायम रहा । छठी पचवर्षीय योजना के वित्तीय वर्ष 1983-84 मे मौद्रिक एव साख नीति मुख्य रूप से दो उद्देश्यो से सम्बन्धित रही । आर्थिक विकास में सवर्धन करना, विशेषकर चयनित क्षेत्रो मे, जब कि इसी के साथ - साथ स्फीतिकारी दशाओं पर नियत्रण रखना।

1983-84 मे मौद्रिक विस्तार 1982-83 की तुलना मे अधिक रहा और बैंको के पास अतिरिक्त तरलता विद्यमान रही । मौद्रिक नीति इस स्थिति का समाधान करने मे रही और नकदी साख अनुपात को लगातार बढ़ाती रही, जब तक स्फीति कारी दबावो पर महत्वपूर्ण नियत्रण न प्राप्त कर लिया जायेगा इसकी प्रवृत्ति यही रहेगी ।

छठीं पचवर्षीय योजना बहुत ही जटिल परिस्थितियो मे शुरू की गयी थी, परन्तु इसके बावजूद भी योजना के सम्यक क्रियान्वयन से छठीं योजना के अधिकाश निर्धारित लक्ष्यों को पूरा कर लिया गया था । इस योजना मे विकास की वार्षिक दर का लक्ष्य 5 2 प्रतिशत निर्धारित किया गया था, जिसे योजना के अन्त मे प्राप्त कर लिया गया । कृषि क्षेत्र के लिये निर्धारित विकास दर 3 8 प्रतिशत से भी अधिक 4 3 प्रतिशत प्राप्त किया गया । यह योजना पिछली तीन दशाब्दियों के मौद्रिक एव साख नीति तथा अन्य नीतियो का मनन करके तैयार किया गया था। छठीं योजना का वास्तविक व्यय रू0 1,09,2917 करोड़ (89-90 कीमत से) है, जिसमे सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल व्यय रूपये 97,500 करोड (79-80 की कीमत) है, इसमे औसत रूप से 12 प्रतिशत वृद्धि हो गई। छठीं योजना सामान्यत सफल रही है ।

छठी योजना मे कृषि सम्बधी कार्यक्रमो के अन्तर्गत मुख्य रूप से लाभदायकता का अधिक सुदृढ़ करना, भूमि, सुधार कार्यक्रम को तीव्र गति से लागू करना, नवीन तकनीकी का लाभ अधिकाधिक किसानो तक पहुचाना तथा कृषि विकास को ग्रामीण क्षेत्र मे आय तथा रोजगार मे वृद्धि का साधन बनाना आदि था । इस योजना मे घरेलू तथा निर्यात की बढ़ती हुयी आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुये कृषि उत्पादन मे लगभग 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इसके साथ ही साथ यह भी लक्ष्य रखा गया था कि इस योजना मे 153 6 मिलियन टन अनाज का वार्षिक उत्पादन होगा । सिचाई एव बाढ़ नियत्रण तथा भू-क्षरण पर भी ध्यान दिया गया। इस योजना मे कृषि क्षेत्र का परिव्यय रूपये 19,829 करोड था, जो कि कुल योजनागत व्यय का 18 प्रतिशत है। इस योजनावधि मे समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम को देश के सभी विकास खण्डों मे

प्रारम्भ कर दिया गया । इस योजना मे छोटे एव सीमान्त किसानो तथा भूमिहीन मजदूरों के विकास के लिये कृषि एव सहायक व्यवसायो के विकास हेतु विभिन्न प्रयास किये गये ।

छठीं योजना की समग्र अवधि मे 1979-80 की कीमतों पर रूपये 1,58,710 करोड़ का कुल विनियोग (सकल पूजी निर्माण) किया गया । इसमे रूपये 1,49,647 करोड़ का वित्त प्रबन्ध देशीय बचत द्वारा प्राप्त करने की व्यवस्था की गयी । छठीं योजना मे रोजगार वृद्धि हेतु कृषि, ग्राम विकास, ग्राम तथा लघु उद्योग आदि को विशेष रूप से प्राथमिकता दी गयी । ग्रामीण मजदूरों जो मुख्यत दैनिक मजदूरी पर निर्भर करता है ,के पास मन्दी मौसम मे आय का कोई स्रोत नहीं होता, इनके लिये राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम चलाने का प्रस्ताव किया गया। छठीं योजना मे 1984-85 तक बचत दर के 24 5 प्रतिशत तक बढ़ जाने की प्रत्याशा थी, किन्तु वास्तविक बचत दर केवल 23 3 प्रतिशत तक पहुच पायी । इसी तरह औसत वृद्धि दर 5 2 प्रतिशत से कम थी ।

छठीं पचवर्षीय योजना मे महत्वपूर्ण रूप से मौद्रिक विस्तार हुआ। बृहद मुद्रा पूर्ति (एम$_3$) मे औसतन 16 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हुई । प्रारक्षित मुद्रा में वार्षिक वृद्धि दर 16 5 प्रतिशत था। छठीं पचवर्षीय योजना की सम्पूर्ण अवधि में मौद्रिक समुच्चयों मे वृद्धि की औसत वार्षिक दर को सारणी 4 9 मे देखा जा सकता हैं। सारिण में सातवीं योजना अवधि में भी मौद्रिक दर को प्रदर्शित किया गया है । छठीं योजनावधि मे मुद्रा गुणक लगभग 3 4 पर स्थिर था।

4.7 सातवीं पंचवर्षीय योजना में मौद्रिक एवं साख नीति (1984-85 -- 1989-90)

छठीं पचवर्षीय योजना अनेक जटिलताओ एव प्राकृतिक आपदाओं के बावजूद भी काफी सीमा तक सफल रही है। इसी के परिप्रेक्ष्य मे सातवीं योजना तैयार की गयी । सातवीं योजना दीर्घकालीन दृष्टि से तैयार की गयी थी, जिसका लक्ष्य अगले पन्द्रह वर्षो (1985 - 2000) तक स्वत वित्त पोषित अर्थव्वस्था का होना है। सातवीं योजना मे विकास दर 5 प्रतिशत वार्षिक रखी गयी थी । कृषि क्षेत्र के लिये यह दर 4 प्रतिशत वार्षिक थी ।

सारणी 4.9

मौद्रिक समुच्चयों में वृद्धि की औसत वार्षिक दर

(प्रतिशत)

	पद	1980-81 से 1984-85 तक	1985-85 से 1989-90 तक
1	एम 3	16 7	17 6
	(क) बैंको के पास माग जमा राशिया	14 3	15 4
	(ख) बैंको के पास सावधि जमा राशिया	16 1	15 8
	(ग) बैंको के पास सावधि जमा राशिया		
	एम $_3$ के साधन	18 1	18 9
	(1) सरकार को निवल बैंक ऋण	20 5	18 4
	जिसमे से		
	केन्द्रीय सरकार को निवल रिजर्व बैंक ऋण	22 2	17 8
	(11) वाणिज्य क्षेत्र को बैंक ऋण	18 3	16 5
	(111)बैंकिग क्षेत्र की निवल विदेशी मुद्रा पर परिसम्पत्तिया	(-) 1 1	16 7
	( ) सरकार की जनता के प्रति करेन्सी सम्बन्धी देयताये	5 6	15 2
	( )बैकिग क्षेत्र की निवल गैर -मौद्रिक देयताए	19 9	15 7
2	प्रारक्षित मुद्रा	16 5	17 2
3	मौद्रिक गुणक (मूल्य निरपेक्ष सख्या मे दिये गये है।)	3 44	3 41

Source : Economic Survey, 1980-81 to 1990-91.

सातवीं पचवर्षीय योजना मे मुद्रापूर्ति की औसत वार्षिक वृद्धि दर प्रथम चार वर्षो मे लगभग 17 प्रतिशत थी, जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था को अत्यधिक तरलता का सामना करना पडा और जिससे मुद्रा स्फीति का दबाव पूरे योजनावधि मे बनी रही । योजना के अन्तिम वर्ष मे मद्रा पूर्ति की वृद्धि दर शिखर स्तर 19 7 प्रतिशत पर पहुच गयी, जिससे स्थिति और भी भयावह हो गयी ।

चयनात्मक साख नियत्रण के अन्तर्गत साख अधिकरण योजना के लिये अप्रैल, 1986 मे उधार सीमा बढाकर रूपये 6 करोड कर दिया गया । विनिर्माण इकाइयो और निर्यातको के लिये यह सीमा रूपये 7 करोड रखी गया । मार्च, 1986 के अन्त तक यह योजना 843 पार्टियो पर लागू की गयी। योजना के अधीन रूपये 21,670 करोड उधार की स्वीकृति दी गयी । सातवीं पचवर्षीय योजना महत्वपूर्ण मौद्रिक विस्तार का अवधि था ।

भारतीय रिजर्व बैंक का सरकार को दिया गया साख 1985-86 मे रूपये 3,186 करोड और इसी अवधि मे 1986-87 मे रूपये 5048 करोड था। योजना के अगले वित्तीय वर्षो 1987-88 मे रूपये 6761 करोड, 1988-89 मे रूपये 8457 करोड तथा 1989-90 मे रूपये 14,056 करोड था । इसी तरह क्षेत्रवार बैंक साख का वितरण मार्च, 1985 मे 40 0 प्रतिशत, मार्च, 1986 मे 40 8 प्रतिशत, तथा मार्च 1988 मे 44 1 प्रतिशत हो गया । सातवीं योजना के मध्य मे सुखमय चक्रवर्ती समिति के प्रस्तावो और सुझावो को क्रियान्वित किया गया । यह समिति नियोजित ढग से समग्र मौद्रिक लक्ष्यो की आवश्यकता और उसके विकास द्वारा उपर्युक्त मौद्रिक समृद्धि को प्रस्तावित करती है ।

इस समयावधि मे मौद्रिक नति का उद्देश्य मात्र तरलता की समग्र माग एव पूर्ति से सम्बन्धित नही था, अपितु नियोजित प्राथमिकता के आधार पर स्थापित सामाजिक आर्थिक दशाओ के परिप्रेक्ष्य मे तरलता के क्षेत्रीय बटवारे से सम्बन्धित था। ये प्राथमिक क्षेत्र, कमजोर वर्ग के निर्यातको, स्व रोजगार योजना के लोगो तथा ग्रामीण कलाकारो मे विशेष महत्वपूर्ण साख का निर्धारण किया गया । जहा तक मौद्रिक एव साख नीति के परिवर्तन तथा विकास का सम्बध हैं, वह अर्थव्यवस्था में

सारणी 4.10

मुद्रा भण्डार में परिवर्तन के साधन

(रूपये करोड़)

		इन अवधियों में घट बढ़					
		1984-85 31 मार्च से 31 मार्च तक	1985-86 31 मार्च से 31 मार्च तक	1986-87 31 मार्च से 31 मार्च तक	1987-88 31 मार्च से 31 मार्च तक	1988-89 31 मार्च से 31 मार्च तक	1989-90 31 मार्च से 31 मार्च तक
I	एम$_1$ (जनता के पास उपलब्ध मुद्रा)	6517	4171	5310	7039	8231	19274
II	एम$_3$ (कुल मौद्रिक साधन)	16268	16313	18578	22422	28959	37160
	(I) जनता के पास उपलब्ध करेन्सी	3069	2378	1812	5177	4770	7971
	(II) बैंको के पास माग जमा राशिया	3144	2099	3 88	1774	3164	6399
	(III) बैंको के पास सावधि जमा राशिय	9751	12142	13268	15383	20728	22866
	(I) भारतीय रिजर्व बैंक के पास 'अन्य जमा राशियां'	304	-304	10	88	297	-96
3	एम$_3$ में परिवर्तन के साधन (1+2+3+4+5)						
	1 सरकार को दिये गये निवल बैंक ऋण (क+ख)	9586	8093	11825	12350	12105	20676
	(क) भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सरकार को दिया गया निवल ऋण (I + II)	7426	4442	5048	6402	6928	14068
	(I) केन्द्रीय सरकार को	6056	6468	5262	6559	6503	13813
	(II) राज्य सरकार को	1370	-2026	- 214	- 157	425	255
	(ख) अन्य बैंको द्वारा सरकार को दिए गए ऋण	2160	3651	6777	5948	5177	6608
2	वाणिज्यिक क्षेत्र को बैंक ऋण (क + ख)	10227	11850	7286	12786	20395	23822
	(क) वाणिज्यिक क्षेत्र को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिये गए ऋण	327	300	365	395	1734	825
	(ख) वाणिज्यिक क्षेत्र को अन्य बैंको द्वारा दिए गए ऋण	9855	11550	6921	12350	18661	22997
3	बैंकिग क्षेत्र को निवल विदेशी मुद्रा परिसम्पितियां	1322	841	-47	805	1127	-133
4	सरकार को जनता के प्रति करेंसी संबंधी दनेदारियां	58	154	116	188	95	80
5	बैंकिग क्षेत्र की सावधि जमा के अलावा निवल मुद्रा - भिन्न देनदारि्या (क + ख)	9925	4625	602	3667	4784	7285
	(क) भारतीय रिजर्व बैंक की निवल मद्रा - भिन्न देनदारिया	3311	2085	1619	781	2711	600
	(ख) अन्य बैंक की निवल मुद्रा भिन्न देनदारिया (अवशेष)	1614	2540	-1017	2886	2052	6685

Economic Survey, 1984-85 to 1989-90

1989-90 मे भी दर्ज की गयी । योजना के अन्य वर्षो मे 1985-86 मे 19 4 प्रतिशत, 1987-88 मे 17 2 प्रतिशत, 1988-89 मे 19 8 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी ।

1988-89 मे लेखा वर्ष को कैलेन्डर वर्ष से बदल कर वित्तीय वर्ष कर दिया गया, जिससे बैंको की राशियो और ऋण मे वर्षान्त मे असामान्य वृद्धि आयी । बैंको के वित्तीय वर्ष 1989-90 के अन्त मे कुल जमाराशियो और ऋण मे दोबारा तेज तथा असामान्य वृद्धि हुई, इसे रोकने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने 24 मार्च से 6 अप्रैल, 1990 तक की अवधि के पखवाडे के दौरान बिना पूर्वानुमति लिए एक विवेकाधीन पुनर्वित्त प्राप्त करने का प्रयत्न किया ।[14]

सातवीं योजना के पूरी योजनावधि मे साधन पक्ष की ओर मुद्रा पूर्ति वृद्धि 1984-85 में 23 6 प्रतिशत, 1985-86 मे 16 1 प्रतिशत, 1987-88 मे 17 1 प्रतिशत, 1988-89 में 17 8 प्रतिशत और 1989-90 मे 19 3 प्रतिशत के कारण काफी अधिक सीमा तक लगातार राजकोषीय असतुलन रहा है ।

1989-90 मे मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि का एक प्रमुख स्रोत सरकार को निवल बैंक ऋण रहा है। इसमे रूपये 20 137 करोड का विस्तार हुआ था। स्वर्ण पनर्मूल्याकन सहित बैंकिग प्रणाली की निवल विदेशी मुद्रा परिसम्पत्तियों में वित्तीय वर्ष 1989-90 मे रूपये 212 करोड की कमी हुई थी । अनुसूचित वाणिज्य बैंक प्रचालनो से सम्बन्धित आकडे सारणी 4 1। मे प्रस्तुत किया गया है ।

सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिया गया निवल ऋण प्रारक्षित मुद्रा मे वृद्धि का एक मात्र प्रमुख स्रोत रहा है , जो 1989-90 मे अधिक मौद्रिक विस्तार का मूल स्तम्भ है। 1989-90 मे यह प्रारक्षित मुद्रा मे हुई विस्तार का 96 1 प्रतिशत बैठता है, जबकि 1988-89 मे यह 73 2 प्रतिशत और 1987-88 मे 73 7 प्रतिशत था। इसके सघटको में क्रमश 1989-90, 1987-88 और 85-86 मे सरकार को निवल भारतीय रिजर्व बैंक ऋण मे वृद्धि का क्रमश 93 9 प्रतिशत, 102 5 प्रतिशत और 101 प्रतिशत थी ।

---

14. Economic Survey 1990 - 91, P. 125

सारिणी 4 ।।

अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक चुने हुए निर्देशकों में घट - बढ़

(रूपये करोड़)

		इन अवधियो मे घट बढ					
		1984-85	1985-86	1986-87	1987-88	1988-89	1989-90
		31 मार्च से 31 मार्च तक	31 मार्च से 31 मार्च तक	31 मार्च से 31 मार्च तक	31 मार्च से 31 मार्च तक	31 मार्च से 31 मार्च तक	31 मार्च से 31 मार्च तक
1	कुल जमा राशिया (क+ख)	11839	13133	16356	1 315	21897	6809
	(क) माग जमा राशिया	2743	1756	2298	1040	2569	5514
	(ख) सावधि जमा राशिया	9096	11377	12 58	14275	19328	212 5
2	भारतीय रिजर्व बैंक से उधार	469	-943	-620	847	1303	-1128
3	भारतीय रिजर्व बैंक के पास रोकड वाकी और जमा वाकी	2759	864	1415	3348	3761	2291
	(क) रोकड़ बाकी	127	231	4	4	145	204
	(ख) भारतीय रिजर्व बैंक के पास शेष राशिया	2632	633	1447	3344	3616	2087
4	माग और अल्प सूचना पर देय राशिया	189	-67	367	-865	1499	-1172
5	बैंक ऋण (क + ख)	7148	7869	4999	7492	12470	16734
	(क) जनता को अनाज खरीदने के लिये ऋण	1489	293	-104	-2349	-1490	1237
	(ख) खाद्य भिन्न बैंक ऋण	5659	7576	5103	9841	13960	15496
	जिनमे से प्राथमिक्ता प्राप्त क्षेत्रो को	3510	3157	-	4020	5149	6168
6	सरकारी और अन्य अनुमोदित प्रतिभूतियो मे निवेश	3732	5666	8606	8118	7674	9707
	(क) सरकारी प्रतिभूतिया	2087	3 49	6704	5815	4954	6477
	(ख) अन्य अनुमोदित प्रतिभूतिया	1645	2117	1902	2303	2720	3230
7	अन्य बैंको के चालू खाते मे जमा शेष राशि	248	418	-421	-266	180	247

Source : Economic Survery, 1984-85 to 1990-91.

प्रारक्षित मुद्रा मे 1984-85 मे 21 5 प्रतिशत, जब कि इसके अगले वर्ष 1985-86 मे अत्यधिक कमी 8 3 प्रतिशत, 1987-88 मे 19 4 प्रतिशत, 1988-89 मे 17 7 प्रतिशत और 1989-90 मे 23 2 प्रतिशत की काफी अधिक वृद्धि दर्ज की गई थी। 1989-90 मे यदि रिजर्व बैंक की निवल विदेशी मुद्रा परिसम्पत्तियो मे 2 1 प्रतिशत की कमी न हुई होती तो प्रारक्षित मुद्रा मे वृद्धि और अनुवर्ती मौद्रिक विस्तार और अधिक हुआ होता, जब कि इसके विपरीत 1988-89 मे इसमे 11 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी । सरकार को दिया गया निवल रिजर्व बैंक ऋण, जो कि प्रारक्षित मुद्रा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, उसमे 1984-85 मे अत्यधिक वृद्धि 27 7 प्रतिशत (रूपये 7426 करोड) के मुकाबले 1985-86 मे काफी कम 13 0 प्रतिशत (रूपये 4442 करोड) की वृद्धि दर्ज की गयी । 1987-88 और 1988-89 मे यह लगभग स्थिर क्रमश 13 8 प्रतिशत और 13 1 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी । इसी तरह 1988-89 में दर्ज की गई 13 1 प्रतिशत की वृद्धि के मुकाबले 1989-90 मे 23 6 प्रतिशत को अत्यधिक वृद्धि दर्ज की गई । दूसरी ओर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्य और सहकारी बैंको तथा वाणिज्यक क्षेत्र को 1989-90 में दिए गये ऋण वृद्धि 1988-89 मे हुई 59 4 प्रतिशत तथा 45 8 प्रतिशत वृद्धि की तुलना मे क्रमश 5 6 प्रतिशत और 14 9 प्रतिशत काफी कम थी । 1989- 90 मे प्रारक्षित मुद्रा मे वृद्धि की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इसके प्रमुख स्रोतो मे से एक अर्थात् केन्द्रीय बैंक के निवल भारतीय रिजर्व बैंक ऋण मे कई पखवाडो की समाप्ति के बाद 31 मार्च, 1989 के स्तर की तुलना मे 1989-90 के केन्द्रीय बजट मे सम्पूर्ण वित्तीय वर्ष के लिए अनुमानित 7,337 करोड रूपये की वृद्धि की अपेक्षा बहुत अधिक वृद्धि हुई । चूंकि केन्द्रीय सरकार का बजट घाटा केन्द्रीय सरकार को दिए गए निवल रिजर्व बैंक ऋण मे हुए विस्तार को प्रकट करने का एक प्रमुख उपादान है, इसलिए इसकी प्रवृत्ति भी यही बनी रही। भारतीय रिजर्व बैंक के लेखे के अनुसार 1989-90 की समाप्ति पर रूपये 10,624 करोड के स्तर पर पहुच गया ।

सातवीं पचवर्षीय योजना मे अनुसूचित वाणिज्य बैंको द्वारा दिए गए बैंक ऋण का क्षेत्रवार आवटन सारणी 4 12 मे दिया गया है । ये आकडे 50 अनुसूचित वार्णिज्य बैंको (विलयन के कारण

सारणी 4 12

सकल बैंक ऋण का क्षेत्रवार आवंटन

(रूपये करे

	1986-87		1987-88		1988-89		1989-90	
	करोड़ रूपये	प्रतिशत	करोड़ रूपये	प्रतिशत	करोड़ रूपये	प्रतिशत	करोड़ रूपये	प्रतिशत
सकल बैंक ऋण	7356	13 3	7651	12 3	15468	22 0	16943	19 8
1 सरकारी खाद्य वसूली	-432	-7 8	-2914	-57 1	-1421	-64 9	1237	160 9
2 सकल खाद्य भिन्न ऋण (क+ख+ग+घ)	7787	15 7	10605	18 5	16889	24 8	5706	18 5
(क) प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र (1+2+3)	3484	16 2	4020	16 0	5149	17 7	6168	18 0
(1) कृषि	1512	16 7	1439	13 6	1941	16 2	2584	18 5
(2) लघु उद्योग	1292	16 5	1712	18 8	2315	21 4	2415	18 4
(3) अन्य प्राथमिता प्राप्त क्षेत्र	680	14 5	869	16 2	893	14 3	1169	16 4
(ख) उद्योग (मध्यम और बड़े)	2934	15 9	3797	17 8	7032	28 0	6087	18 9
(ग)थोक व्यापार (अनाज की वसूली को छोडकर) (1+2+3+4)	14	0 4	518	16 8	1169	32 5	705	14 8
(1) भारतीय कपास निगम	- 51	-31 9	-18	-16 5	-54	-59 3	103	278 4
(2) भारतीय खाद्य निगम(उर्वरक)	8	5 7	22	14 8	31	18 1	28	13 9
(3) भारतीय जूट निगम	71	55 9	-56	-28 3	- 44	-31 0	-44	-44 9
(4) अन्य व्यापार	-14	-0 5	570	21 7	1236	28 7	618	14.0
(घ) अन्य क्षेत्र	1355	20 5	2270	28 4	3 39	34 5	2746	19 9
निर्यात ऋण	73	30 6	771	24 5	2224	56 8	2104	34 3

Source : Economic Survey, 1986-87 to 1990-91.

मार्च, 1990 से 49) द्वारा नियोजित ऋण से सबंधित हैं, जो बैक ऋण का लगभग 95 प्रतिशत बैठते हैं। 1989-90 के दौरान कुल मिलाकर सकल बैंक ऋण 1988-89 मे 22 प्रतिशत की तुलना मे वृद्धि की निम्न दर 19 8 प्रतिशत दर्ज की गई, तथापि निरपेक्ष रूप से सकल बैंक ऋण मे हुए 15,468 करोड रूपये विस्तार की अपेक्षा 1989-90 मे हुये 16,943 करोड रूपये विस्तार काफी अधिक था । खाद्य ऋण मे 1988-89 मे हुई कमी के बावजूद 1989-90 मे वृद्धि दर्ज की गई।[15]

जहा मार्च, 1986 के अन्त मे प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को दिए गये बैंक ऋण मे 40 8 प्रतिशत (रूपये 3,157 करोड) की वृद्धि हुयी, वहीं योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 मे प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को दिए गए ऋण मे रूपये 6,168 करोड की काफी अधिक वृद्धि हुयी, जो मार्च 1990 के अन्त मे निवल बैंक ऋण मे वृद्धि का 42 4 प्रतिशत है । इसके पूर्व 1988-89 मे इसमें 43 2 प्रतिशत वृद्धि हुयी थी । कृषि क्षेत्र को दिये गये ऋण मे 1985-86 मे 44 3 प्रतिशत 1987-88 मे 13 6 प्रतिशत (रूपये 1,439 करोड) की वृद्धि दर्ज की गयी । इसमे 1988-89 में रूपये 1,941 करोड (16 2 प्रतिशत) और 1989-90 मे रूपये 2,584 करोड (18 5 प्रतिशत) की वृद्धि दर्ज की गयी । लघु उद्योगो को दिए गए अग्रिमो मे 1985-86 मे 38 1 प्रतिशत, 1987-88 मे 18 8 प्रतिशत (रूपये 1,712 करोड), 1988-89 मे 18 4 प्रतिशत (रूपये 2,315 करोड) तथा 1989-90 मे 21 4 प्रतिशत (रूपये 2,415 करोड) की वृद्धि हुई । बडे और मझोले उद्योगो के अग्रिमो मे 1984-85 मे रूपये 1,318 करोड (9 0 प्रतिशत) वृद्धि हुयी, लेकिन इसके अगले वर्ष 1985-86 मे अत्यधिक वृद्धि रूपये 3,231 करोड (20 3 प्रतिशत) वृद्धि हुयी । 1987-88 में रूपये 3,797 करोड (17 8 प्रतिशत) की वृद्धि दर्ज की गयी । 1988-89 मे रूपये 7,032 करोड़ (28 प्रतिशत) की अत्यधिक वृद्धि की तुलना मे रूपये 6,087 करोड़ (18 9 प्रतिशत) का अतिरिक्त बैक ऋण प्राप्त हुआ । थोक व्यापार के अग्रिमो मे, खाद्य वसूली के अतिरिक्त 1988-89 मे रूपये 1,169 करोड (32 5 प्रतिशत) तथा 1989-90 मे रूपये 705 करोड (14 8 प्रतिशत) की वृद्धि

---

15. Economic Survey 1990 - 91, P. 130

दर्ज की गयी । निर्यात ऋण मे भी 1988-89 मे रूपये 2,224 करोड (56 8 प्रतिशत) तथा 1989-90 मे रूपये 2,104 करोड (34 3 प्रतिशत) की वृद्धि दर्ज की गयी ।

1987-88 से 1989-90 की अवधि मे सभी वित्तीय सस्थाओ की कुल सस्वीकृतियो तथा सवितरणो मे वृद्धिकारी प्रवत्ति देखने मे आई है । उनके द्वारा स्वीकृति कुल सहायता की राशि 1987-88 मे रूपये 9,171 8 करोड से बढ़कर 1988-89 मे रूपये 14,073 4 करोड हो गई तथा 1989-90 मे यह बढकर रूपये 15,631 4 करोड हो गई । आकडो से सातवीं योजना के अतिम तीन वर्षो की अवधि मे कुल सस्वीकृति मे 34 प्रतिशत की वार्षिक औसत वृद्धि का पता चलता है । इन वित्तीय सस्थाओ द्वारा सहायता राशि के सवितरण मे इसी अवधि मे 22 प्रतिशत की ऐसी ही वृद्धि का पता चलता है ।यह 1987-88 मे रूपये 6,788 4 करोड की तुलना मे 1989-90 मे रूपये 10,001 7 करोड थी। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक और भारतीय यूनिट ट्रस्ट जैसी अखिल भारतीय वित्तीय सस्थाओ न सातवीं योजना के अन्तिम तीन वर्षो मे सभी वित्तीय (सावधि ऋण देने वाली) सस्थाओ द्वारा स्वीकृति की गई कुल सहायता की अपेक्षा अधिक राशि स्वीकृति की गयी थी। 1987-88 और 1989-90 के मध्य अखिल भारतीय वित्तीय सस्थाओ द्वारा प्रयोजनवार प्रत्यक्ष सहायता अनुदान मे नई परियोजनाओ के लिए 28 प्रतिशत, विद्यमान परियोजनाओ के विस्तार/विविधीकरण के लिए 76 प्रतिशत तथा आधुनिकीकरण/पुनर्स्थापित परियोजनाओ के लिए 20 प्रतिशत और पूरक सहायता के लिए 33 प्रतिशत की वार्षिक औसत वृद्धि दर दर्ज की गई । वर्ष 1989-90 के दौरान मियादी उधार देने वाली सस्थाओ द्वारा सहायता की बहुत सी नई योजनाए आरम्भ की गई, जिनमे महिला उद्यम निधि योजना, महिला विकास निधि योजना, उपस्कर ऋण तथा खरीददार ऋण, परिसम्पति ऋण योजना शामिल है। गुवाहाटी मे राष्ट्रीय ग्रामीण विकास निधि की स्थापना मे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने सहायता प्रदान की है । भारतीय यूनिट ट्रस्ट तथा भारतीय औद्योगिक ऋण तथा निवेश निगम दोनो ने मिलकर 100 करोड रूपये की राशि से अपनी द्वितीय उद्यम पूजी निधि (वी0ई0सी0ए0यू0एस0-

द्वितीय) की स्थापना की है। भारतीय यूनिट ट्रस्ट ने भी पूजी बाजार के क्षेत्र मे एक विकसित व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण तथा अनुसधान को प्रोत्साहित करने के उददेश्य से न्यू बम्बई मे यूनिट ट्रस्ट आफ इडिया इन्स्टीट्यूट ऑफ कैपिटल मार्केट की स्थापना की है। यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि अखिल भारतीय वित्तीय सस्थाओ और सरकारी क्षेत्र के बैंको ने सातवीं योजना के अतिम से तीन वर्षो मे कुछ विशेषज्ञता प्राप्त वित्तीय सस्थाओ का सवर्धन किया है । दूसरी वित्तीय सस्थाओ और राष्ट्रीयकृत बैको के साथ भारतीय औद्योगिक ऋण तथा निवेश निगम ने 1987 मे भारतीय नौवहन ऋण तथा निवेश कम्पनी लिमिटेड का सवर्धन किया, जिसे नौवहन तथा मत्स्य पालन क्षेत्र की रूग्ण कम्पनियो के पुनरूद्वार के लिए सरकार के एजेट के रूप मे कार्य करने के साथ-साथ जहाजो और मत्स्य जलपोतो के अधिग्रहण के लिए सहायता देने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इसी प्रकार दूसरी अखिल भारतीय वित्तीय सस्थाओ, भारतीय स्टेट बैंक, कैनरा बैंक और बैंक ऑफ इण्डिया के साथ भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने 1989 मे भारतीय पर्यटन वित्त निगम की स्थापना की, जो पर्यटन और इससे सबद्ध कार्यो के क्षेत्र मे उद्दमो को रूपया और विदेशी मुद्रा, दोनो मे, सहायता प्रदान करेगा, शेयर ऋण पत्रो की जिम्मेदारो सभालेगा/सीधे ही अशदान करेगा, पूर्तिकर्ताओ को ऋण की सुविधाए प्रदान करेगा, उपस्कर पट्टे पर देगा/प्राप्त करायेगा । इसी प्रकार सात अखिल भारतीय वित्तीय सस्थाओ का प्रतिभूति सबधी लेन - देन करने के लिये इन सस्थाओ द्वारा 1987 मे भारतीयस्टाकधारिता लि0 की स्थापना की गई थी । सरकार ने हाल ही मे सरकारी क्षेत्र की सभी वित्तीय सस्थाओ और सरकारी क्षेत्र के बैंको को इस निगम के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत लाने की मजूरी दी है। [16] दूसरी उल्लेखनीय घटना इन सस्थाओ का उद्यम पूजी क्षेत्र मे प्रवेश है। उद्यम पूजी निधिया ससाधन जुटाने का वैकल्पिक तरीका प्रदान करती है। जो कि कम्पनी की विशिष्ट जोखिम आवश्यकताओ के लिए उपयुक्त हैं। भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम (आई0सी0आई0सी0आई0) और भारतीय खाद्य निगम (एफ0सी0आई0) द्वारा निर्मित उद्यम पूजी के निर्मित होने से उद्यम पूजी सहायता अब अधिक सुलभ है।

---

16. Economic Survey 1990 - 91, P. 138

भारतीय रिजर्व बैंक और सरकार द्वारा पिछले अनेक वर्षो मे किए गए विभिन्न उपायों के परिणामस्वरूप भारतीय मुद्रा बाजार मे और अधिक विविधता आई है । 182 दिवसीय राजकोषीय हुडियो, वाणिज्य हुडियो, वाणिज्यक दस्तावेजो जैसे विभिन्न दस्तावेजो के कारोबार मे काफी विस्तार हुआ है । सातवीं योजना के अतिम वर्षो मे, अन्तर-बैंक माग मुद्रा, अल्पावधि नोटिस मुद्रा और सावधि मुद्रा के लेनदेनो की मात्रा मे पर्याप्त वृद्धि हुई है । सातवीं योजना मे केवल अनुसूचित वाणिज्यक बैंको, सहकारी बैंको और भारतीय बट्टा भुनान और वित्त गृह को ही माग/नोटिस में ऋणदाता और उधारकर्ता दोनो के रूप मे कार्य करने की अनुमति दी गई थी, जबकि भारतीय जीवन बीमा निगम और भारतीय यूनिट ट्रस्ट को ऋणदाता के रूप मे काम करने की अनुमति पहले ही दी जा चुकी थी । यह स्मरणीय है कि निवेशकर्ताओ को उनकी अल्पावधि निधियो के निवेश में अधिक लचीलापन प्रदान करने के लिये भारतीय रिजर्व बेक द्वारा जून, 1989 मे जमा पत्र शुरू किये गये थे । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि माग मुद्रा दरो मे काफी अस्थिरता रही है। । मई, 1989 मे माग मुद्रा दरो मे छूट देने से अनेक बैंक ऋण देने और उधार लेने मे परिवर्तन करते रहे हैं और इस प्रकार बाजार के एक तरफा होने मे कमी लाने मे सहयोग दे रहे हैं। इसके बावजूद यह देखा गया है कि माग राशि दरो मे रिपोर्टिंग पखवाडे के पहले सप्ताह मे तेजी से वृद्धि होती है और जब बैंको की नकदी प्रारक्षित अनुपात सबध आवश्यकता पूरी हो जाती है, तब दूसरे सप्ताह मे गिरावट आ जाती है । 25 अप्रैल, 1988 से आरम्भ अपने मुद्रा बाजार प्रचालन के माध्यम से भारतीय बट्टा भुनान और वित्त गृह न केवल 182 दिवसीय राजकोषीय हुडियो को एक उच्च नकदी दस्तावेज के रूप मे विकसित करने मे, बल्कि इन हुडियो के लिए एक सहायक बाजार स्थापित करने मे भी सफल रहा है। 1989-90 के दौरान इन हुडियो का समय कारोबार, 1988-89 के स्तर की तुलना में लगभग दुगुना हो गया और रूपये 21,953 करोड की राशि तक पहुच गया ।

राष्ट्रीय आवास बैंक ने अपने प्रचालन जुलाई, 1988 से प्रारम्भ किए थे और यह देश के आवासीय वित्तपोषण के विकास मे सक्रिय रूप से शामिल रहा । यह न केवल इस प्रकार के

वित्तपोषण के लिए मजबूत सस्थागत ढाचे के सवर्धन का पक्षधर रहा है,बल्कि विशेष रूप से आवासीय जरूरतो को पूरा करने के लिए बचतो पर बल देते हुए वास्तविक ससाधनो अर्थात् जमीन और भवन निर्माण सामग्रियो की पूर्ति बढाने के लिए भी प्रयत्नशील रहा है । राष्ट्रीय आवास बैंक ने अनुसूचित वाणिज्यक बैंको और सहकारी बैंको के सहयोग से घरेलू लोगो से ससाधन जुटाने की दृष्टि से, विशेषकर मकानो/फ्लेटो के निर्माण के लिए 1 जुलाई, 1989 को गृह ऋण खाता स्कीम शुरू की है।[17]

भारतीय बैंक ने पहली प्राथमिकता के आधार पर घरेलू उपादान सेवाए स्थापित करने के लिए उपाय करने और उपादान सवाए पूरे स्तर पर आरम्भ करने क लिए कानूनी उपायो को बढ़ावा देने का निर्णय लिया है। उपादान को कारोबार के एक भाग के रूप मे अधिसूचित कर दिया गया है, जिसमे बैंक/बैंको की सहायक सस्थाए बैकिग विनियमन अधिनियम, 1949 के अन्तर्गत कार्य कर सकती है। देश के सभी चारो क्षेत्रो अर्थात् पश्चिमी, पूर्वी, उत्तरी और दक्षिणी के लिए अनुसूचित बैंको ने उपादान सेवाए शुरू करने के वास्ते आवेदन किया है और ये आवेदन पत्र विचाराधीन है। ये उपादान अभिकरण न केवल कार्यशील पूजी की बाधाओ को हटाने मे इकाइयो की सहायता करेगी,बल्कि ऋण प्रबधन मे भी सहायता प्रदान करेगी और जोखिमो का जायजा लेने मे आवश्यक विशेषज्ञता प्रदान कर इकाइयो को सरक्षण भी देगी । उपादानो को इसके बदले मे लघु क्षेत्र से तत्काल उपलब्ध व्यापार का भी लाभ मिलेगा ।

1987 से सरकारी क्षेत्र के कुछ वाणिज्य बैंको अर्थात् भारतीय स्टेट बैंक (1987), केनरा बैंक (1987), इडियन बैंक (1989) पजाब नेशनल बैंक (1990) और बैंक आफ इण्डिया (1990) ने भी अपनी व्यापारिक सहायक बैंकिग कम्पनियो के माध्यम से पारस्परिक निधियो की स्थापना की है । भारतीय जीवन बीमा निगम ने भी 1989 मे अपनी पारस्परिक निधि शुरू की । इन पारस्परिक निधियो ने 1989-90 के दौरान 1,500 करोड रूपये से अधिक की राशि जुटाई है ।

---

17. Economic Survey 1989 - 90, P. 109

एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र, जिसमे भारतीय बैंको ने हाल ही मे प्रवेश किया है, वह अपतटीय निधियो का क्षेत्र है । भारतीय यूनिट ट्रस्ट ने दो निधियो के क्षेत्र मे शुरूआत की है। (क) लन्दन की मेरिल लिच के सहयोग से जुलाई, 1986 मे आरम्भ की गई इडिया फड और (ख) अमरीका मे एक निवेश कपनी के रूप मे पजीकृत मेरिल लिच एड नोमुर सिक्यूरिटीज इटर नेशनल इकारपोरेटड के सहयोग से अगस्त, 1989 मे इडिया ग्रोथ फण्ड । इन निधियो के लिए अनिवासी भारतीय और विदेशी लोगो ने अशदान किया है और इनका कारोबार क्रमश लन्दन तथा न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेजो मे होता है । 1989-90 मे भारतीय स्टेट बैंक ने भी इडियन मैग्नम फड (सितम्बर 1989) नामक अपतटीय निधियो के दो समुच्चय जारी किए है । यह निधि एम्स्टडम स्टॉक एक्सचेज मे पजीकृत है और भारतीय स्टेट बैंक की सम्पूर्ण स्वामित्व वाली एक सहायक सस्था द्वारा इसका प्रबन्ध किया जाता है । इसके अलावा यह सहायक सस्था, एशियाई विकास बैंक द्वारा जनवरी, 1990 मे आरम्भ की गयी एशियाई परिवर्तनीय और आय निधि नामक बहुराष्ट्रीय अपतट निधि के भारतीय विभाग (20 प्रतिशत) की निवेश प्रबधक होगी । [18]

4 8 मौद्रिक एवं साख नीति में नवीनतम् परिवर्तन एव विकास

1989-90 से मौद्रिक नीति को बढ़ते हुए राजकोषीय घाटे तथा निरन्तर बनी रही अत्यधिक तरलता का सामना करना पडा, जिससे मुद्रास्फीति एक बार पुन उभर कर सामने आयी। इन परिस्थितियो के अतिरिक्त, भुगतान सतुलन की बिगडती हुई स्थिति भी थी, जो खाडी सकट के बाद विशेष रूप से बदतर हो गयी थी । अत 1990-91 के उत्तरार्ध तथा 1991-92 के पूर्वाध मे भारतीय रिजर्व बैंक के नीतिगत कार्यो मे सकल माग को, विशेषकर आयात की माग को सीमित रखना सर्वोपरि उद्देश्य बन गया । अल्पावधिक प्रबध पर प्रमुख बल देने के बावजूद वित्तीय प्रणाली की परिचालनगत कुशलता को बढाने तथा मुद्रा बाजार को विकसित करने के दीर्घ-कालीन उद्देश्यो का भी अनुसरण किया गया । इसके साथ-साथ यह भी प्रयास किया गया कि सरकार द्वारा जुलाई

---

18. Economic Survey 1990 - 91, P. 145

1991 से आरम्भ किये गये व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण और सरचनात्मक सुधार के उपायो के समन्वित कार्यक्रम को समर्थन दिया जाये। इस सबध मे वित्तीय प्रणाली पर श्री एम नरसिम्हम की अध्यक्षता मे गठित समिति द्वारा की गया सिफारिशो की मौद्रिक नीति निर्धारण मे महत्वपूर्ण भूमिका रही है ।

1990-91 मे मुद्रापूर्ति के सभी सघटको मे निम्न वृद्धि दर दर्ज की गई, जो कि विदेशी मुद्रा भडार की अत्यधिक और अनियोजित निकासी के कारण थी । सरकार के विस्तृत बजटीय घाटे के कारण सरकार को निवल बैंक ऋण और केन्द्रीय सरकार को निवल भारतीय रिजर्व बैंक ऋण दोनो मे ही तीव्र वृद्धि हुयी । 1990-91 मे भरपूर फसल के कारण खाद्य ऋण मे तेजी से वृद्धि हुयी, जबकि खाद्य - भिन्न ऋण मे कम वृद्धि हुयी । इस अवधि मे विशेषकर वर्षान्त मे भारतीय रिजर्व बैंक को आयातो के लिये बैंक वित्त पोषण को सीमति करने के लिये ऋण नीति सम्बधी विशिष्ट तथा स्थायी उपाय किये, क्योंकि भुगतान सतुलन की स्थिति बिगड गयी थी, जिससे विदेशी मुद्रा प्रारक्षित भण्डार मे भारी कमी आ गयी थी ।

सामान्य ऋण नियत्रण सबधी उपायो मे नकदी प्रारक्षित अनुपात को अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको की सभी निवल माग और सावधि देनदारियो के विद्यमान कानूनी 15 प्रतिशत के अधिकतम स्तर पर अपरिवर्तित रखा गया । अनुसूचित वाणिज्य बैंको की सभी निवल माग और सावधि देनदारियो की साविधिक नकदी अनुपात को 38 प्रतिशत से बढ़ाकर 38 5 प्रतिशत कर दिया गया और इसे 22 सितम्बर, 1990 से प्रभावी बनाया गया, जो अनिवासी बाह्य खातो (रूपया) और पवदेशी मुद्रा अनिवासी खातों पर लागू नहीं किया गया। खातो की परवर्ती दो श्रेणियो के लिए साविधिक नकदी अनुपात को भी 28 जुलाई, 1990 को आरम्भ हुए पखवाडे से 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दिया गया। तिलहनो और खाद्य तेलो (वनस्पति को छोडकर) के अग्रिमों के सम्बध मे 2 जुलाई, 1990 से चयनित ऋण नियत्रणो को कठोर कर दिया गया, लेकिन गेहू के मामले मे ऐसे नियत्रणो को कम कर दिया गया । बाद मे सुधरी हुई पूर्ति स्थिति को देखते हुए इन्हे समाप्त कर दिया गया । 10

अक्टूबर, 1990 से गेहू और दालो को छोडकर धान, चावल और अन्य खाद्यान्नो के लिए दिये जाने वाले अग्रिमो पर न्यूनतम मार्जिन को भी एकदम 15 प्रतिशत बिन्दुओ तक नीचे लाया गया और 10 अक्टूबर, 1990 से पूर्व नियत स्तर पर उन्हे बनाए रखकर उनकी कीमतो मे वृद्धि के कारण 8 जनवरी, 1991 से बढाया गया। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 1 जनवरी, 1991 से निर्यात ऋण पुनर्वित को उदार बनाया गया। पुनर्वित 75 प्रतिशत से 100 प्रतिशत कर दिया गया।[19]

ब्याज दर ढाचे को युक्ति युक्त बनाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया, जब उसने 22 सितम्बर, 1990 से अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको के लिए उधार दरो की एक नयी व्यवस्था लागू की और निर्यातो तथा विभेदक ब्याज दर योजना के अतिरिक्त अग्रिमो के लिये विशिष्ट, क्षेत्र-विशिष्ट और अचल विशिशट ब्याज दरो के पूर्ववर्ती कार्यक्रमो की अग्रिमो के आकार से सम्बद्ध ब्याज दरो के रूप मे बदल दिया गया। 1 जनवरी, 1991 से सम्बद्ध नकद ऋण ब्याज दर से अधिक 2 प्रतिशत बिन्दु पर ब्याज दर निर्धारित की गई है, ताकि हुडी प्रथा को प्रोत्साहन मिले।

1990-91 मे सीमित मुद्रा (एम$_1$) मे 22 मार्च, 1991 तक 15 4 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। बृहत मुद्रा (एम$_3$) मे भी सम्बद्ध अवधि मे 15 1 प्रतिशत (रूपये 19,090 करोड) की निम्न वृद्धि दर्ज की गयी, जो मुख्यत 1990-91 मे वाणिज्यिक बैंको द्वारा बैंको के ऋण मे कम वृद्धि के कारण थी, और कृषि और ग्रामीण ऋण राहत स्कीम के अन्तर्गत ऋणो की माफी के परिणाम स्वरूप थी। 1990-91 मे माग जमा राशियो और मियादी जमा राशियो मे भी महत्वपूर्ण कमी आयी। सरकार को निवल बैंक ऋण मे 23 मार्च, 1991 तक रूपये 21,138 करोड का विस्तार दर्ज किया गया। 31 मार्च, 1990 से 22 मार्च, 1991 तक प्रारक्षित मुद्रा मे वृद्धि की दर बहुत कम 6 0 प्रतिशत दर्ज की गयी। 1990-91 मे सरकार को दिए गए निवल रिजर्व बैंक ऋण मे रूपये 12,960 करोड (17 6 प्रतिशत) की वृद्धि हुयी और वाणिज्यिक क्षेत्र को दिए गए भारतीय रिजर्व

---

19. Economic Survey 1990 - 91, P. 137

बैंक के ऋण मे रूपये 837 करोड की अत्यधिक कमी आयी ।

बैंक ऋण के क्षेत्रवार वितरण के सम्बध मे अप्रैल, 1990 से जनवरी, 1991 तक मझोले और बडे उद्योगो को दिया जाने वाला अतिरिक्त ऋण रूपये 3841 करोड(10 0 प्रतिशत) था। इस अवधि मे संवितरित अतिरिक्त सकल खाद्य-भिन्न ऋण रूपये 3,841 करोड (49 प्रतिशत) था। प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो के ऋण मे रूपये 1,716 करोड (4 2 प्रतिशत) की वृद्धि हुयी । सरकारी खाद्य वसूली के लिये दिये गये ऋण मे रूपये 2,532 करोड की उल्लेखनीय वृद्धि हुयी ।

1990-91 मे भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रशासित ब्याज दरो के सम्बध मे उठाया गया अत्यधिक महत्वपूर्ण कदम अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको की उधार देने की दरो को युक्तिसगत बनाना था। ब्याज की विभदेक दर कमजोर वर्गो के लिये 4 प्रतिशत तथा निर्यात ऋण के लिये दर मे कोई परिवर्तन नहीं किया गया । अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको के लिये उधार दरो मे सशोधन 22 सितम्बर, 1990 से लागू किया गया, जो कार्यशील पूजी तथा अत्यधिक ऋण पर भी समान रूप से लागू होता है। वाणिज्यिक ब्याज दर रूपये दो लाख से ऊपर ऋण पर 16 प्रतिशत (न्यूनतम) बनाये रखी गयी, लेकिन रूपये 7,500 तक के लिये अग्रिमो पर न्यूनतम उधार की दर 10 प्रतिशत रखी गयी।[20] अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको को 10 अक्टूबर, 1990 से ऋणो की निम्नलिखित श्रेणियों पर लागू ब्याज दरो को स्वतत्र रूप से निर्धारित करने की अनुमति दी गयी - (1) उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओ की खरीद के लिये ऋण (2) व्यक्तियो को शेयरो और डिबेचरो/बाडो के विरूद्ध ऋण (3) अन्य प्राथमिकता - भिन्न क्षेत्र के वैयक्तिक ऋण। इसके अलावा निर्यात ऋण पुनर्वित सीमा निर्धारित करने का आधार वर्ष 25 अगस्त, 1990 से वित्तीय वर्ष 1988-89 कर दिया गया। मौद्रिक वृद्धि और निर्यात सर्वधन की सर्वोच्च आवश्यकता को देखते हुये । जनवरी, 1991 से पुनर्वित समानुपात को बढ़ा कर उपर्युक्त आधार की तुलना मे निर्यात ऋण के स्तर मे वृद्धि का 75 से 100 प्रतिशत कर दिया गया । इस वर्ष अपनाये गये सामान्य ऋण नियत्रण के अन्य उपायो मे, वृद्धिकारी खाद्य-भिन्न

---

20. Economic Survey 1990 - 91, PP. 131-134

ऋणजमा अनुपात को 60 प्रतिशत की व्यवस्था को जारी रखा गया । इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण उपाय अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको के ऋणकर्ताओ के लिए ऋण सीमाओ के अप्रयुक्त ऋण पर प्रतिबद्धता प्रभार प्रारम्भ करना है ।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 1990-91 मे इसके ऋण प्रबन्ध मे कीमत - संवेदनशील वस्तुओ के लिये बैंक ऋण के सबध मे चयनात्मक ऋण नियत्रण उपायो का उपयुक्त प्रयोग किया गया है। रूई तथा कपास पर बैंक अग्रिमो से सबंधित न्यूनतम मार्जिन को 45 प्रतिशत से घटा कर 30 प्रतिशत कर दिया गया । 16 अप्रैल, 1990 से, ऋण की उच्चतम सीमा वाली वस्तुओ के सबध मे, उपर्युक्त 3 वर्षीय आधार अवधि 1986-87, 1987-88, 1988-89 (नवम्बर-अक्टूबर) को 2 वर्ष से लेकर 3 वर्ष तक के लिये बढ़ा दिया गया, ताकि एक वस्तु विशिष्ट के विरूद्ध बैंक अग्रिमो के लिये ऋण की उच्चतम सीमा निर्धारित की जा सके । गेहू के विरूद्ध सभी बैंक अग्रिमो पर न्यूनतम मार्जिन को कुल मिलाकर 15 प्रतिशत बिन्दु और कम कर दिया गया । रूई और कपास पर सभी अग्रिमो को 16 अप्रैल, 1990 से जुलाई, 1990 से लागू चयनात्मक ऋण नियत्रण की सभी प्रावधानो से छूट दे दी गयी । कडे चयनात्मक ऋण नियत्रण के अन्तर्गत तिलहन और वनस्पति सहित खाद्य तेलो के विरूद्ध बैंक अग्रिमो पर न्यूनतम मार्जिन 4 मई, 1990 और 2 जुलाई, 1990 से कुल मिलाकर लगातार दो बार 15 प्रतिशत बिन्दु बढा दिया गया।

वर्ष 1990-91 का केन्द्रीय बजट प्रस्तुत करते हुये वित्त मत्री द्वारा किसानो, दस्तकारो और बुनकरो के लिये **' ऋण राहत स्कीम'** के कार्यान्वयन के बारे मे भारत सरकार के निर्णय की घोषणा की गयी थी। घोषित निर्णय के अनुरूप भारत सरकार ने **कृषि और ग्रामीण ऋण राहत स्कीम, 1990** को अनूमोदित किया । 15 मई, 1990 से लागू ऋण राहत स्कीम की मुख्य बाते निम्नलिखित हैं - 21

(1) यह स्कीम बैंको और सहकारी समितियो के सभी पात्र ऋणो के सबध मे लागू होगी ।

---

21. Reserve Bank of India Annual Report, 1991-92, P.115

(2) सरकारी क्षेत्र के बैंको और क्षैत्रीय ग्रामीण बैंको के मामले मे भारत सरकार उस ऋण राहत की राशि को वहन करेगी, जो इन सस्थाओ द्वारा प्राप्त लाभग्राहियो को उपलब्ध कराया जायेगा।

(3) सहकारिताओ के सबध मे भारत सरकार द्वारा अनुमोदित राज्य सरकारों कीस्कीमो के सबध मे व्यय, केन्द्रीय और राज्य सरकारो द्वारा समान आधार पर वहन किया जायेगा ।

(4) यह राहत ऐसे अनिच्छुक चूककर्ताओ को उपलब्ध होगी, जिन्होने एक या अधिक बैंको से ऋण लिये थे, भले ही उधार ली गयी राशि की मात्रा कुछ भी क्यो न हो । लेकिन राहत की अधिकतम राशि प्रति पात्र लाभग्रही रूपये 10,000 पर सीमित होगी।

(5) लाभग्राही निर्धारित करने की तारीख 2 अक्टूबर, 1989 होगी । इस स्कीम के समाप्त होने की तारीख 31 मार्च, 1991 निर्धारित की गयी थी, किन्तु 30जून, 1991 को समाप्त हुई।

भारतीय रिजर्व बैंक ने निर्यात को समर्थन देने के लिये बैंको को विशेष रूप से अक्टूबर, 1990 मे ठोस प्रयास करने की सलाह दी थी । 1 अगस्त, 1990 से मियादी उधार देने वाली सस्थाओ द्वारा औद्योगिक वित्त के लिये ब्याज दर ढ़ाचे को और उदार बनाया गया, वित्तीय सस्थाओ को सावधि ऋण के लिये मूल ब्याज दर पहले जो 14 प्रतिशत निर्धारित की गयी थी, इसमे सशोधन करके दो - स्तरीय ब्याज दर ढ़ाचा लागू किया गया, जिसके अन्तर्गत पहले दो वर्षो के लिये अथवा परियोजना के पूरा होने तक (जो भी पहले हो) सावधि ऋणो पर ब्याज दर 14 प्रतिशत निर्धारित की गयी (स्तर प्रथम) और शेष अवधि के लिये मूल उधार दर 15 प्रतिशत होगी (स्तर द्वितीय) ।[22]

1990-91 मे वित्तीय क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण सस्थागत विकास, लघु उद्योगो के लिये शीर्ष बैंक के रूप मे **'भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक'** की स्थापना रहा। इस बैंक का मुख्यालय लखनऊ मे बनाया गया । इसने 2 अप्रैल, 1990 से रूपये 4,200 करोड के निवेश से अपना कामकाज प्रारम्भ किया और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से लघु उद्योग विकास

---

22. Economic Survey 1990 - 91, P. 139

निधि तथा राष्ट्रीय इक्विटी निधि के प्रशासन का उत्तरदायित्व सभाल लिया ।

वर्ष 1991-92 अर्थव्यवस्था को शीघ्रता से स्थिर करने और मूलभूत सुधारो को लागू करने के लिये दृढ़ नीतिगत उपायो को प्रारम्भ करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण अवधि थी। इस अवधि के दौरान विशिष्ट साख नीतिगत उपायो के चार प्रमुख तत्व थे। उपायो के प्रथम समूह का लक्ष्य आयात को सीमित करना था । आयात पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध लगाने के बजाय नकदी मार्जिन लागू करके (जो एक समय 50 प्रतिशत से 200 प्रतिशत के दायरे मे रहा) तथा 25 प्रतिशत ब्याज दर अधिभार लगाकर आयात वित्तपोषण की लागत मे वृद्धि करने जैसे उपायो को आयात सीमित रखने का भेदभाव रहित तरीका माना गया। उपायो का दूसरा समूह, जो प्रतिबन्धात्मक मौद्रिक नीति सम्बन्धी दृष्टिकोण की उपज है, भुगतान सतुलन मे चालू लेखा खाते को सीमित रखने के लिए उठाया गया है । आय के किसी विशेष स्तर के लिए, व्यय मे कटौती अथवा समावेशन का निश्चय ही यह अर्थ है कि व्यवस्था की समग्र मौद्रिक माग साथ ही मुद्रास्फीति को भी कम किया जाए । लेकिन समग्र माग तथा मुद्रा स्फीति मे कटौती से ही भुगतान सतुलन की स्थिति मे तुरत सुधार नहीं हो जाता है। उन्हे व्यवस्था की विभिन्न कडियो के माध्यम से कार्य करना होता है तथा उसे आय मे से आयात के प्रति मामूली - से लगाव जैसे मानदण्डो पर निर्भर रहना पडता है । राजकोषीय घाटे को सीमित रखने के साथ - साथ मुद्रा और ऋण की तगी का यह परिणाम भी होता है कि इससे मुद्रास्फीति के नियत्रण को सुविधाजनक बनाने के अलावा ससाधनो के उपयोग मे अधिक मितव्ययिता आती है । उपायो की तीसरा समूह विदेशी मुद्रा की स्थिति मे सुधार तथा मुद्रास्फीति की वार्षिक दर मे कुछ गिरावट के फलस्वयप आया । उन उपायो मे आयातो पर नकदी मार्जिन सबधी शर्तो का हटाया जाना तथा बडे उधारकर्ताओ के मामले मे उधार पर ब्याज दरो को उसी प्रकार थोडा कम किया जाना शामिल है । उपायो का अन्तिम समूह सरकार द्वारा किये गये राजकीय समायोजन तथा व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण तथा सरचनात्मक समायोजन के मेल से उत्पन्न हुआ, जिसके सदर्भ मे यह व्यवहार्य समझा गया कि नकदी प्रारक्षित अनुपात तथा सांविधिक चलनिधि अनुपात दोनो मे सांविधिक

पूर्वक्रयाधिकार के स्तर को कम किया जा सकता है। वित्तीय क्षेत्र को सुधारने के प्रस्तावो के एक भाग के रूप मे वित्तीय प्रणाली पर गठित नरसिहम समिति ने बैंको के ससाधनो के पूर्वक्रयाधिकार मे कटौती करने की सस्तुति की । इसके जवाब मे सरकार अपनी उधार सबधी जरूरतो को बैंको के ससाधनो के पूर्वक्रय के बजाय, ज्यादा से ज्यादा बाजार से पूरा करने पर सहमत हो गयी है। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुये तथा सरकारी प्रतिभूति बाजार को विकसित करने के समग्र प्रयास के एक अग के रूप मे भारत सरकार ने दो नयी लिखते अर्थात 364- दिवसीय खजाना बिल और 5 और 10 वर्षीय दिनाकित प्रतिभूति दोनो नीलामी आधार पर जारी की, ये लिखते भी मौद्रिक नियत्रण लागू करेन के बेहतर साधन विकसित करने की दिशा मे बढने के लिए एक प्रमुख आधार प्रदान करेगी । उधार की ब्याज दरो को और अधिक युक्तिसगत बनाया जाना तथा जमाराशि की परिपक्वता अवधि और जमाराशि पर ब्याज दरे निर्धारित करने के सबध मे बैंको को दी गयी पर्याप्त स्वतत्रता भी उक्त सुधार कार्यक्रम के अग हैं।

1991-92 के मौलिक लक्ष्यो को रेखांकित करने वाली व्यापक अर्थ-व्यवस्था की प्रमुख परिकल्पनाए थीं- सकल देशी उत्पाद की वृद्धि 3 से 3 5 प्रतिशत तक, मुद्रास्फीति की दर 9 प्रतिशत से अधिक नहीं तथा एम$_3$ के विस्तार मे लगभग 13 प्रतिशत की उल्लेखनीय कमी । आयात सबधी दबावो, ऋण सम्बन्धी तथा राजकोषीय समायोजन - उपायो का समग्र वृद्धि दर पर प्रभाव पडा तथा इस स्थिति मे सकल देशी उत्पाद की वृद्धि 2 0 प्रतिशत से थोडी कम रह गयी और विशेषकर औद्योगिक उत्पादन मे पूर्णत अवरोध बना रहा । ऐसी स्थिति मे भी 1991-92 मे एम$_3$ का विस्तार 18 5 प्रतिशत तक पहुच गया, जिसके कारण थे - प्राथमिक चलनिधि मे देशी विस्तार और प्रयोजित स्तर की तुलना मे अधिक विदेशी मुद्रा का अर्जन । चूंकि विदेशी मुद्रा के आगम को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी थी, अत इन ससाधनो के आगम को रोकने वाले उपाय नहीं किये गये, ताकि कहीं ऐसा न हो कि इन उपायो से ऐसे आगमो मे कमी आ जाए । कृषि और ग्रामीण ऋण राहत स्कीम, 1990 30 जून, 1991 को समाप्त हो गयी प्राप्त आकडों के अनुसार बैंको द्वारा रूपये 7,917 करोड का ऋण राहत प्रदान किया गया, जिसमे से वर्णित बैंको ने रूपये 2,962 करोड, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको ने रूपये 808 करोड और सहकारी बैंको ने रूपये 4,147 करोड प्रदान किये ।

कृषि एव औद्योगिक उत्पादन को पुनर्जीवित करने तथा निर्यातो को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता की पृष्ठभूमि मे मुद्रास्फीति नियत्रण के उद्देश्यो की प्राथमिकता को ध्यान मे रखते हुए 1992-93 की प्रथम छमाही की मौद्रिक एव साख नीति बनायी गयी । सकल राजकोषीय घाटे को 1991-92 मे सकल देशी उत्पाद के 6 5 प्रतिशत से घटाकर 1992-93 मे सकल देशी उत्पाद के 5 प्रतिशत पर लाने के सरकार के घोषित उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए मौद्रिक नीति तैयार की गयी थी । समग्र नीति का उद्देश्य है मुद्रास्फीति की दर को कम करके 8 प्रतिशत तक लाना । इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए केन्द्र सरकार ने बजट घाटे (और मुद्रीकृत घाटे) को कम करके उसे 1992-93 मे रूपये 5,389 करोड तक लाने की योजना बनायी है । मुद्रीकृत घाटे में कटौती का पूरा असर मुद्रास्फीति के कम होने पर पडे इसके लिए यह माना गया कि मुद्रीकृत घाटे को न केवल वित्त वर्ष के अत मे बल्कि पूरे वर्ष भर मे कम रखा जाना चाहिए ।

आलोच्य अवधि के दौरान मौद्रिक और साख नीतिगत महत्वपूर्ण उपायो को तर्काधार नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) बैंक दर मौद्रिक नीति के एक साधन के रूप मे बैंक दर निष्क्रिय रही थी तथा जुलाई, 1981 से इसमे कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । मुद्रास्फीतिकारी दबावो तथा रिजर्व बैंक की आधारभूत दर बनाने की आवश्यकता को देखते हुए यह उपयुक्त समझा गया कि बैंक दर के (नियत्रणकारी) साधन को सक्रिय किया जाये । तदनुसार 3 जुलाई, 1991 को कारोबार की समाप्ति से बैंक दर को 10 0 प्रतिशत से बढ़ाकर 11 0 प्रतिशत वार्षिक और 8 अक्टूबर 1991 को कारोबार की समाप्ति से इसे और अधिक बढ़ाकर 12 0 प्रतिशत वार्षिक कर दिया गया ।

आलोच्य अवधि मे उधार पर ब्याज की दरो मे चार बार सँशोधन किया गया, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि इन दरो से अर्थव्यवस्था मे अन्तनिर्हित मुद्रास्फीति की झलक मिले और ब्याज दरो को धनात्मक बनाने की आवश्यकता थी । पहले यह मानते हुए कि मौजूदा अधिक मुद्रास्फीतिकारी दबावो के सदर्भ मे कई उधार पर ब्याज की दरे वास्तविक रूप मे नकारा हो गयी हैं,

अनुसूचित वाणिज्य बैंको के उधार पर ब्याज की दरो मे 9 अक्टूबर 1991 से 1 5 प्रतिशित बिन्दुओ की एक समान वृद्धि कर दी गयी । तीसरे, चूंकि 2 लाख रूपये से अधिक की ऋणसीमा के लिए न्यूनतम उधार पर ब्याज की दर अप्रैल, 1991 और अक्टूबर, 1991 के बीच 16 प्रतिशत से बढ़ाकर 20 प्रतिशत कर दी गयी थी, मुद्रास्फीति की दर मे कुछ गिरावट को देखते हुए सावधानी पूर्वक 2 मार्च, 1992 से 2 लाख रूपये से अधिक ऋण सीमा वाले उधारकर्ताओ के लिए उधार पर ब्याज की दर मे 1 प्रतिशत बिन्दुओ की कमी कर दी गयी, अतत बैंको की उधार की ब्याज दर सरचना को क्रमिक रूप से युक्तियुक्त बनाने की प्रक्रिया के एक अग के रूप मे 22 अप्रैल 1992 से उधार पर ब्याज की दरो की मौजूदा छ श्रेणियो को घटाकर चार कर दिया गया।[23]

अनिवार्यत बैंक जमाराशियो पर धनात्मक वास्तविक ब्याज दर उपलब्ध कराने हेतु आलोच्य अवधि मे बैंको की जमाराशियो पर ब्याज दर सरचना मे कुछ एक सशोधन हुए । पहले यह सुनिश्चित करने के लिए कि बैंको ने अपने उधार कार्यो के लिए वित्त की व्यवस्था अपने निजी ससाधनो से की है तथा वैकल्पिक बचत साधनो की प्रतिस्पर्धा के लिए बैंको को तैयार करने के लिए अनुसूचित वाणिज्य बैंको की सावधि जमाराशि दरो मे सभी स्तरो पर 4 जुलाई, 1991 से एक प्रतिशत अक की वृद्धि की गई है । एक वर्ष और अधिक परन्तु तीन वर्ष से कम की जमाराशियो के लिए ब्याज दरें 12 प्रतिशत वार्षिक हो गयी । 3 वर्ष और अधिक की परिपक्वता वाली जमाराशियो की ब्याज दरे 13 प्रतिशत वार्षिक पर अपरिवर्तित बनी रही । अब बैंको को यह छूट है कि वे परिपक्वता अवधि तथा जमाराशियो पर ब्याज दर 13 प्रतिशत वार्षिक की एकल निर्धारण सीमा के अन्तर्गत निर्धारित कर ले। बचत जमा राशि पर ब्याज दरो को 4 अप्रैल, 1992 से एक प्रतिशत अक बढाकर 6 प्रतिशत वार्षिक कर दिया गया है । वर्ष 1991-92 के पूर्वार्द्ध तक, जब आयातों को सीमित रखने की सबसे बडी आवश्यकता थी, मुद्रा नीति सबधी उपायो मे क्रमिक रूप से सख्ती की गई । निर्यातो को बढ़ाने की महती आवश्यकता और बैंको को निर्यात ऋण देने के लिए अधिक प्रोत्साहन देने के उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए निर्यात ऋण पुनर्वित फार्मूला को उदार बनाया गया और इस सुविधा के अन्तर्गत बैंको को निधियो की उपलब्धता भी बढ़ायी गई । भारत मे प्रारक्षित राशि की अपेक्षाये चलनिधि नियन्त्रण के लिए एक प्रमुख साधन रही है । साविधिक चलनिधि अनुपात,

23. Reserve Bank of India, 1991-92, pp. 7 - 9.

जिसे यद्यपि मूलत विवेक सम्मत उपाय के रूप म स्वीकार किया गया था, आशिक रूप मे सरकार को उधार की आवश्ययकताओ की पूर्ति बाजार आधारित दरो से कम दर पर करने का उद्देश्य पूरा करता रहा है । प्रारक्षित निधि की अपेक्षाओ मे लगातार वृद्धि के कारण यह साधन प्रति उत्पादक के रूप मे उभर रहा था, क्योंकि इससे बैंको की लाभप्रदता भी प्रभावित होती है । श्री एम नरसिम्हम की अध्यक्षता मे गठित वित्तीय प्रणाली पर समिति ने अन्य बातो के साथ-साथ सांविधिक चल-निधि अनुपात को चरणबद्ध तरीके से कम किये जाने की सिफारिश की थी । सरकार द्वारा किये गये राजकोषीय समायोजन और व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण के सदर्भ मे यह व्यवहार्य समझा गया कि सांविधिक पूर्वक्रयाधिकार मे वर्तमान स्तरो को तर्कसगत बनाया जाये । नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की थी कि मौद्रिक नियत्रण के एक साधन के रूप मे नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात का प्रयोग जारी रखा जाए यद्यपि यह अनुभव किया गया कि इसका वर्तमान स्तर काफी ऊँचा है और इन्हें कम करने की आवश्यकता है । वर्ष 1991 के पूर्वाध की गम्भीर अवधि के दौरान 10 प्रतिशत वृद्धिशील नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात को मई, 1991 मे लागू किया गया । यह अनुभव किया गया कि 15 प्रतिशत के औसत अनुपात के साथ-साथ 10 प्रतिशत वृद्धिशील नकदी प्रारक्षित निधि अनुपात को जारी रखा जाना ज्यादा अवधि तक उचित नहीं होगा, क्योंकि इससे उत्पादक क्षेत्रो को ऋण के प्रवाह मे अवरोध होगा । बैंको की लाभप्रदता को बढ़ाने के उद्देश्य से पिछले कई वर्षो से नकदी प्रारक्षित अनुपात बढ़ाया गया है और साथ ही नकदी शेष राशियो पर ब्याज भी बढाया गया है । चूंकि नकदी शेष राशियो पर ब्याज की अदायगी से मौद्रिक नियत्रण कम होता है, अत नकदी प्रारक्षित निधि को और भी बढ़ाना पडा । यदि नकदी शेष राशियो पर ब्याज नहीं अदा किया गया होता, तो उसी स्तर पर मौद्रिक नियत्रण प्राप्त करने के लिए नकदी प्रारक्षित अनुपात को बहुत कम दर पर निर्धारित किया जा सकता था । वित्तीय वर्ष 1991-92 के पूर्वाध के लिए साख नीति के तौर पर बैंको से यह सुनिश्चित करना अपेक्षित था कि वर्ष 1991-92 मे उनका वृद्धिशील निवल खाद्येतर ऋण (निर्यात ऋण को छोडकर) जमा अनुपात 45 प्रतिशत से अधिक नहीं हो । समस्त बैंकिग प्रणाली ने वर्ष 1991-92 से इन मानदण्डो को अपनाया और पहले जैसा वृद्धिशील निवल खाद्येतर ऋण-जमा अनुपात के निर्धारण को जारी रखना 1992-93 के लिए आवश्यक नहीं माना

गया । तदनुसार अप्रैल, 1992 मे वृद्धिशील ऋण-जमा अनुपात का निर्धारण वापस ले लिया गया । बैंको को यह सलाह दी गई कि वे कृषि और औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादक गतिविधियो को पुन चालू करने, विशेषकर छोटे किसानो लघु उद्योगो और निर्यातो की आवश्यकताओ के लिए समर्थन देने हेतु अपनी ऋण सुविधाओ को सामान्य करे । मुद्रास्फीति के तीन दबावो के सदर्भ मे प्रारक्षित मुद्रा विस्तार को नियत्रित करने की अनिवार्य आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए 9 अक्टूबर, 1991 से कुछ पुनर्वित सुविधाए वापस ले ली गई है । ये हैं - खाद्य वस्तुओ के लिए ऋण का पुनर्वित, वैकल्पिक पुनर्वित, 182 दिवसीय खजाना बिल पुनर्वित और विवकाधीन पुनर्वित । इस प्रकार निर्यात ऋण पुनर्वित के अतिरिक्त कोई और पुनर्वित अब भारतीय रिजर्व बैंक से बैंको को उपलब्ध नहीं है। 9 अक्टूबर, 1991 से प्रणाली बैंको से यह सुनिश्चित करना अपेक्षित था कि निम्नलिखित क्षेत्रों मे से प्रत्येक को बकाया ऋणो मे कोई वृद्धि नहीं हो ।

(1) उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओ की खरीद के लिए ऋण

(2) अन्य गैर-प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के व्यक्तिगत-ऋण

(3) शेयरो और डिबेचरो/बाडो के एवज मे व्यक्तियो की ऋण और

(4) अचल सम्पत्ति पर ऋण ।

बैंको के स्रोतो पर दबावो को कम करने एव औद्योगिक उत्पादन की उगाही को सुविधाजन्य बनाने के सन्दर्भ मे दिनाक 22 अप्रैल, 1992 से प्रथम दो श्रेणियो के ऋणो पर से प्रतिबध हटा लिए गये, जबकि अन्य दो पर प्रतिबध लागू रहे । इसके अतिरिक्त, बैंको को यह सलाह दी गई कि वे दिनाक 22 अप्रैल, 1992 से शेयर और डिबेचरो/बॉडो पर व्यक्तिगत ऋण पर 75 प्रतिशत का न्यूनतम मार्जिन निर्धारित करे । इस वर्ष मुद्रा बाजार म्युचल फड की एक नयी योजना प्रारम्भ की गयी । श्रेष्ठ प्रतिभूति बाजार को इस तरह पुनर्गठित किया जा रहा है, ताकि भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य बैंको पर ऋण के लिए सरकार की निर्भरता कम हो । यह मुद्रा नियत्रण के एक साधन के रूप मे कार्य करेगा, जिसमे ब्याज दरो मे लचीलापन, नयी लिखतो को प्रारम्भ किया जाना, खुले बाजार के क्रियाकलापो द्वारा चल-निधि विस्तार/सकुचन किया जायेगा ।

व्यापक मुद्रा (एम$_3$) तथा सकीर्ण मुद्रा (एम$_1$) दोना मे 1991-92 मे काफी अधिक मौद्रिक विस्तार हुआ । एम$_3$ मे पिछले वर्ष के रूपये 34,878 करोड (15 1 प्रतिशत) की तुलना मे रूपये 49,256 करोड (18 5 प्रतिशत) की वृद्धि हुई । 1991-92 मे एम$_3$ मे हुई वृद्धि वर्ष के बृहद आर्थिक उद्देश्य तैयार करते समय निर्धारित 13 प्रतिशत की वांक्षित वृद्धि की तुलना मे उल्लेखनीय रूप से अधिक थी । वाणिज्यिक क्षेत्र को दिये गये निवल रिजर्व बैंक ऋण मे भी पिछले वर्ष के रूपये 20,065 करोड (13 2 प्रतिशत) की तुलना मे रूपये 19,296 करोड (11 2 प्रतिशत) की न्यूनतम वृद्धि हुई । प्रारक्षित मुद्रा मे 1990-91 के रूपये 10,188 करोड (13 1 प्रतिशत) की तुलना मे 1991-92 मे रूपये 11,730 करोड (13 4 प्रतिशत) की वृद्धि हुई । भारतीय रिजर्व बैंक की निवल देशी आस्तियो मे पिछले वर्ष के रूपये 8,273 करोड (11 6 प्रतिशत) की तुलना मे 1991-92 मे रूपये 875 करोड (1 1 प्रतिशत) की अत्यत कम वृद्धि हुई । 1991-92 के दौरान केन्द्र सरकार को एनडीए तथा निवल भारतीय रिजर्व बैंक ऋण मे वृद्धि करने के लक्ष्य पूर्णत पूरे हो गये। सकल जमाराशियो का विस्तार 1990-91 के रूपये 25,583 करोड (15 3 प्रतिशत) के स्तर से बढ़कर रूपये 38,216 करोड (19 8 प्रतिशत) हो गया और वह 1991-92 की दूसरी छमाही की ऋणनीति मे घोषित रूपये 28,500 करोड के सशोधित कार्यकारी अनुमान को पार कर गया । 1991-92 मे बैंक जमाराशियो मे तीव्र वृद्धि हुयी और 1992-93 की पहली तिमाही मे भी जमाराशियो मे वृद्धि की गति बनी थी । इस अवधि मे बैंकिग परिवर्ती दरो को सारणी 4 13 मे स्पष्ट किया गया है ।

इस अवधि मे सकल जमाराशियो मे तीव्र विस्तार के बावजूद कुल बैंक ऋण मे विस्तार की गति उल्लेखनीय रूप से कम रही। वर्ष भर मे खाद्याओ की वसूली मे गिरावट तथा अधिक निकासी, जिसकी वजह से उनके स्टाक के स्तरो मे तीव्र गिरावट आयी, के कारण खाद्य ऋण का विस्तार 1990-91 के रूपये 2,500 करोड़ की तुलना मे रूपये 164 करोड पर साधारण रहा । प्रतिबधात्मक ऋण नीतिगत उपाय और अर्थव्यवस्था मे सामान्य गिरावट तथा ऋण की बढ़ती हुई लागत से खाद्येत्तर ऋण मे कम विस्तार हुआ और यह 1990-91 के रूपये 12,348 करोड (12 4

सारणी 4 13

बैंकिंग परिवर्ती वृद्धि दरें

(प्रतिशत में)

	1987-88	1988-89	1989-90	1990-91	1991-92	1992-93 (अप्रैल-जून)
सकल जमाराशिया	14 9	18 7	19 1	15 3	19 8	4 5
माग जमाराशिया	5 3	15 3	24 6	15 0	35 8	0 4
सावधि जमाराशिया	17 1	19 4	18 2	15 4	16 5	5 6
बैंक ऋण	11 4	20 1	19 8	14 6	8 0	6 5
खाद्य ऋण	57 1	64 9	160 9	124 6	3 6	9 2
खोद्योत्तर ऋण	17 4	22 8	18 5	12 4	8 2	6 4
निवेश	20 5	17 5	17 8	16 6	20 2	4 5

Source - Reserve Bank of India, Annual Report, 1991-92.

प्रतिशत) तथा 1989-90 के रूपये 15,497 करोड (18 5 प्रतिशत) की तुलना म रूपये 9,127 करोड (8 2 प्रतिशत) रहा ।

जुलाई 1991 से प्राधिकारियो ने स्थिरीकरण और सरचनात्मक समायोजन दोनों के लिए तीव्र गति और दृढ़ निश्चय के साथ कार्य किया । राजकोषीय स्थिति को ठीक करने, विनिमय दर के समायोजन और सुधार, मौद्रिक लक्ष्यो तथा मद्रा-स्फीति नियत्रण आदि ने तुरत उपायो का रूप धारण किया, जिससे व्यापक आर्थिक स्थिरता आ सके । इस प्रकार वर्ष 1991-92 मे प्रारभ की गयी सरचनात्मक समायोजन और व्यापक आर्थिक स्थिरीकरण की प्रक्रिया को 1992-93 मे समेकित किया गया। सरकार ने आर्थिक उदारीकरण की जिस प्रक्रिया को प्रारम्भ किया था, उससे अर्थव्यवस्था को गति

मिली है। यद्यपि एक वर्ग ऐसा भी है जो इन आर्थिक सुधारो का प्रभाव स्थिर या नकारात्मक मानता है, क्योकि इन आर्थिक सुधारो के बाद भी औद्योगिक मन्दी बरकरार रहीं । इसका कारण यही था कि आर्थिक सुधार जिस गति से प्रभावी हो रहे थे, वित्तीय सुधार उस अनुपात मे धीमे थे । वित्तीय सुधारो के बिना आर्थिक सुधारो का वांक्षित परिणाम सभव नहीं था । औद्योगिक मन्दी समाप्त करने के लिए वित्तीय सुधार भी आवश्यक था । इसी दृष्टि से भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री सी0 रगराजन ने वित्तीय वर्ष 1993-94 की द्वितीय छमाही के लिए 11 अक्टूबर 1993 को नई मौद्रिक एव साख नीति की घोषणा की।

घोषित नई नीति मे वैधानिक तरलता अनुपात मे कमी की गई है । यह कमी वर्तमान 37 25 प्रतिशत मे से 2 5 प्रतिशत घटाकर 34 75 प्रतिशत कर दिया गया है । वैधानिक तरलता की यह दर 16 अक्टूबर, 1993 से लागू होगी तथा यह घटी हुई दर 17 सितम्बर, 1993 तक की देनदारी के स्तर पर लागू मानी जायेगी । यदि 17 सितम्बर 1993 के बाद देनदारी मे कोई बढोत्तरी होती है तो तरलता अनुपात 30 प्रतिशत के स्थान पर 25 प्रतिशत होगा । इससे बैंको की व्यवसायिक पूजी मे रूपये 4150 करोड की बढ़ोत्तरी हो जायेगी । 7 अप्रैल, 1993 को तरलता अनुपात मे की गई कमी से घटी राशि को निकाल दिया जाय तो यह बढ़ोत्तरी रूपये 3050 करोड के बराबर बैठती है । सरकार ने 7 अप्रैल, 1993 को एक घोषणा के माध्यम से वैधानिक तरलता अनुपात को तीन वर्ष मे घटाकर 25 प्रतिशत पर लाने का निर्णय किया था । अप्रैल मे घोषित मौद्रिक एव साख नीति के तहत इसे चार चरणो मे 37 75 प्रतिशत से घटाकर 36 75 प्रतिशत तक लाना था । इसके पहले और दूसरे चरण को पहले ही व्यवहार मे लाया जा चुका है, किन्तु अब नये निर्णय से ये स्वत स्थगित हो जायेगे । भारतीय रिजर्व बैंक ने इस तरह की पहली कटौती जनवरी-मार्च, 1992 मे की थी, तब तरलता अनुपात की दर बहुत ऊँची थी, लगभग 38 5 प्रतिशत । बैंको को अपनी जमा पूजी का इतना भाग रिजर्व बैंक मे जमा रखना पडता था, किन्तु इस छूट से बैंको को अपना घाटा पूरा करने मे मदद मिल सकती है । नई नीति मे दूसरा परिवर्तन प्राथमिक क्षेत्रों के सन्दर्भ मे किया गया है । इन क्षेत्रो को कर्ज देने की नीति मे बदलाव हुआ है । प्राथमिक क्षेत्रो को मिलने वाले ऋण मे से 18 प्रतिशत हिस्सा कृषि का होता है । इसमे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो तरह की

कृषि शामिल है । नई व्यवस्था के तहत प्रावधान किया गया है कि परोक्ष कृषि को मिलने वाला ऋण कृषि क्षेत्र के कुल ऋण के 25 प्रतिशत से अधिक न हो । इस नीति मे यह छूट दी गई है कि गेहू और कपास के लिए ऋण लेने वालो पर अब तक लागू कुछ नियन्त्रणो का कोई प्रावधान नहीं होगा। धान के लिए ऋण पर मार्जिन मे 15 प्रतिशत की कमी की गई है और ऋण सीमा 15 प्रतिशत बढ़ा दी गई है । तिलहन और बिनौले के लिए बैंक मार्जिन मे 15 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गई है।

भारतीय रिजर्व बैंक ने निर्यात को बढावा देने के लिए लदान पूर्व निर्यात कर्ज के लिए विदेशी मुद्रा मे ऋण उपलब्ध करने की सुविधा दी है । निर्यातको को दी जाने वाली इस ऋण की सीमा 90 प्रतिशत तक होगी । पहले यह सीमा 100 प्रतिशत तक थी । इसके अतिरिक्त कम्पनियो को तीन महीने से एक साल मे पूर्ण भुगतान के ऋण पत्र जारी करने की अनुमति भी दी गई है, जिससे वे बैंक ऋणो पर ही निर्भर न रहे । प्रवासी भारतीयो के रूपया मुद्रा खातो पर ब्याज दर 1 प्रतिशत घटा दिया गया है । विदेशी मुद्रा खाता योजना के अन्तर्गत एक साल से अधिक और 2 साल से कम की अवधि मे परिपक्वता गारन्टी के अन्तर्गत निकाली जाने वाली धनराशि को योजना को समाप्त कर दिया गया है । यह 12 अक्टूबर 1993 से प्रभावी हो गई ।

कृषि क्षेत्र को अधिक साख, ऋण सुवधिाए उपलब्ध्य कराने के लिए **'नाबार्ड'** की ऋण सीमा बढ़ा दी गई है । यह बढ़ोत्तरी रूपये 400 करोड की होगी अर्थात् वर्तमान रूपये 3300 करोड से बढकर यह धनराशि रूपये 3700 करोड हो गई है । भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंको को यह निर्देश दिया है कि बैंक व्यापारिक कर्जो के लिए बहुत अधिक ब्याज दर न वसूले । बैंक रूपये दो लाख से अधिक कर्ज पर ब्याज - दर स्वय तय करने के लिए स्तन्त्र हैं, किन्तु इस सन्दर्भ मे तर्क सगत एव सकारात्मक माप दण्ड अपनाए जाने की आवश्यकता है । यह बैंक प्रबन्धक का दायित्व है कि वे इस तरह व्यवस्था करे, जिससे ऋण स्वीकृत करने के अधिकारो का औचित्य पूर्ण उपयोग हो । बैंको को कर्ज के लंबित प्रस्तावो और नवीकरण के लिए पडे प्रस्तावो को ज्यादा से ज्यादा तीन महीने के भीतर निपटा देना चाहिए ।

इस तरह यह स्पष्ट है कि वर्तमान समय मे मौद्रिक एव साख नीति पूर्व घोषित आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अनुरूप नरसिहम् समिति की सस्तुतियो को दृष्टि मे रखते निर्माण किया जा रहा है ।

अध्याय - 5

कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एवं साख नीति

(MONETARY AND CREDIT POLICY OF RBI FOR AGRICULTURE AND RURAL SECTOR)

प्रस्तुत अध्याय मे कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के सन्दर्भ मे भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा एव साख नीतियों का विवेचना किया जायेगा । यह आवश्यक होगा कि प्रारम्भ मे हम ग्रामीण ऋणग्रस्तता की स्थिति को स्पष्ट कर दे, जो भारतीय अर्थव्यवस्था के ग्रामीण क्षेत्रों मे साख नीति के निर्माण हेतु उपयोगी होगा । कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र मे भारतीय रिजर्व बैंक के अतिरिक्त अन्य एजेन्सियों का विवरण देना भी आवश्यक होगा, जो कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के विकास हेतु साख प्रदान करती है। इस विश्लेषण के साथ भारत मे कृषि-साख व्यवस्था की विवेचना भी महत्वपूर्ण होगी । इन विश्लेषणों के साथ कृषि एव ग्रामीण क्षेत्रों मे मुद्रा एव साख नीति की विवेचना कृषि साख हेतु की जायेगी ।

5 1 ग्रामीण ऋणग्रस्तता एव भारतीय रिजर्व बैंक तथा कृषि वित्त

भारत मे ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या काफी लम्बे समय से चली आ रही है। ग्रामीणों एव कृषिकों पर साहूकारों एव जमीदारों द्वारा दिए गये ऋण का भारी बोझ है । यह ऋण पीढ़ी दर पीढी चलता रहता है, साथ ही साथ ब्याज भी बढता रहता है। यह अनुत्पादक ऋण होता है। हेनरी वोल्फ के अनुसार, यह देश महाजनों की मुट्ठी मे है। यह कर्ज का बन्धन ही है कि कृषि का विकास रूकी हुई सी अवस्था मे है । अधिकाश कृषक परिवारों के लिए आज भी ऋणग्रस्तता एक समस्या बनी हुई है । 1875 मे डेकन रैयट्स कमीशन ने अनुमान लगाया था कि देश का एक तिहाई किसान ऋण ग्रस्त है और प्रति व्यक्ति ओसतन रू0 371 कर्ज है।[1] एडवर्ड मैकलेन ने सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत के लिए ग्रामीण ऋण का अनुमान रू0 300 करोड लगाया था ।[2]

---

1. Deccan Ryots Commission Report, p. 29.

2. Bombay Banking Enquiry Committee Report, p. 58.

ग्रामीण ऋणग्रस्तता स्वतत्रता प्राप्ति के बाद भी इसी रूप मे बनी थी और आज भी यह समस्या भयावह रूप से विद्यमान है । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा गठित 'ऑल इण्डिया रूरल क्रेडिट सर्वे' मे 1951-52 मे अपनी एक जाच मे कुछ महत्वपूर्ण आकडे प्रस्तुत किये है, जिसमे से मुख्य बातें है [3]- पहला, ग्रामीण क्षेत्र मे ऋणग्रस्त परिवारों का अनुपात 51 7 प्रतिशत है। दूसरा, ग्रामीण परिवारों का लगभग 63 प्रतिशत ऋणग्रस्त है और प्रति परिवार औसतन रू0 283 का ऋण है। तीसरे, बडे जोत के किसानों की तुलना मे छोटी जोत के किसानों पर ऋण का भार बहुत अधिक है। चौथे, बिना चुकता कर्ज प्रति परिवार रू0 29 से रू0 1,200 के बीच है ।

'आल इण्डिया रूरल डेब्ट एण्ड इनवेस्टमेट सर्वे 1961-62' के अनुसार, सम्पूर्ण देश मे प्रति परिवार औसतन रू0 654 का कर्ज है । 30 जून, 1962 को भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार भारत मे रू0 2,779 करोड ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाया गया अर्थात् लगभग 75 प्रतिशत किसान ऋणग्रस्त थे । 1971 मे पजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जहा हरित क्रांति का प्रभाव था, को छोड कर शेष भारत मे लगभग 70 प्रतिशत किसान ऋणग्रस्त थे । 1971-72 मे भारतीय रिजर्व बैंक के सर्वे 'आल इण्डिया रूरल डेब्ट एण्ड इन्वेस्टमेट' के अनुसार लगभग 43 प्रतिशत परिवार ऋणग्रस्त थे, जब कि 1961-62 मे लगभग 63 प्रतिशत लोग ऋणग्रस्त थे, 1971-72 के सर्वे मे दिखाया गया है कि जून 1971 मे कुल ग्रामीण ऋण रू0 3848 करोड था । यू0 एन0 आई0 के सर्वे (1975) यह प्रदर्शित करता है कि लगभग 65 से 70 प्रतिशत छोटे किसान, ग्रामीण हरिजन और आदिवासी ऋणग्रस्त है, और ग्रामीण साहूकारों, महाजनों द्वारा स्वतत्र रूप से उनका शोषण किया जा रहा है इस सर्वे के अनुसार, प्रति परिवार औसतन रू0 250 से रू0 500 के बीच ऋण था ।

ग्रामीण क्षेत्र और विशेषकर किसानों मे ऋणग्रस्तता की समस्या होने का मुख्य कारण है, कृषि उपज का स्तर और किसानों का आय स्तर नीचा है, जिससे वे अपने उपभोग सम्बधी आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं कर पाते । जब तक किसानों की आय मे वृद्धि नहीं होगी, तब तक किसान ऋणग्रस्त ही रहेगे । ऋणग्रस्तता एक ऐसा रोग है, जिसका प्रभाव सिर्फ

---

3. Pural Credit Survey Committee Report, para II.

किसानों के आर्थिक जीवन पर ही नहीं पडता है, बल्कि उनके सामान्य तथा नैतिक जीवन पर भी पडता है । कृषक हमेशा ऋण के भार से दबे रहने के कारण मशीनों, अच्छे बीज, रासायनिक खाद आदि का प्रयोग करने मे अपने को असमर्थ पाता है, अर्थात् साधनों का अभाव रहता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उसकी उत्पादिता पर पडता है । इसके अलावा भी ग्रामीण क्षेत्रों मे ऋणग्रस्तता के अनेक कारण है, जिनमे से अधिकाश कारण परपरागत है। इनमे से मुख्य कारण निम्नलिखित है -

(1) **पैतृक ऋण** - ग्रामीण ऋणग्रस्तता का एक प्रमुख कारण पैतृक ऋण है, जो उचित प्रतिबध के अभाव मे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहता है । उत्तराधिकारियों को ऋण तभी चुकाना पडता है, जब कि यह मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति भी लेता हो और वह भी ऋण सीमा या देन दारी प्राप्त सम्पत्ति के मूल्य तक ही सीमित रहता है ।

(2) **कृषि जोतों का उपविभाजन एवं अपखडन** - कृषि क्षेत्र के उपविभाजन तथा अपखडन के कारण उनके जोतों का आकार पीढ़ी दर पीढी छोटे होते जा रहे है, जिसके कारण उससे प्राप्त उत्पादन उनके जीवन निर्वाह के लिए भी कम पडता है, ऐसे मे कोई अतिरिक्त खर्च उन्हे कर्जदार बना देता है । डार्लिंग के अनुसार [4] बिना ऋण लिए एक छोटे जोत द्वारा एक कृषक को अपने परिवार को पालने के लिए चतुराई परिश्रम एव अल्पव्यय का सहारा लेना पडता है । अन्यथा वह ऋणग्रस्तता का शिकार हो जाता है ।

(3) **कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति** - दयनीय आर्थिक स्थिति के फलस्वरूप कृषक नवीन तक्नीक को अपना नहीं पाते और अल्प उत्पादिता पर ही उन्हे सतोष करना पडता है । आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण उपभोग ऋण कृषकों की सख्या ज्यादा होती है, जिससे उत्पादन और उत्पादिता वृद्धि पर कोई प्रभाव नही पडता ।

---

4. Darling, M.L. - Peasantry in Prosperity and Debt p. 262.

(4) **कृषि पर जनसख्या का अतिभार** - हमारे देश मे जनसख्या जिस तेजी से बढ़ रही है, वह सभी क्षेत्रों के लिए खतरनाक है, ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र भी उससे अछूता नही है । फलस्वरूप कृषि पर जनसख्या का भार और भी बढ़ता जा रहा है । जिससे प्रतिव्यक्ति आय मे लगातार कमी होती जा रही है ।

(5) **सामाजिक रीति-रिवाज** - विवाह, धार्मिक उत्सव, जन्म, मृत्यु आदि ऐसे सामाजिक रीति-रिवाज है, जिन पर कृषक काफी अधिक धन अनावश्यक एव अनुत्पादक व्यय करता है। इस अतिरिक्त खर्च के लिए एक गरीब किसान एव खेतिहर मजदूर ऋण लेने के लिए विवश हो जाता है।

(6) **कृषकों की अज्ञानता एव अशिक्षा** - अज्ञानता एव अशिक्षा के कारण ग्रामीण ऋणग्रस्तता की स्थिति और भी दयनीय होती जा रही है। अशिक्षा किसानों की प्रगति मे एक बहुत बडी बाधा है । अपनी अज्ञानता के कारण किसान बडी आसानी से धुर्त एव चतुर महाजनों के चगुल मे फस जाते है ।

(7) **कृषि का प्राकृतिक ससाधनों पर निर्भरता एव दैविक प्रकोप** - भारत मे अधिकाश कृषि अब भी वर्षा पर निर्भर रहती है । बाढ़,अग्नि, सूखा, तूफान, टिड्डी दल आदि के आक्रमण से बचाव के लिये एक गरीब कृषक कृत्रिम साधनों का उपयोग करने के लिए ऋण का सहारा लेता है । एक छोटे जोत का कृषक केवल तभी ऋण से मुक्त रह पाता है, जिस वर्ष कोई प्राकृतिक आपदा न हुई हो ।[5]

(8) **उच्च ब्याज दर के कारण** - ग्रामीण महाजनों की ब्याज की उँची दर भी कृषक को उधार लेने के लिए विवश करता है, क्योंकि वे ब्याज के भुगतान के लिए पुन ऋण लेते है । यह ब्याज दर भी अलग - अलग स्थानों मे अलग - अलग है और आवश्यकतानुसार तय होता है ।

---

5. Baroda Banking Enquiry Committee Report, p. 34.

(9) **महाजनों के ऋण देने के मनमानी तरीके** - कृषि वित्त की पूर्ति मुख्यत ग्रामीण सेठ, महाजनों और साहूकारों द्वारा ही किया जाता है। यहा तक कि बहुत से ग्रामीण कृषकों का महाजनों के यहा चालू खाता खुला रहता है। वे गरीब किसानों की सदैव वित्तीय मदद करते है, बदले मे हमेशा के लिए महाजनों के चगुल मे फस है और महाजन उनका शोषण करते रहते है ।

(10) **भूमि एवं सिचाई पर ऊँचे कर** - सरकार की भूमि राजस्व नीति भी ऋणग्रस्तता के लिए जिम्मेदार है । किसान को अपने उत्पादन से इतनी आय नहीं प्राप्त होती कि उँचे कर का भुगतान कर सके । इस कर को भरने के लिए किसान को ऋण लेना पडता है

(11) **पर्याप्त विपणन सुविधा का अभाव** - भारतीय किसानों के लिए अब भी ऐसा बाजार उपलब्ध नहीं है, जहा उनके उत्पादन का उचित मूल्य उन्हे प्राप्त हो सके । उनसे साहूकार या बनिये बहुत ही निम्न दर पर उनके उत्पादन खरीद लेते है और अभाव या जरूरत के समय इन्हीं किसानों को वे ऊचे दर पर बिक्री करते है।

उपर्युक्त के अलावा अन्य बहुत से क्षेत्रीय कारण भी होते है, जो एक कृषक को ऋणग्रस्त बना देते है। चूंकि ज्यादातर ये ऋण अनुत्पादक कार्यो के लिये होते है अत इनकी अदायगी समय से नहीं हो पाती है और न ही इनका आर्थिक विकास मे कोई योगदान होता है । प्रो0 पी0 ए0 वाडिया के अनुसार किसानों की आय का कोई अतिरिक्त स्रोत न होने के कारण वे हर मौसम मे उधार लेते रहते है, इस प्रत्याशा से कि उनकी ऋणग्रस्तता कम हो जायेगी । भारतीय किसानों के बारे मे यह कहा जाता है कि उनको महाजन उधार लेने के लिये, वकील झगडा करने के लिये और व्यापारी फिजूल खर्ची करने के लिये उकसाते है ।

चूंकि कृषि हेतु साख आवश्यक है, अत यह महत्वपूर्ण है कि साख सस्ता और सुरक्षित हो। इस सम्बध मे राज्य सरकार तथा वित्तीय सस्थाओं का यह फर्ज हो जाता है कि वह उन सभी सावधानियों को बरतें, जिससे कृषि साख निर्धारित लक्ष्य तक सस्ते सुरक्षित और उत्पादक रूप मे हों।

सामान्यतया कृषकों को साख की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है -

पहला, कृषकों को दीर्घकालीन विनियोग के लिए यथा, भूमि क्रय, भूमि मे स्थायी सुधार करने, जल निकासी व्यवस्था करने, मेड-बदी करने, नये पम्पसेट एव अन्य सिचाई सुविधाओं को प्राप्त करन तथा उन्हे अधिक उत्पादक बनाने हेतु एक निश्चित पूजी की आवश्यकता हो सकती है ।

दूसरा, मध्य कालीन उपकरण साख पशुओं, उपकरणों, मशीनरी के क्रय करने तथा कुआ आदि खोदन, पम्पसेट लगाने, डेयरी, मुर्गी पालन,पौध-रोपड आदि के लिए आवश्यकता होती है ।

तीसरा, बीजों, खादों, उर्वरकों तथा उपकरणों के रखरखाव एव भूमि के चालू खर्चो पर कार्यशील पूजी की आवश्यकता होती है । इस तरह का वित्त उत्पादन तथा उपभाग दोनों दृष्टि स हो सकती है, क्योंकि कृषकों का अपने दैनिक जरूरतों को पूरी करने की आवश्यकता होती है। इसी तरह इसके अतिरिक्त विपणन वित्त की आवश्यकता होती है , जिससे कृषक अनुकूल समय आन पर अपने उत्पाद का विक्रय कर सके । अन्तत फसलों मे क्षति हो जाने तथा अन्य राहत कार्यो के दृष्टिकोण से यथा, प्राकृतिक आपदा, बाढ, भूमिक्षरण आदि के लिए भी वित्त की आवश्यकता पडती है ।

खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धिशील प्रवृत्ति मे उतार - चढाव एक विशेषता है । अच्छे मानसून के परिणामस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन बढ़ता है, जब कि खराब मानसून के परिणामस्वरूप घटता है। 1970-71 के दौरान 108 4 मिलियन टन के उच्च उत्पादन स्तर की तुलना मे 1972-73 के दौरान, जो सूखे का वर्ष था, खाद्यान्न उत्पादन मे 11 4 मिलियन टन की कमी आयी । इसी प्रकार 1978-79 मे हुए 131 9 मिलियन टन उत्पादन की तुलना मे 1979-80 मे 22 2 और 1983-84 मे हुये 152 4 मिलियन टन की तुलना मे 1987-80 मे 12 0 मिलियन टन की कमी आई । शताब्दी के भयकर सूखे के दौरान खाद्यन्न उत्पादन मे अपेक्षाकृत न्यूनतम गिरावट यह दर्शाती है कि भारतीय कृषि मे अन्तर्निहित लचीलापन है और इसमे समयावश्यक उत्पादन कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने की अच्छी क्षमता है । अत विकास की नीति ऐसी होनी चाहिए कि वह उतारों को दीर्घावधि

मे कम करने की दिशा मे बढ सके । सूखा पडने से कृषि पैदावार और आय मे भारी कमी हो जाती है, जिससे काफी सख्या मे कृषक बेरोजगार हो जाते है । इसका सबसे खराब असर ग्रामीण निर्धनों पर पडता है, जिनमे भूमिहीन मजदूर और लघु तथा सीमान्त कृषक शामिल है और ये ही सर्वाधिक असुरक्षित है । बार-बार सूखा पडने से कृषक - ऋणकर्ता और ऋण सस्थाए दोनों ही प्रभावित होते है, क्योंकि इससे निधियो का पुनर्चक्रीकरण मुश्किल हो जाता है । अत विकास एजेन्सियों को ग्रामीण क्षेत्रों मे लाभप्रद रोजगार प्रदान करने वाली कृषि इतर गतिविधियों को प्रोत्साहित करने की जरूरत है ।

भारतीय रिजर्व बैंक की 1935 की स्थापना के साथ - साथ कृषि विकास हेतु इसका प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा, परन्तु इसके राष्ट्रीयकरण के बाद इसका कार्य विशेष रूप से बढ गया । मोटे तौर पर कृषि साख के तीन पक्ष है अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन वित्त । इनमे से मध्यकालीन और दीर्घकालीन साख वित्त भारतीय रिजर्व बैंक के अधीन है । जब कि अल्पकालीन साख मे भारतीय रिजर्व बैंक अन्य व्यापारिक बैंकों के साथ सहयोग देता है । भारतीय रिजर्व बैंक सीधे कृषि क्रियाओं का वित्तीयन नही करता, किन्तु यह अपने कृषि विभाग एव नाबार्ड द्वारा विभिन्न वित्तीय सस्थाओं का पुनर्वित्तीयन करता है । इस उद्देश्य के लिए भारतीय रिजर्व बैंक मे कृषि साख विभाग की स्थापना की गयी, जिसका प्रमुख उद्देश्य कृषि साख की आवश्यकताओं को पूरा करने के सम्बध मे विशेषज्ञों का अध्ययन दल तैयार करना है । केन्द्र एव राज्य सरकारों को सुझाव देना एव सहकारी बैंकों का विशेष सचालन करना है । ग्रामीण क्षेत्रों मे अन्य एजेन्सियों के साथ सहकारी बैंकों के कार्यो का निरीक्षण करना है । व्यापारिक बैंको तथा उनके साथ सहकारी बैंकों मे कृषि क्रियाओं के लिये समन्वय स्थापित करना है । यहा पर 'आल इण्डिया रूरल क्रडिट सर्वे कमेटी' का उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा, जिसकी प्रमुख प्राप्तिया इस रूप मे रही कि अपने कार्यावधि के समय मे भी सहकारी साख समितिया कृषि साख मे बहुत कम योगदान कर रही है । दूसरे, कुल मिलकार इससे बडे किसान ही लाभान्वित हुये है। ऋण अब भी प्रतिभूतियों एव आदेयों के आधार पर है, न कि उत्पादक आवश्यकताओं के आधार पर । इस समिति ने सह साख

सस्थाओं के पुनर्संरचना हेतु कुछ सुझाव भी दिये है । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र मे अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन साख के विवरण को जो सहकारी बैंक, स्टेट बैंक, तथा कृषि पुनर्वित्त एव विकास निगम को दिया गया ,उसे सारणी 5 । मे दिखाया जा सकता है ।

सारणी 5 ।

सहकारी समितियों, स्टेट बैंक और कृषि पुनर्वित्त एव विकास निगम को भारतीय रिजर्व बैंक का साख

(रूपये करोड मे)

वर्ष	अग्रिम	राशिया
1951 - 52	11 99	7 81
1955 - 56	23 80	12 98
1959 - 60	100 95	75 54
1960 - 61	146 66	89 40
1961 - 62	192 92	122 80
1962 - 63	220 28	134 22
1964 - 65	283 49	148 63
1965 - 66	150 10	172 17
1968 - 69	790 20	- -
1972 - 73	831 68	246 29
1973 - 74	744 37	367 19
1974 - 75	1105 80	533 56
1977 - 78	1052 00	814 00
1978 - 79	1125 00	780 00
1979 - 80	1199 00	819 00

स्रोत - Report on Currency and Finance, Various Issues.

सारणी से यह स्पष्ट है कि 1951-52 से भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी साख समितियों, स्टेट बैंक और कृषि पुनर्वित्त एव विकास निगम को दिये गये अग्रिम वर्ष 1974-75 तक लगातार बढ़ते रहे, जब कि 1977-78 से इन मे कमी आने लगी। इसका प्रधान कारण यह रहा है कि बैकों के राष्ट्रीकरण के बाद व्यापारिक बैंको तथा ग्रामीण बैंकों द्वारा कृषि विकास हेतु साख प्रदान किया जाने लगा ।

जहा तक अल्पकालीन साख का सम्बन्ध है, भारतीय रिजर्व बैंक, राज्य सहकारी बैंकों को मौसमी कृषि साख के वित्तीयनहेतु प्रदान करता है और साथ ही साथ फसलों के विपणन क्रय तथा उर्वरकों के वितरण आदि हेतु वित्तीयन करता है। इस अल्पकालीन साख का प्रमुख रूप से दो उद्देश्य है - एक, जहा तक सम्भव हो सके कृषि साख आवश्यकताओं को पूरा करना और दूसरे सहकारी साख सरचना को तैयार करना, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा कर सके । इसमे भारतीय रिजर्व बैंक की दो प्रमुख शर्ते एक तो गैर बकाया और दूसरा आवश्यक वातावरण का होना है। यहा यह उद्देश्य रखा गया कि अग्रिमों और बकाया मे बहुत अन्तर नही होना चाहिए । इसका अभिप्राय यह है कि सहकारी बैंक अधिक से अधिक अपने ससाधनों द्वारा कृषि ऋण पूरा करे और इसमे साख की सीमाओं का निर्धारण उधार लेने वाले सस्थाओं , उसके निजी वित्त, जमाओं तथा तरल ससाधनों को रखने एव ऋणों की वसूली आदि पर निर्भर करेगा। 1951 मे इस तरह का अल्पकालीन साख रू0 57 6 करोड का था, जो 1969-70 म बढ़कर रू0 370 करोड हो गया और यह 1978 मे बढ़कर रू0 961 करोड और 1979 - 80 मे रू0 945 करोड हो गया । इस तरह स्वीकृति धनराशि और बकाये के विवरण को हम सारणी 5 2 मे प्रस्तुत कर सकते है ।

मध्यकालीन साख का वितरण राष्ट्रीय कृषि साख फड द्वारा कृषि सुधार हेतु प्रदान किया जाता है । यथा, भूमि विकास हेतु निर्माण तथा सिचाई ससाधनों के रख रखाव हेतु, मशीनों उपकरणों, यातायात साधनों तथा उर्वरकों को क्रय करने हेतु, कृषि फार्म भवनों आदि के निर्माण हेतु तथा पशुपालन एव मुर्गीपालन हेतु, जो आर्थिक रूप से कमजोर कृषक है, उनके लिए प्रदत्त किया जाता

सारणी 5 2

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी बैंकों को अल्पकालीन समायोजन

(रूपये करोड मे)

वर्ष	स्वीकृति राशिया	बकाया राशिया
1950 - 51	7 6	--
1955 - 56	30 0	13.0
1060 - 61	112 0	101 0
1965 - 66	213 0	144 0
1969 - 70	370 0	214 0
1974 - 75	613 8	776 0
1977 - 78	845 0	325 0
1978 - 79	961 0	277 0
1979 - 80	945 0	222 0

स्रोत - Report on Currency and Fınance, Varıous Issues.

है । इस तरह ऋणों को 15 माह से 5 वर्ष के समयावधि के लिए प्रदान किये जाते है । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा मध्यकालीन ऋणों के विवरण को सारणी 5 3 मे दिखाया जा सकता है ।

सारणी से स्पष्ट है कि 1979-80 मे मध्यकालीन साख की सीमा 149 करोड थी, जब कि यह 1978-79 मे केवल 70 करोड ही थी और इसी तरह 1979-80 मे आहरण तथा बकाया धनराशि क्रमश 109 करोड तथा 158 करोड था ।

सारणी 5 3

मध्य कालीन ऋण

(रुपये करोड मे)

वर्ष	स्वीकृत	आहरण	बकाया राशिया
1954 - 55	0 27	-	-
1955 - 66	0 31	-	-
1960 - 61	5 00	4 00	9 00
1965 - 66	14 00	7 00	15 00
1967 - 68	16 00	9 00	16 00
1969 - 70	18 00	13 00	20 00
1970 - 71	17 54	10 19	-
1972 - 73	8 72	-	16 88
1973 - 74	11 77	6 03	19 91
1974 - 75	98 87	4 58	15 65
1876 - 77	66 00	103 00	97 00
1977 - 78	121 00	115 00	161 00
1978 - 79	70 00	48 00	119 00
1979 - 80	199 00	109 00	158 00

स्रोत - Report on Currency and Fınance, Varıous Issues.

भारतीय रिजर्व बैंक अपने राष्ट्रीय कृषि साख फड द्वारा मध्यकालीन ऋणों मे अल्पकालीन ऋणों को परिवर्तित करके मध्यकालीन फसलों के उत्पादन हेतु देता है । अल्पकालीन ऋण को

सहकारी ग्रामीण ऋण एजेंसियों को निम्न ब्याज पर उधार देना और प्रतियागी दरों पर जमाराशिया जुटानी होंगी, तब तक उनके लिये अपने जमा सग्रहण और उधार के कार्यकलापों का विस्तारण करने मे अदरूनी निरूत्साह रहेगा । ऋण आवश्यकताए पूरी करने के लिये पर्याप्त जमाराशिया जुटाने मे सहकारी ऋण समितियों के असमर्थ होने के फलस्वरूप नाबार्ड भारतीय रिजर्व बैंक मे पुनर्वित्तीयन का अधिकतर आश्रय लेना आवश्यक हुआ है। [6]

सारणी 5 4

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी सस्थाओं को दीर्घ कालीन साख

(रूपये करोड मे)

वर्ष	स्वीकृति सीमा	आहरण	बकाया राशिया
1972 - 73	46 29	48 69	100 05
1973 - 74	31 02	310 02	122 00
1974 - 75	48 37	48 37	158 20
1976 - 77	81 30	81 30	271 30
1977 - 78	86 00	86 00	328 00
1978 - 79	94 00	94 00	384 00
1979 - 80	105 00	100 00	439 00

स्रोत - Report on Currency and Finance, Various Issues.

6. Reserve Bank of India, Annual Report, 1991 - 92, pp. 95 - 96.

इस तरह भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कृषि साख को सहकारी साख सस्थाओं द्वारा दिये जाने के उद्देश्य को हम प्रोत्साहन तथा सलाहकार के रूप मे, पुनर्वित्तीयन की सुविधा के रूप मे तथा कार्यो की नियत्रक के रूप मे दे सकते है । अपने इस कार्य को सम्पादित करने मे भारतीय रिजर्व बैंक ने अनेक उपायों को लिया है, जिसका उद्देश्य सहकारी साख सस्थाओं के क्रिया कलापों मे सुधार लाने से है और उन्हे मजबूत वित्तीय आधार देने से है । इनका मुख्य उद्देश्य इस बात से है कि सहकारी साख सस्थाए अधिकतर साख का प्रवाह ग्रामीण जनसख्या के कमजोर वर्गो मे प्रवाहित करे और साख का क्षेत्र मजबूत हो । इसके साथ - साथ अन्य एजेन्सियों यथा, कृषि सेवा समितिया बडे एव बहु उद्देश्यीय समितिया तथा कृषि साख सघन विकास कार्यक्रम है, जिन सभी को अन्तत जिला साख नियोजन मे सम्मिलित कर दिया गया है।

कृषि साख के वित्तीयन हेतु प्रथम पचवर्षीय योजना के क्रियान्वयन तक भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा विशेष व्यवस्था पर ध्यान नही दिया गया था । 1951 के विकासात्मक नियोजन के प्रारम्भ तक भारतीय रिजर्व बैंक का कृषि वित्तीयन बहुत ही अपर्याप्त तथा अप्रत्यक्ष था । इसमे यद्यपि अलग से कृषि साख विभाग था, किन्तु इसका मुख्य कार्य शोध था, न कि कृषि वित्तीयन। भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य रूप से कृषि प्रधान होने के कारण भारतीय रिजर्व बैंक ने महत्वपूर्ण रूप से कृषि साख सुविधाओं की उपलब्धता के विस्तार और उसकी आवश्यकताओं का अनुभव किया। अपने इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने एक विशेष रूप मे कृषि साख विभाग का निर्माण किया, जिसके मुख्य कार्य निम्नलिखित है-

1 केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, सहकारी बैंक तथा अन्य वित्तीय सस्थाओं के परामर्श से कृषि साख सम्बधी विभिन्न पहलुओं का विशेषज्ञों द्वारा अध्ययन करना ।

2 कृषि साख के सम्बध मे भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यो का समन्वय करना, विशेषकर राज्य सहकारी बैंकों तथा अन्य सस्थाओं के साथ, जो कृषि साख मे योगदान करते है ।

3 राज्य सहकारी बैंकों तथा अन्य ग्रामीण साख एजेन्सियों के माध्यम म कृषि फसलों और कृषि कार्यो का वित्तीयन करना ।[7]

इस सम्बध मे एम0 एल0 डार्लिग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट मे सहकारी मार्ग की कुछ अनियमिताओं को स्पष्ट किया गया है और ग्रामीण महाजनों के ऊंचे व्याज दर और उनके अन्य व्यवसायिक कार्यो को नियत्रित करने के सम्बध मे यह विचार रखा कि सहकारी आन्दोलन ही कृषि वित्त की महत्वपूर्ण एजेन्सी हो सकती है । इस तरह से सहकारी साख सस्थाए ही सुधरे और परिवर्तित रूप मे ग्रामीण साख सुविधाओं मे उपर्युक्त योगदान कर सकती है। कृषि साख का विस्तृत स्वरूप 'ऑल इण्डिया रूरल क्रेडिट सर्वे' मे स्पष्ट किया गया है ।[8] भारत सरकार ने एक लघु कृषक व्यापार सघ बनाने का निर्णय लिया है, जो विभिन्न प्रकार के कृषि व्यापारों की सहायता द्वारा ग्रामीण इलाकों मे आयोपार्जन और रोजगार हेतु अभिनव विचारों को समर्थन देगा ।

5 2 कृषि एवं ग्रामीण साख हेतु वित्तीय एजेन्सिया

देश की स्वतत्रता के बाद नियोजित अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ मे 'ऑल इण्डिया रूरल क्रेडिट सर्वे कमेटी' मे यह पाया गया कि 1951-52 मे साख के मुख्य रूप से दो स्रोत प्रधान थे पहला, महाजन और दूसरा, ऋण ग्राहक के सम्बधी, जो दोनों मिलाकर के कुल साख का लगभग 84 प्रतिशत

---

7. The RBI - Function and Working, Bombay - p 70.
8. "Today agricutural credit that is supplied falls short of the right quantity, is not of the right type, does not serve the right prupose and by the criterion of need (not overlooking the criterion of creditworthine-ss) often often fails to go to the right people." - C.R. Basu, Central Banking in a planned Fconomy - The Indian Experiment, 1978. p. 147.

प्रदत्त करते थे। सरकार, व्यापारिक बैंक तथा सहकारी बैंक केवल 7 6 प्रतिशत साख प्रदान करते थे। इस सम्बन्ध मे प्राथमिक आधार पर भारत की ग्रामीण क्षेत्र मे एजेन्सियों का विवरण निम्न चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है -

चार्ट -5 ।

ग्रामीण क्षेत्र मे वित्त एजेन्सियां
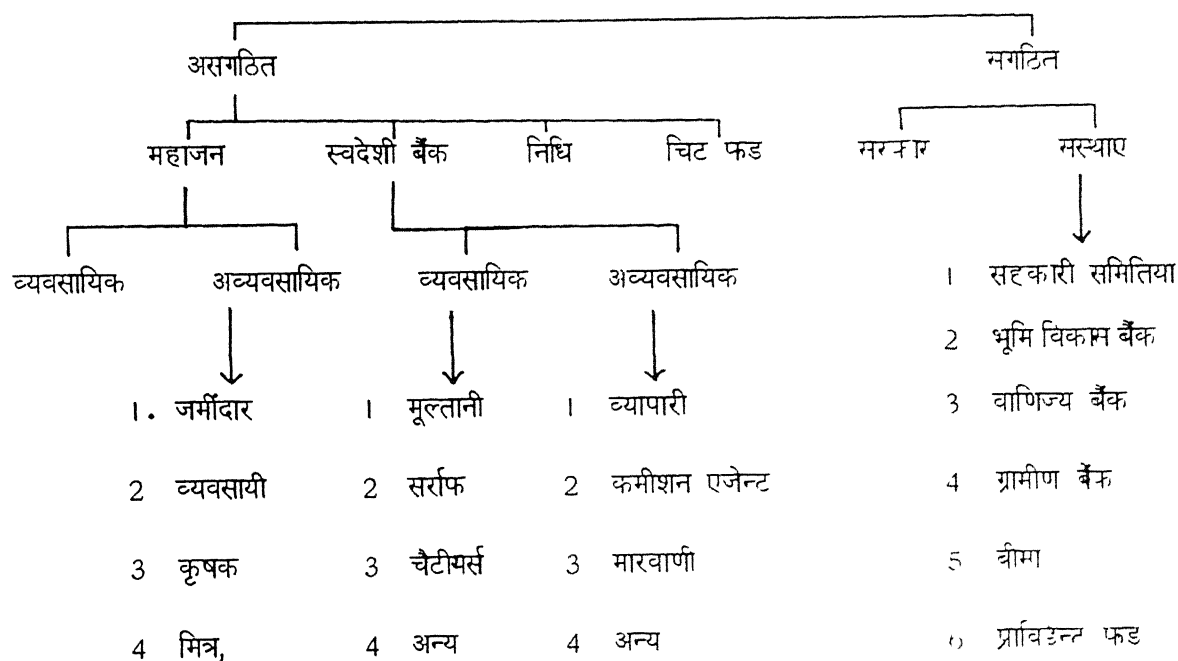
जहा तक ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र मे सगठित एजेन्सियों का प्रश्न है,वहा क्रमश 1961 के बाद से व्यापारिक बैंकों की स्थिति मे काफी सुधार हुआ है। कुल साख का जहा 1961 मे व्यापारिक बैंकों का भाग 0 3 प्रतिशत था, वह 1971 मे बढकर 2 4 प्रतिशत हो गया । यह भी उल्लेखनीय है कि कृषि क्षेत्र मे महाजनों का प्रतिशत 1961 मे 84 प्रतिशत था, वह गिरकर 1971 मे केवल 23 प्रतिशत रह गया । इस सम्बध मे 1961 से 1971 तक विभिन्न साख एजेन्सिया से कृषि परिवार द्वारा प्राप्त ऋण का विवरण सारणी 5 5 मे दिया गया है ।

सारणी 5 5

एजेन्सिया और कृषकों द्वारा लिये गये ऋण

30 जून तक

	एजेन्सिया	प्रतिशत मे 1951	1961	1971
1	**सस्थागत एजेन्सिया**	7 6	18 4	31 3
(क)	सरकार	3 9	6 7	7 1
(ख)	सहकारी समितिया	3 7	11 4	22 0
(ग)	वाणिज्य बैंक	-	0 3	2 4
(घ)	बीमा	-	--	0 1
(ड)	प्रॉविडेन्ट फण्ड	-	--	0 1
2	**गैर सस्थागत एजेन्सिया**	92 4	81 6	68 3
(क)	जमींदार	3 2	0 9	8 1
(ख)	कृषक महाजन	25 2	48 1	23.0
(ग)	व्यवसायिक महाजन	46 8	13 8	13 1
(घ)	व्यापारी	4 7	7 1	8 4
(ड)	रिस्तेदार एव दोस्त	11 4	5 2	13 1
(च)	अन्य	1 1	6 5	2 6

स्रोत - K.K. Sharma, Reserve Bank of India and Rura Credit.

इस तरह से 1951 से 1971 के बीच जो मुख्य सस्थागत साख एजन्सिया ग्रामीण कृषि साख पर अपना प्रभाव दिखाया है, वह सहकारी साख सस्थाए और व्यापारिक बैंक है । 1970 और उसके बाद सस्थागत साख एजेन्सियों का योगदान एव प्रवृत्ति, जो बढ़ते हुए ग्रामीण साख के रूप म देखा जा सकता है, उसे सारणी 5 6 मे दिखाया जा सकता है । यहा पर व्यापारिक बैंकों का समृद्धि दर सहकारी साख सस्थाओं से अधिक था ।

सारणी 5 6
कृषि क्षेत्र को सीधे प्राप्त सस्थागत वित्त

(रूपये करोड म)

साख सस्थाए	30 जून को समाप्त वर्ष पर निर्गत ऋण एव अग्रिम					
	1975	1976	1977	1978	1979	1980
1	2	3	4	5	6	7
सहकारी समितिया	1039	1187	1430	1444	1560	1744
सरकार	37	82	82	98	119	153
अनुसूचित वाणिज्य बैंक	274	405	508	569	800	1045
क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	--	2	16	44	101	100
योग	1390	1675	203	2153	2580	3042

स्रोत :- Report of the Committee to Review Arrangements for Institutional Credit for Argiculture and Rural Development (CRAFICARD) 1981, p. 476.

इस तरह भारतीय ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र मे साख की अनिवार्यता का अनुभव करत हुय भारत सरकार ने अनेक समितियों को गठित किया है, जिससे ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र म बैंकिग और साख सुविधाए प्रदान की जा सके । जहा तक अल्पकालीन एव मध्यकालीन साख का प्रश्न है, गाडगिल समिति ने अपनी रिपोर्ट मे यह सस्तुति की है कि एक कृषि साख निगम की प्रत्यक राज्य मे स्थापना होनी चाहिए, केवल उन राज्यों को छोडकर जहा सहकारी साख सस्थाए अत्यधिक क्रियाशील है । यह कृषि साख निगम एव स्वायत्त सस्था के रूप मे होगी और राज्यों का इस की पूजी का आधा हिस्सा देना होगा । इस निगम का कार्य हागा कि वह पूर सम्बधित क्षत्र म एजेन्सिया एव शाखाओं को स्थापित करे एव हर तरह की साख की पूर्ति कर । इस तरह म य सहकारी साख समितियों को वित्त प्रदान करेगी, जहा केन्द्रीय, वित्तीयन एजेन्सिया नही है और व्यक्तिगत कृषकों को भूमि बधक ऋण सीधे प्रदान करेगी । इस समिति की सस्तुतिया यद्यपि पूर क्षत्र म मान्यता नहीं प्राप्त कर सकी, विशेषकर इस रूप मे कि जिस तरह साख प्रक्रिया की बात की गयी है, वह राज्य एव केन्द्रीय बैंकों द्वारा स्वत ही प्राप्त कर ली जाती है ।

पूजी निर्माण, कार्यकलाप-विशिष्ट मूलभूत सुविधाओं के सृजन और कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिये फसल उत्पादन की नई तकनीकी अपनाने मे सस्थागत ऋण की भूमिका को अब पूरी तरह मान्यता मिल चुकी है । वर्ष 1980 और 1987 क बीच कृषि म सार्वजनिक क्षत्र के पूजी निर्माण मे 18 प्रतिशत की गिरावट आई है । इसे ऋण के अनोपचारिक स्रोतों और सस्थागत ऋण क बढ़े प्रवाह के माध्यम से उपलब्ध कराये गये निजी क्षेत्र के पूजी निर्माण द्वारा आंशिक रूप से प्रतिसतुलित किया जा सकता है । वर्ष 1977 और 1990 के बीच निवेश ऋण मे औसतन 15 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्दि हुई है । इसी अवधि मे उत्पादन ऋण मे औसतन 13 7 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है।[9]

5 3 भारत में कृषि साख व्यवस्था

अपने निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने के दृष्टिकोण से कृषि साख व्यवस्था मे निम्न बाते

9. NABARD, Annual Report, 1991-92, pp. 42-45.

होनी चाहिए -

1 कृषि साख काफी समय के लिए स्वीकृत किया जाना चाहिए, ताकि जिस उद्देश्य के लिए लिया गया है उसे पूरा किया जा सके । यह साख पूर्ति मे समानता की दृष्टिकोण अर्थात अन्य सस्थाओं की तुलना मे समान ब्याज दर रखना चाहिए ।

2 ग्रामीण और कृषि क्षेत्र मे दी जाने वाली साख पूर्णत सुरक्षित होनी चाहिए, जिससे मात्र सुविधाओं का दुर्पयोग न हो, परन्तु इसके लिए प्रतिभूति आवश्यक रूप मे भौतिक वस्तुए न हो।

3 प्रदत्त कृषि साख और कृषि की औसत उत्पादकता तथा कृषकों की क्षमता पर आधारित होनी चाहिए, विशेष कर उस परिस्थिति मे जब कृषि मे आर्थिक मन्दी की अवस्था हो ।

4 कृषि साख को उपयुक्त बैंक शाखाओं के प्रबन्धकों की जिम्मेदारी पर होनी चाहिए, जो बैंकिग एव अनुभवों तथा प्रशिक्षणों को प्राप्त कर चुके है ।

5 कृषि साख हेतु प्रतिभूतिया यदि आवश्यक हों तो व्यक्तिगत स्तर पर ऋण ग्राहक के नैतिक स्थिति तथा कृषि योग्यता पर दी जानी चाहिए ।

'ऑल इण्डिया रूरल क्रेडिट सर्वे कमेटी' ने देश मे कृषि साख व्यवस्था के सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण सुझाव दिये है, जो कृषि क्षेत्र मे साख नीति के निर्धारण मे महत्वपूर्ण हो सकते है ।[10] कृषि साख को राज्य की नीतियों के साथ जुडा होना चाहिए । साथ ही साथ यह साख की व्यक्तिगत एजेन्सियों के विकल्प मे होना चाहिए और इसके लिए पर्याप्त ससाधन होने चाहिए तथा कुशल प्रबन्धक द्वारा सचालित होना चाहिए । वस्तुत कृषि साख की प्रतिभूति भूमि के प्रतिभूति के रूप मे नहीं होनी चाहिए, अपितु प्रत्याशित कृषि उपज के आधार पर होना चाहिए । इसे इस प्रकार होना चाहिए कि गाव स्तर से ऊपर की ओर सहकारिता आधार पर विकसित होना चाहिए । प्रदत्त

---

10. L. Trady - System of Agricultural Credit and Insurance p.35.

साख को प्रभावी ढग से निरीक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, जो ऋण ग्राहक की उचित आवश्यकता एव हित को कायम रख सके । विभिन्न प्रकार के ऋणों की समयावधि एव ब्याजदर उन उद्‌दश्यों से सम्बन्धित होना चाहिए, जिसके लिए कृषि साख प्राप्त किये जाते है, यद्यपि पर्याप्त रूप मे आवश्यक उपभोग वस्तुओं के लिए भी ऋण दिये जाने चाहिए, फिर भी इन ऋणो का प्रधान लक्ष्य उत्पादन का दृष्टिकोण से होना चाहिए ।[11]

इस तरह उपर्युक्त बातों के सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि कृषि साख व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि ऋण ग्राहक इस जिम्मेदारी को ले सके कि वह ऋण की अदायगी कर सकेगा, ऐसा वातावरण उत्पन्न होना चाहिए कि ऋण ग्राहक समयानुसार अपनी शर्तो को पूरा करके अपने सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक उत्थान को कर सके । भारत की वर्तमान कृषि क्षेत्र मे कृषि साख की व्यवस्था के सम्बध मे उपर्युक्त बातों के अलावा कुछ अन्य बाते भी महत्वपूर्ण है, जो कृषकों की सुविधा की दृष्टिकोण पर आधारित है । कृषक साख व्यवस्था मे दीर्घकालीन मध्यकालीन अल्पकालीन, तीनों प्रकार की साख सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए । जिन कृषि उद्दश्यों के लिए साख ऋण दिया जाता है वह पर्याप्त होना चाहिए अन्यथा कृषको को अन्य स्रोतो से अपने स्तर पर ऋण प्राप्त करने की आवश्यकता होगी । कृषि कार्यो के लिए इस तरह के ऋण कम अवधि के अन्तर्गत उपलब्ध होने चाहिए और विशेषकर बीज, खाद तथा अन्य चालू खर्चों के लिए । इसमे अधिक समय नहीं लगाना चाहिए । इन सब कार्यो के लिए कृषि साख को लोचशील होना चाहिए अर्थात् व्यस्त मौसमों मे इसमे वृद्धि और मन्द मौसमों मे इसमे कमी की सम्भावना होनी चाहिए । ऋणों की वसूली मे ऋण न दे सकने की अवस्था मे सम्पतियों के उचित मूल्य पर विक्रय की व्यवस्था होनी चाहिए । कृषि साख व्यवस्था मे साख सस्थाओं की क्षमता एक बफर स्टाक रूप मे अथवा अनिश्चितताओं को वहन करने के रूप मे होनी चाहिए । कृषि कार्यो हेतु प्रदत्त साख पूर्णत निर्देशित तथा निरीक्षित साख होनी चाहिए । इसके लिए ऋण ग्राहक को प्रशिक्षित एव निर्देशित करने की आवश्यकता है । ऋण ग्राहक के दृष्टिकोण से साख सुरक्षित होना चाहिए अर्थात् कृषकों

---

11. Report of the Rural Credit Committee Survey, 1954, Vol-II, p. 162.

के पहुच सीमा के अन्तर्गत समयानुसार उचित मात्रा मे प्रतिभूति के आधार पर साख उपलब्ध हो और वह भी सही उद्देश्य के लिए सामान्य दर पर । इस तरह ऋण इस प्रकार होना चाहिए कि ऋण ग्राहक को यह सहयोग करे और उसकी उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करे, न कि उसको कठिनाइयों मे डाले । जहा तक कृषि साख का ऋण दाता का दृष्टिकोण है, इस सम्बध मे ऋणी के लिए प्रयाप्त प्रतिभूति होनी चाहिए ,साख का प्रवाह आसान एव लगातार तक हो सकती है । जब ऋण दाता इस बात से सुनिश्चित है कि उसके ऋण और हर तरह के बकाये का भुगतान हो जायगा, हर तरह का अपवचन, देरी कम की जा सकगी ।

उत्पादकता स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों के विश्लेषण से स्पष्ट रूप से यह प्रकट हुआ है कि राज्यों और फसलों मे असमान निष्पादन, सुनिश्चत जल आपूर्ति उर्वरक उपयोग स्तर अधिक उपजवाली किस्मों के बीज के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र के विस्तार सस्थागत कारकों आदि की उपलब्धता आदि की वजह से था । नाबार्ड, वाणिज्य बैंक और अनुसधान सस्थाओं द्वारा किये गए मूल्याकन अध्ययनों से भी निष्कर्ष रूप मे यह बात प्रकट हुई है कि जहा कार्यकलाप विशिष्ट मूलभूत सुविधाए उपलब्ध नहीं थी, वहा ऋण की उत्पादकता कम थी । ऋण को केवल उस स्थिति मे उत्पादक माना जा सकता है, जब कि सस्थागत ऋण एजेन्सियों के माध्यम से उपलब्ध कराये गए पूजी ससाधनों का वृद्धिशील उपयोग, वृद्धिशील शुद्ध आय उत्पन्न करे, जो ऋण की राशि (मूलधन तथा ब्याज) की चुकौती के लिये पर्याप्त हो तथा कृषक को भी खुशहाल दशा मे रख सके । ऋण का मूल महत्व कृषकों / ऋणकर्ताओं को सहायता पहुचाना है, ताकि वे ऐसी अनुपूरक निविष्टया प्राप्त कर सके, जिन्हे वे अपने ससाधनों से नहीं खरीद सकते । ऋण को और अधिक उत्पादक तथा और अधिक क्षमतावान बनाने के लिये यह जरूरी है कि कृषि ऋण प्रणाली एक एकीकृत ऋण प्रणाली के रूप मे कार्य करे ।

भारत मे कृषि साख की व्यवस्था की समीक्षा को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस सम्बध मे प्रशासनिक ब्याज दर की व्यवस्था कुछ चयनित क्षेत्रों एव वर्गो की दृष्टिकोण से किया गया।

चक्रवर्ती समिति ने ब्याजदर सरचना का परीक्षण किया और प्रशासनिक ब्याज दर की कमियों को दिखाया । प्रथमत यह प्रभावी साख को सवृद्धि करने मे असफल रहा और ऐसी परियोजनाओं के लिए रियायती ब्याज दरों को दिया गया, जिनकी स्थिति संदेहास्पद रही । दूसरे यह पूरी बैंकिग व्यवस्था के लिए कम लाभकारिता सिद्ध हुई ।

पूरे देश की स्थिति के सन्दर्भ मे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय मे भारत मे जो रियायती दर पर ब्याज की स्थिति है, वह कमजोर वर्गो की दृष्टिकोण स कायम रहनी चाहिए, परन्तु अन्य क्षेत्रों मे ब्याजदर नियत्रित करने का कोई औचित्य नहीं है । इस तरह स जहा तक कृषि ऋण का प्रश्न है इसमे दो वर्ग होने चाहिए पहला, सकीर्ण वर्ग, जो अलग स लघु एव सीमान्त कृषकों को रियायती दर पर होना चाहिए ओर दूसरा, अन्य ऋण ग्राहक, जो ब्याज दर के नियत्रण से स्वतन्त्र हो और जिन पर ऊँची ब्याज दर होनी चाहिए ।

ग्रामीण क्षेत्रों मे कृषि एव ग्रामीण विकास के साख प्रदान करने मे क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक विशेष रियायती ब्याज दर ऋण व्यवस्था से सम्बन्धित रहे और उनके सभी ऋण मोट तौर पर लघु सीमान्त कृषकों तक सीमित रहा है, परिणामस्वरूप क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कभी भी आत्मनिर्भरित नही हो पायेगी । इस बात से इस बात की सस्तुति की गयी है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक को सम्बधित बैंको के साथ मिला देना चाहिए, जो बैंक कमजोर वर्गो को किये गये वित्तीयन का पूरा कर सकने मे समर्थ है ।

कृषि क्षेत्र मे कुल कृषि साख मे नाबार्ड का योगदान सभी ऋण प्रदान करने वाली सस्थाओं के रूप मे 1986 मे 45 प्रतिशत रहा । नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन मे सहकारी समितिया का अश घटा है, जब कि व्यापारिक बैंको तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों मे यह बटा है । कृषि एव ग्रामीण क्षेत्रों के अन्तर्गत उत्पादन और विपणन गतिविधियों को सहायता देने के लिये नाबार्ड ने सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का कुल 4192 करोड रूपये की ऋण सीमाए स्वीकृत की, जिनम से बैंको ने 2998 करोड़ रूपयों का उपयोग किया।[12]

---

12. National Bank For Agriculture and Rural Development, Annual Report, 1991-92, pp. 7-9.

अनेक कारणों मे एक महत्वपूर्ण कारण जो बैंको के लाभकारिता घटने मे रहा है, वह है निर्देशानुसार साख अथवा निश्चित ग्रूप लक्ष्य साख, जो सरकार के निर्देश के अनुसार किया जाता है, दूसरा कारण यह रहा है कि रियायती दर पर कमजोर वर्गो के लिए साख का विस्तार किया गया । इसका यह अभिप्राय नहीं कि साख व्यवस्था का विकासात्मक परियोजनाओं से दूर रखना चाहिए, इसके विपरीत बैंकों को क्रियाशील हो करके सरकार के विकासात्मक योजनाओं मे भाग लेना चाहिए ताकि सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके, पर गैर तार्किक रूप मे जिस तरह से आदेशानुसार साख का विस्तार हुआ है, वह चिन्ता का विषय है । उसकी स्थिति इस रूप मे रही है कि बेंक अपने लाभकारिता को कायम रखने मे असमर्थ रहे है । दूसरी बात यह रही है कि सरकार का हस्तक्षेप भी इसमे महत्वपूर्ण भूमिका अदा किया है । बैंकिग प्रक्रिया मे कमी करके स्थापित साख उद्देश्यों को समापत करके अपने निहित उद्देश्यों की पूर्ति से साख वितरण व्यवस्था कमजोर पड़ गयी है, और अपने उद्देश्य मे पीछे हो गयी और विकासात्मक उद्देश्यों को पूरा करने मे असमर्थ रही है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि साख सस्थाओं पर बढ़ते हुए राजनैतिक दबाव बढ़ रहे है। सरकारी स्तर पर केन्द्र एव राज्य सरकारों द्वारा नामित बैंक प्रबन्धकों और सचालकों पर राजनैतिक स्थिति का विशेष प्रभाव है । यह भी देखा गया है कि राज्य सरकारों का सहकारी साख समितियों के भुगतान मे कोई रूचि नहीं है और राजनैतिक आधार पर सहकारी साख समितियों के बकाये को समाप्त करने के लिए वादे किये जाते है । इससे पूरे देश मे ऋण न अदा करने का वातावरण उत्पन्न होता है। इसी तरह राजनैतिक आधार पर ऋण मेला भी बहुत सी दशाओं मे बिना पर्याप्त प्रतिभूति या बिना किसी प्रार्थनापत्र आदि पर किये जाते है । इन सन्दर्भो मे ऋण जो राजनैतिक उद्देश्यों की दृष्टिकोण से दिये जाते है, उनमे बैंक एव ऋण ग्राहक मे सम्बध नहीं रहता और बैंको का भुगतान पूरी तरह प्रभावित होता है ।

इसी तरह पूरे देश मे राष्ट्रीय स्तर पर कृषि एव ग्रामीण साख व्यवस्था के सन्दर्भ मे नाबार्ड की क्रियाकलाप केन्द्रीय सरकार के दबावों, जो व्यापारिक बैंक के ऊपर होता है, वह प्राथमिक क्षेत्रों मे विशेषकर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के लिए और राज्य सरकार का दबाव सहकारी साख

सस्थाओं पर होता है । यद्यपि सरकार और राजनैतिक हस्तक्षेप नाबार्ड के सदर्भ मे कुछ अप्रत्यक्ष होता है, पर इन प्रभावों को रोका नहीं जा सकता। इस तरह सरकार का दवाव नाबार्ड की क्रियाकलापों व साख वितरण व्यवस्था पर बुरा प्रभाव डालता है ।

ग्रामीण क्षेत्रों मे अनेक अकुशलताए और कमिया समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम मे पायी गयी है, जिनमे बैंक साख का दुर्पयोग हुआ है। यह बड़े गम्भीर विषय का प्रश्न है कि इन परियोजनाओं से लाभ प्राप्त करना, जो गरीबी रेखा को पार कर गये है, वे पूरे देश के सन्दर्भ मे 13 प्रतिशत है, जब कि कई राज्यों मे इस औसत से कम स्थिति है । इन कमियों के बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी उन्मूलन के लिए प्रभावकारी हो सकते है, यदि उपयुक्त परिवर्तन और सुझाव का पालन किया जाय । इसके लिए यह आवश्यक है कि गाव स्तर, ब्लाक स्तर और जिला स्तर पर नियोजन किया जाय । इस तरह के जिला स्तर के योजनाओं के सन्दर्भ मे साख का महत्व और योगदान परिवर्तित रूप मे होना चाहिए, जिससे कृषि उत्पादन और उत्पादिता मे वृद्धि हो और जिससे इसका दुर्पयोग न हो ।

5.4 भारत के कृषि वित्त मे मौद्रिक एव साख नीति

देश की अर्थव्यवस्था मे विभिन्न आर्थिक क्रियाओं मे मुद्रा एव साख का सदैव ही महत्व रहा है। इस सम्बध मे सबसे पहले कृषि क्षेत्र मे वित्तीयन हेतु ब्याज दर निर्धारण की समस्या महत्वपूर्ण हुई और केन्द्रीय बैंक के विकास के साथ इस बात का अनुमान किया जाने लगा कि ब्याज दर मे कुछ सीमा तक परिवर्तन मौद्रिक अधिकारियों द्वारा किया जा सकता है और इस तरह साख नीति एव मौद्रिक नीतिमे बैंक दर तथा ब्याज दर का महत्व विशेष रूप से बढ़ा । केन्स ने इसी बैंक दर के आधार पर ब्याज दर के विश्लेषण के द्वारा अर्थव्यवस्था के विनियोग तथा रोजगार स्तर के निर्धारण को समझाया । यदि अर्थव्यवस्था मे ब्याज दर गिरता है तो विनियोग का स्तर बढेगा और इस तरह उसने इस आधार पर सस्ती मुद्रा नीति का समर्थन किया । इसका अभिप्राय यह था कि अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के लिये मुद्रा बाजार मे पर्याप्त वित्त उपलब्ध हो, ब्याज दर कम हो,

विनियोग उत्पादन तथा रोजगार मे वृद्धि हो ।

जहा तक मौद्रिक एव साख नीतियों का भारतीय कृषि से सम्बध है, वहा तीन प्रमुख बातें उल्लेखनीय है । प्रथम एक गैर कुशल वित्तीय व्यवस्था, सस्ती साख व्यवस्था को करने मे असमर्थ है । दूसरे, कृषि साख के लागत के सम्बध की अनिश्चितता तथा हानि की सम्भावना विशेषकर भारतीय परिवेश मे महत्वपूर्ण है, सामान्यत भारतीय कृषक आर्थिक रूप से दिवालिए की स्थिति मे रहता है और उसकी साख बहुत कम होती है । अत आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय कृषि को लाभकारिता का आधार दिया जाय, जिससे महत्वपूर्ण रूप से कृषि लागत को कम किया जा सके । तीसरे, भारतीय कृषि साख सन्दर्भ मे लागत का अश एकाधिकारिक स्थिति के रूप मे ग्रामीण महाजन का होता है । यहा तक कि उन स्थानों मे भी, जहा सहकारी साख समिनिया विद्यमान है । इस तरह उसका एकाधिकारिक रूप ग्रामीण साख मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इस तरह सस्ती मुद्रा एव साख की दशाए एक व्यवस्थित मुद्रा एव साख बाजार मे महत्वपूर्ण रूप से कृषि साख की लागतों को प्रभावित करने मे उपर्युक्त प्रतीत नहीं होती । इस तरह ग्रामीण साख एजेन्सियों तथा व्यवस्थित मुद्रा एव साख बाजार मे पारस्परिक सम्बध होना चाहिए, जिससे भारतीय कृषि साख व्यवस्था मे महाजन की एकाधिकारिक स्थिति को कम किया जा सके । इसके लिए यह आवश्यक है कि महाजन की सभी गतिविधियों को प्रत्यक्षत भारतीय रिजर्व बैंक के परिवश म लाया जाय, जिससे भारतीय रिजर्व बैंक प्रभावी रूप मे ग्रामीण क्षेत्र के मुद्रा एव साख बाजार मे कार्यशील हो और कृषकों को आवश्यक एव प्रर्याप्त साख सुविधाए प्राप्त हों सके । इस तरह स व्यवस्थित बैंकिग सुविधाए प्रदत्त करके ग्रामीण क्षेत्रों मे साख वित्त उपलब्ध कराया जाये । इसके लिय यह भी आवश्यक है कि ब्याज दर को सरलीकृत बनाया जाय जो कृषि क्षेत्र मे साख सुविधाओं के लिए प्रभावी हो सके ।

केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अधीन अनेक कृषि विकास सम्बधी परियोजनाए है । अत उनका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए, जिससे भारतीय कृषि मे सतुलित विकास सभव हा सके । इस तरह के आर्थिक विकास तथा विनियोग माग को प्रोत्साहित करने के लिए जहा ब्याजदर मे कमी

करना आवश्यक है, वहीं साख पूर्ति को विस्तृत करना आवश्यक हे, क्योंकि यदि दशाए अनुकूल हों तो सस्ती मुद्रा एव साख, विनियोग तथा आर्थिक क्रियाओं को तीव्र कर सकती है । कृषि सुधारों को प्रोत्साहित करने मे और भविष्य के विनियोगों के सम्बध मे देश की स्पष्ट साख नीति होनी चाहिए । इस तरह कृषि क्षेत्र मे इन विकासात्मक विनियोग एव कार्यक्रमों के द्वारा अतिरिक्त आय, विनियोग एव रोजगार मे वृद्धि की जा सकती है।

भारतीय रिजर्व बैंक मौद्रिक एव साख नीति का सचालन बैंक साख विस्तार की मात्रा को उस सीमा तक नियत्रित करती है, जो अर्थव्यवस्था के उत्पादक आवश्यकताओं के अनुरूप हो । इसी तरह साख प्रवाह की दिशा को पूरी आर्थिक प्राथमिकताओं की दृष्टिकोण से किया जाता है । मौद्रिक एव साख नीति के निम्न उद्देश्यों का उल्लेख किया जा सकता है ।

पहला, बिना उत्पादन प्रभावित किये हुये स्फीतिकारी दबावों को नियत्रण करना ।

दूसरा, सामान्य उपयोग सम्बधी सवेदनशील वस्तुओं के सग्रह को हतोत्साहित करना ।

तीसरा, वांक्षित क्षेत्रों मे साख प्रभाव को प्रोत्साहित करना तथा बैंकिग सरचना को मजबूत बनाने हेतु आवश्यक कदम उठाना तथा साख अतराल को पूरा करना ।

इन उपर्युक्त उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य मे अर्थव्यवस्था को परिवर्तित होन वाली दशाओं का ध्यान मे रखते हुय साख नीति का क्रियान्वयन एव सचालन किया जाता है । वस्तुत प्रथम पचवर्षीय योजना, 1951 से ही साख नीति का महत्व स्वीकार किया गया है । अर्थव्यवस्था मे बटते हुए मौद्रिक दशाओं तथा स्फीतिकारी दशाओं तथा अर्थव्यवस्था मे सरचनात्मक असतुलनों के बटने के कारण मुद्रा एव साख क्षेत्र मे सरकारी स्तर पर कमी का अनुभव किया गया । वास्तव मे द्वितीय पचवर्षीय योजना मे विनियोग मे बहुत तीव्र वृद्धि हुयी और इस समयावधि मे व्यक्तिगत क्षेत्रो मे साख मे अत्यधिक वृद्धि हुई । परिणामत साख नीति को कठोर बना दिया गया । साख नीति को एक दिये हुए मौद्रिक बाजार की सरचना की दृष्टिकोण से भी देखना चाहिए । भारत म साख नीति के सामने अनेक सीमाए है यथा, असगठित बाजार, गैर मौद्रिक क्षेत्र, सस्थागत तथा क्षेत्रीय साख अतराल आदि ।

इसी के साथ मुद्रा बाजार मे,साख सम्बध मे मौसम के अनुसार साख की माग भी महत्वपूर्ण है ।

मौद्रिक नीीति की ही तरह साख नीति का भी क्रियान्वयन अनेक नीति, उपकरणों के द्वारा किया जाता है। परम्परागत रूपसे साख नियत्रण, केन्द्रीय बैंक दर खुले बाजार की क्रियाए तथा आरक्षित अनुपात आदि के माध्यम से किया जाता है । इसी के साथ - साथ अनेक चयनात्मक साख नियत्रण की विधियों और नैतिक दबाव भी है ।

मौद्रिक नीति के अनेक उपकरणों मे से एक महत्वपूर्ण उपकरण साख नियोजन से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत साख बजट का निर्माण समष्टि एव व्यष्टि दोनों स्तरों पर किया जाता है । यह साख का धनात्मक और विकासात्मक पक्ष है और यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण व्यापारिक बैंको के राष्ट्रीयकरण से अधिक प्रभावी हुआ है । वस्तुत साख नियोजन को मुख्य रूप से मौद्रिक नीति के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिए । मोटेतौर पर मूल्य स्थायित्वता मौद्रिक नीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है । अत साख नियोजन को इस उद्देश्य की पूर्ति मे सहयोगी होना चाहिए । इसके साथ - साथ नियोजन निम्नलिखित विकासात्मक कार्यो को करता है ।

पहला, अर्थव्यवस्था मे मौद्रीकृत क्षेत्र तथा बैंकिग प्रवृत्तियों मे विस्तार करना ।

दूसरा, बैंकिग क्षेत्र के मौसमी साख अन्तराल को कम करना ।

तीसरा, क्षेत्रीय तथा क्षेत्रवार साख अन्तरालों को पूरा करना,

चौथा, बैंक साख का अधिक से अधिक अनुकूलतम् वितरण की व्यवस्था करना ।

क्रियान्वयन रूप मे मोटेतौर पर साख नियोजन का उद्देश्य बैंकिग व्यवस्था के सीमित उधार देय ससाधनों के नियोजन एव बजटीकरण से है, जिससे अनुकूलतम रूप मे बैंक वित्त की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा किया जा सके और इसके लिए निम्न दशाओं पर नियोजन को आवश्यकता होगी

पहला, साख नियोजन की आवश्यकता प्रथमत राष्ट्रीय स्तर पर होनी चाहिए। देश की

प्राथमिक आवश्यकताओं तथा सामान्य आर्थिक उद्देश्यों के अनुसार समष्टि स्तर पर साख का वितरण इस रूप मे करती है कि मौद्रिक स्थायित्वता के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके । साख नियोजन वार्षिक योजनाओं मे वित्तीय ससाधनों की आवश्यकताओं से सम्बंधित है ।

दूसरा साख नियोजन का दूसरा स्तर सस्थागत स्तर है । इसके अन्तर्गत सरकार तथा भारतीय रिजर्व बैंक के उद्देश्यानुसार व्यष्टि स्तर पर व्यक्तिगत बैंक साख नियाजन करते है । इसके अन्तर्गत लगातार विभिन्न क्षेत्रों मे परिवर्तित आर्थिक दशाओं के आधार पर समायोजन करने की आवश्यकता होती है । प्रत्येक बैंक को पहले से ही ससाधनों की उगाही तथा साख वितरण सम्बधी नियोजन करने पड़ते है । पूरी अर्थव्यवस्था के साख नियोजन के पूर्व भारतीय रिजर्व बैंक इन व्यक्तिगत बैंकों से परामर्श करती है ।

तीसरा, साख नियोजन का तीसरा स्तर उद्योग स्तर है । इसके अन्तर्गत सम्बन्धित उद्योगों का सगठन ऐसी योजनाओं को बनाता है, जो भौतिक उत्पादन एव वित्तीय आवश्यकता तथा भविष्य के बैंक ससाधनों से ऋण स्थिति को दिखाते है ।

चौथा, साख नियोजन का अतिम स्तर इकाई स्तर है । इसके अन्तर्गत बैंक वित्त के प्रयोगकर्ता को भी कुछ वित्तीय नियोजन करने की आवश्यकता होती है । इस सदर्भ मे बैंकों के द्वारा न केवल अत्यधिक वित्तीयन हुआ है, अपितु जिन उद्देश्यों के लिए वित्त लिए गये थे, उनमे भी हेर फेर हुआ है और गैर वांछित आर्थिक क्रियाओं मे वे प्रदत्त किये गये है । इस सम्बध मे औद्यागिक इकाइयों से यह अपेक्षा है कि इस तरह के साख एव वित्त के नियाजन पर ध्यान दे

----- 000 -----

अध्याय - 6

भारतीय रिजर्व बैंक, नाबार्ड तथा कृषि साख

(RBI, NABARD AND AGRICULIURAL CREDIT)

6 । नाबार्ड की स्थापना

राष्ट्रीय स्तर पर कृषि क्षेत्र मे साख सुविधा और पुनर्वित्तीयन हेतु एक राष्ट्रीय बैंक की लगातार आवश्यकता के सन्दर्भ मे 12, जुलाई, 1982 को कृषि और ग्रामीण विकास हेतु 'राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक' की स्थापना की गई। इस बैंक को सक्षेप मे 'नाबार्ड' या 'राष्ट्रीय बैंक' कहते है। सस्थागत वित्त एव साख के सन्दर्भ मे राष्ट्रीय स्तर पर कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु नाबार्ड की स्थापना अपना विशेष महत्व रखती है। इस तरह भारतीय रिजर्व बैंक की एक सर्वोच्च सगठन के रूप मे रिजर्व बैंक के कृषि-साख विभाग के सारे महत्वपूर्ण कार्यों ओर कृषि पुनर्वित्त एव विकास निगम के समस्त दायित्व नाबार्ड के अधीन आ गया।[1] इस तरह से नाबार्ड भारतीय रिजर्व बैंक से पुनर्वित्तीयन, विकास तथा सहकारी बेंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बेंकों के निरीक्षण आदि को अपने आधीन कर लिया। मोटे तोर पर नाबार्ड पुनर्वित्तीयन तथा ऋण अग्रिमों द्वारा मुख्य रूप से राज्य सहकारी बेंकों , भूमि विकास बेंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बेंको तथा अन्य स्वीकृत वित्तीय सस्थाओं के माध्यम से उत्पादन, विपणन एव विनियोग सम्बन्धी क्रियाओं हेतु कृषि, ग्रामीण विकास, लघु स्तरीय उद्योगों, विकेन्द्रीत एव पिछडे क्षेत्रो मे उद्योगों, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगों एव दस्तकारी और अन्य ग्रामीण शिल्पकारी तथा अन्य सम्बन्धित ग्रामीण आर्थिक क्रियाओं हेतु वित्त प्रदान करता है। कृषि पुनर्वित्त एव विकास निगम की तरह नाबार्ड भी अपने स्वीकृत योजनाओं के लिये दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था ऋणों और अग्रिमों से करता है। साथ ही साथ यह समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय सहायता प्रदान करता है। उद्देश्यानुसार नाबार्ड के कुल वित्तीयन का सहकारी वित्तीयन सहयोग लघु सिचाई योजनाओं मे गया है और अवशेष कृषि मशीनीकरण, भण्डारण, एव विपणन केन्द्र, भूमि विकास, वृक्षारोपण, बागवानी, मत्स्य पालन, डेरी विकास तथा अन्य कार्यों मे हुआ

---

1. S.B.Gupta, Monetary Economics, Institutions, Theory and policy, 1982, p.79.

है। इस तरह रिजर्व बैंक के एक सर्वोच्च संगठन के रूप में नाबार्ड, राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास हेतु उन वित्तीय संस्थाओ को पुनर्वित्तीयन प्रदान करता है, जो ग्रामीण क्षेत्रों के वित्त से सम्बन्धित है। इन संस्थाओं को दी गई पुनर्वित्तीयन 50 प्रतिशत से 90 प्रतिशत के बीच ही होती है और यह पुनर्वित्तीयन 6 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की ब्याज दरसे होती है। इसी के साथ नाबार्ड द्वारा भारत का निर्यात-आयात बैंक भी पुनर्वित्तीयन प्राप्त करता है,जो निर्यातोन्मुख लघु उद्योगों के वित्तीय आवश्यकता को पूरा करता है। यह न केवल पुनर्वित्तीयन सुविधा प्रदान करता है, अपितु कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु संलग्न वित्तीय संस्थाओं को नीति एव दिशा निर्देश भी करती है। 1982-83 से 1987-88 तक नाबार्ड का लेखा वर्ष जुलाई-जून था, किन्तु 1988-89 में लेखा वर्ष अप्रैल-मार्च कर देने का निर्णय लिया गया और इसी के अनुसार वर्तमान मे लेखा वर्ष अप्रैल-मार्च है। 1988-89 लेखा वर्ष 9 माह की अवधि अर्थात् जुलाई, 1988 से मार्च 1989 तक ही रहा है।[2]

6 2 नाबार्ड के कार्य एव संगठनात्मक संरचना

जहाँ तक नाबार्ड के योगदान एव संगठनात्मक संरचना का प्रश्न है, यह ग्रामीण साख व्यवस्था के केन्द्र रूप मे स्थापित की गई है तथा साथ ही साथ ग्रामीण साख संस्थाओं- व्यापारिक बैंको, सहकारी बैंको और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को सहयोगी वित्त प्रदान करने हेतु स्थापित की गयी है। इस सम्बन्ध मे नाबार्ड की स्थापना के कृषि एव ग्रामीण विकास के लिये राष्ट्रीय बैंक एक्ट 1981 में निर्दिष्ट इसके योगदान को उद्धृत किया जा सकता है-

"------providing credit for the promotion of agriculture, small scale industries, cottage and village industries, handicrafts and other rural crafts and other allied economic activities in rural areas with a view to promoting integrated rural development and securing prosperity of rural areas and for matters connected therewith or incidental thereto."

---

2. NABARD, Annual Report, 1988-89, p.5.

इस सन्दर्भित एक्ट के अनुसार नाबार्ड को बहुत विस्तृत और परिवर्तनशील महत्वपूर्ण निम्नलिखित कार्य दिये गये है-

1 सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को अल्पकालीन, मध्य कालीन एव दीर्घ कालीन पुनर्वित्तीयन करना,

2 कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु टर्म ऋण के पक्ष मे व्यापारिक बैंकों का पुनर्वित्तीयन करना,

3 कुछ विशिष्ट दशाओं मे प्रत्यक्ष ऋण प्रदान करना,

4 कृषि, सम्बन्धित क्रियाओ, ग्रामीण कलाकारों एव उद्योगों तथा अन्य ग्रामीण विकास के लिये साख हेतु विकास नीतियों, नियोजनों और क्रियान्वयन सम्बन्धी शर्तो पर नियत्रण करना,

5 ग्रामीण विकास एव कृषि साख हेतु प्रशिक्षण, शोध एव परामर्श सम्बन्धी कार्यो को करना,

6 ग्रामीण क्षेत्रो मे निर्धारित विकास क्रियाओ के सवर्धन हेतु सभी कृषि एव ग्रामीण ऋण सस्थाओं मे समन्वय स्थापित करना,

7 राज्य सरकारों तथा सहकारी समितियों के परामर्श, सुझाव एव निर्देशन हेतु सदैव तत्पर और उपलब्ध रहना।[3]

मोटे तौर पर इन सभी कार्यो को निम्नलिखित तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है

1 ग्रामीण क्षेत्रों मे ऋण एव साख सस्थाओं का पुनर्वित्तीयन करना,

2 सस्थागत विकास को निर्मित करना अथवा नवीन सस्थाओं को लाना,

3 ग्राहक बैंकों का नि[illegible] निर्देशन एव मूल्याकन करना।

इस सन्दर्भित क्षेत्रो [illegible] सफलता या असफलता सम्बन्धी किसी निर्णय देने के पूर्व यह उल्लेखनीय है कि अपने दस [illegible] की अवधि मे नाबार्ड ने अपने सहभागी बैंकों के पुनर्वित्तीय मे महत्वपूर्ण विस्तार किया है, अपने कार्यों के बढते दर से गैर कृषि फार्म क्षेत्रों मे विविधीकरण करने हेतु कदम उठाना, विशिष्ट उ[illegible] कार्यक्रमों तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को सहयोग देना

---

3. Report of the [illegible] cultural Credit Review Committee, pp. 368-370.

रहा है। किन्तु समयान्तर मे यह पाया गया कि इसके द्वारा पुनर्वित्तीयन क्रिया अधिक महत्वपूर्ण रही, जबकि अन्य दो क्रियाओ का महत्व, जो दूसरे स्थान पर रहे, नाबार्ड का विकासात्मक योगदान कम महत्व का है। अत इसके लिये आवश्यक है कि अधिक व्यापक नवपर्वतक तथा दूर दृष्टिगामी प्रेरको के दृष्टिकोण से अपने ग्राहक बैको, अन्य अगो, राज्य सरकारो तथा विकास खण्डा और ग्राम स्तरो को लिया जाय। यदि देश के ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र के विकास हेतु नाबार्ड को नतृत्व का योगदान करना है तो कृषि परियोजनाओ हेतु पुनर्वित्तीयन के अलावा अपनी क्रिया-कलापा का इस विस्तृत करना होगा। जैसा कि नाबार्ड के अनेक महत्वपूर्ण कार्यों से स्पष्ट है कि इसका प्रधान महत्व और योगदान अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋणो एव अग्रिमो हेतु वित्तीय सस्थाओ का पुनर्वित्तीयन करना है, जबकि शर्त निदिष्ट विनियोग साख का पुनर्वित्तीयन सभी ग्राहक बैको को उपलब्ध रहता है, परन्तु उत्पादन और विपणन हेतु अल्पकालीन ऋण तथा विनियोग हेतु मध्यकालीन ऋण केवल सहकारी बैंको तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको तक ही सीमित है।[4] पिछले वर्षो मे हर तरह के ऋणो का समग्र बँटवारा सारणी-6 । मे प्रस्तुत किया जा रहा है। इस तरह का बँटवारा, जो इस सारणी के तीसरे कॉलम मे है, यह नाबार्ड द्वारा राज्य सरकारो को दिये गये दीर्घकालीन ऋणो का सम्मिलित करता है।

सारणी-6 ।

वितरित पुनर्वित्तीयन की कुल मात्रा

(रूपये करोड)

वर्ष (जुलाई-जून)	कुल वितरीत अल्पावधि/ मध्यावधि/ दीर्घावधि	अल्पावधि/ मध्यावधि	दीर्घावधि – संवितरण	
			मात्रा	योजनाआ की सख्या
1	2	3	4	5
1982-83	3,911	3208	703	4957
1983-84	3,882	2990	892	4961
1984-85	3,410	2349	1,061	5601
1985-86	3,788	2596	1,192	7964
1986-87	4,282	2948	1,334	10099
1987-88	5,402	3920	1,482	9995

Source-Report of the Agricultural Credit Review Committee, Reserve Bank of India.

नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन कार्यों की सुविधा हेतु मोटे तौर पर दो वर्गों म बाँटा जा सकता है। दीर्घकालीन विनियोग वित्त तथा अल्पकालीन उत्पादन एव विपणन वित्त, जैसा कि सारणी -6 2 म स्पष्ट है कि दीर्घकालीन विनियोग वित्त, जो नाबार्ड के ग्राहक बैको द्वारा वितरीत किया गया है, वह लगातार बढती हुई प्रवृत्ति को सूचित करता है।[5]

सारणी-6 2

दीर्घकालीन पुनर्वित्त संवितरण

(रूपये करोड)

वर्ष (जुलाई-जून)	राज्य सहकारी बैक	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	राज्य भूमि विकास बैंक	वाणिज्य बैंक	जोड
1982-83	45	1 61	235	362	703
1983-84	41	1 87	314	450	892
1984-85	37	1140	314	570	1061
1985-86	36	1158	337	661	1192
1986-87	65	1208	433	628	1334
1987-88	64	1216	467	735	1482
(जुलाई-मार्च)					
1988-89	75	1212	381	602	1270
(अप्रैल-मार्च)					
1989-90	115	287	559	741	1702
1990-91	114	289	565	939	1902
1991-92	149	295	658	952	2054

स्रोत- नाबार्ड वार्षिक रिपोर्ट 1982-83 से 1991-92

जहाँ तक इन पुनर्वित्तीयन दीर्घकालीन विनियोगों को स्रोतानुसार बँटवारे का प्रश्न है, उसमे वाणिज्य बैंक और भूमि विकास बैंक महत्वपूर्ण सस्थाए है। इनमे भी वाणिज्य बैंको का योगदान विशेष रहा है। फलत उनमे अतिदेय की समस्या के कारण पुनवित्तीयन योग्यता की घटती हुयी स्थिति उत्पन्न हो गयी। 1991-92 मे कुल पुनर्वित्तीयन (2054 करोड रूपये) का लगभग आधा भाग (46 3 प्रतिशत) वाणिज्य बैंकों द्वारा था, जबकि भूमि विकास बैंकों का एक तिहाई से कम (32 0 प्रतिशत) था और राज्य सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का हिस्सा अपेक्षाकृत बहुत कम था। यह क्रमश 7 3 और 14 4 प्रतिशत था।[6]

नाबार्ड के द्वारा पुनर्वित्तीयन की व्यूह नीति प्रारम्भ से ही ऐसी क्रिया कलापों के पुनर्वित्त से सम्बन्धित रही, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के ससाधनों और तकनीकी अवसरों को ध्यान मे रखते हुए अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता मे सुधार हो सके। इस तरह से राष्ट्र के सबसे महत्वपूर्ण सीमित ससाधन, भूमि की उत्पादकता और उसके सवर्धन पर प्राथमिकता दी गयी, चूँकि भारत कृषि जोत क्षेत्र प्रसार की अपनी अधिकतम् सीमा पर पहुच रहा है। अत कृषि उत्पाद एव उत्पादिता को मुख्य रूप से लघु सिचाई योजनाओं, भूमिगत जल, भूमि को जल प्रयोग हेतु उपयुक्त बनाना, कृषि क्रियाओ मे यन्त्रीकृत करना, भूमि प्रयोगों मे विविधीकरण लाना तथा बागवानों पर विशेष जोर दिया गया। उद्देश्यानुसार नाबार्ड द्वारा दिये गये पुनर्वित्तीयन के विवरण को सारणी 6.3 मे प्रस्तुत किया गया है। यह स्पष्ट है कि लघु सिचाई परियोजनाओं को प्रारम्भ से ही सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है। इस तरह जल-प्रबन्ध की सुचारू व्यवस्था को प्राथमिकता दी गयी है। इसी तरह कई राज्यों मे अपर्याप्त शक्ति और ऊर्जा के सम्बन्ध मे नाबार्ड ने राज्य विद्युत परिषदों को पुनर्वित्तीयन सहयोग दिया है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों मे विद्युत वितरण के कार्यों के सवर्धन हेतु।

नाबार्ड अपनी व्यूह नीति मे सिंचित क्षेत्रों के वित्तीयन हेतु प्रायोगिक (पायलेट) आधार पर एक साख-पैकेज को चक्रीय साख के रूप मे कृषि भूमि की उत्पादकता के परिप्रेक्ष्य मे प्रारम्भ किया है।[7] इस सम्बन्ध मे यदि साख पूर्ति इन क्षेत्रों मे नयी तकनीकी क्षेत्रों के सन्दर्भ मे की जाती है तो

---

6. NABARD, Annual Report, 1991-92, p. 118.
7. NABARD, Annual Report,1988-89, p.17.

सारणी 6 3

दीर्घकालीन पुनर्वित्तीयन - नाबार्ड द्वारा प्रयोजनवार संवितरण

(करोड रूपये)

वर्ष (जुलाई-जून)	लघु सिचाई	भूमि विकास	समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम	कृषि मशीनी-करण	पशुपालन एव मत्स्य-पालन	बागवानी एव वानिकी	अन्य	योग
1982 - 83	224	21	185	147	-	31	75	103
1983 - 84	312	29	233	204	-	43	71	892
1984 - 85	335	43	354	170	-	49	110	1061
1985 - 86	385	27	376	200	13	73	118	1192
1986 - 87	460	26	379	192	18	77	182	1334
1987 - 88	473	25	448	200	20	94	222	1482
(जुलाई - मार्च)								
1988 - 89	387	18	403	158	27	76	201	127
(अप्रैल - मार्च)								
1989 - 90	498	11	549	225	31	114	274	1702
1990 - 91	496	16	602	338	33	108	309	1902
1991 - 92	502	14	647	381	44	121	345	2045

Source: NABARD, Annual Report 1982 - 83 to 1991-92.

बैंको के लिये अपनी ऋण नीतियों मे परिर्वतन करना अपरिहार्य हो जाता है। इसी के साथ-साथ नाबार्ड का ध्यान एक दूसरे क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया है, वह है, गैर-कृषि-फार्म क्षेत्र । इस क्षेत्र मे ऊँची आय और रोजगार सृजन शक्ति के कारण नाबार्ड ने इस क्षेत्र मे साख को प्रोत्साहित करने मे कई कदम उठाये है और इस सम्बन्ध मे शत-प्रतिशत पुनर्वित्तीयन किया जाता है। सिंचित कृषि के अतिरिक्त नाबार्ड के कार्य क्षेत्र मे सामाजिक, वानिकी तथा बेकार भूमि का विकास महत्वपूर्ण है। साथ ही साथ अपनी पुनर्वित्तीयन का एक बहुत बडा भाग मध्यम, लघु और सीमान्त कृषकों, कमजोर वर्गो, कृषि श्रमिकों तथा अन्य ग्रामीण निर्धनो के लाभ हेतु प्रदान किया गया है और इस तरह सिचाई परियोजनाओं के अतिरिक्त समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत नाबार्ड का पुनर्वित्तीयन द्वितीय स्थान का रहा है। इसी तरह क्षेत्रानुसार औसत रूप से नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन का 20 प्रतिशत उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र के राज्यों, 15 प्रतिशत पश्चिमी और पूर्वी राज्यों (प्रत्येक को), 19 प्रतिशत उत्तरी राज्यों, 21 प्रतिशत केन्द्रीय राज्यों तथा 28 प्रतिशत दक्षिण राज्यों को हुआ है।

नाबार्ड का पुनर्वित्त व्यवस्था अल्पकालीन उत्पादन एव विपणन मोटे तौर पर राज्य सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से सम्बन्धित रहा है। इस सम्बन्ध मे सबसे महत्वपूर्ण मौसमी कृषि कार्यों के लिये फसल-ऋण दिया गया। विभिन्न वर्षो मे सहकारी बैंकों ने फसल ऋण को अपन ससाधनों तथा रिजर्व बैंक एव नाबार्ड के पूरक प्रयासों से हुआ है। फसल ऋण के वितरण को सहकारी बैंकों और नाबार्ड से सहायता को सारणी- 6 4 मे प्रदर्शित किया जा सकता है।

देश मे, कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता को बढाने की दृष्टि से विशेष खाद्यान्न कार्यक्रम, समन्वित चावल विकास कार्यक्रम, तिलहन उत्पादन कार्यक्रम, राष्ट्रीय दलहन विकास कार्यक्रम, विशेष जूट विकास कार्यक्रम तथा वर्षा सिंचित कृषि के लिए एक राष्ट्रीय वाटर शेड विकास कार्यक्रम जैसे अनेक विशिष्ट योजनाओं हेतु नाबार्ड ने विशेष और अतिरिक्त साख सुविधाओं को ग्राहक बैंकों के माध्यम से उदार आधारों पर वित्तीयन किया है।

आयोजना और अनुप्रवर्तन के माध्यम से ग्रामीण ऋण की उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिए नाबार्ड ने 1987 मे सभाव्यतायुक्त ऋण योजनाए तैयार करने की प्रक्रिया शुरू की है। ये योजनाए,

सारणी 6 4

सहकारी बैंको तथा नाबार्ड सहयोग से वितरित फसल ऋण

(करोड़ रुपय)

वर्ष (जुलाई - जून)	वितरित फसल ऋण	नाबार्ड का सहयोग	नाबार्ड के पुर्नवित्तीयन का प्रतिशत
1982 - 83	1908	858	45
1983 - 84	2158	803	37
1984 - 85	2323	868	37
1985 - 86	2747	873	32
1986 - 87	2620	936	36

Source: Report of the Agricaltural Credit Review Committee, RBI

ससाधन सपदाओं और मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता को अधिक यथार्थ तरीक स प्रतिबिम्बित करती है और कृषि विकास के कार्य मे लगी एजेन्सियों से सहबद्धता स्थापित कराती है। आधारभूत स्तर पर ऋण आयोजना की प्रक्रिया को और आगे बढ़ाने के लिये नाबार्ड ने जिलों मे जिला विकास प्रबधक कार्यालय खोले है, जो जिले के विभिन्न एजेन्सियों द्वारा उपलब्ध कराए जाने वाल सस्थागत ऋणों की ऋण आयोजना, अनुप्रवर्तन और पर्यवेक्षण से सबधित समस्त कार्यकलापों के लिय नोडल बिन्दु के रूप मे कार्य करते है। अभी तक 150 जिला विकास प्रबन्धक कार्यालय खोले जा चुके है और आगामी दो से तीन वर्षों मे देश के शेष जिलों मे भी जिला विकास प्रबन्धक कार्यालय खालन की नाबार्ड की योजना है।[8]

नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन व्यवस्था के प्राविधान के अन्तर्गत यह अधिकृत सस्थाओं के पुनर्वित्तीयन के अलावा सीधे वित्त तथा ऋण प्रदान कर सकती है। विशेषकर ऐसे क्षेत्रों मे, जहाँ सस्थागत व्यवस्था कमजोर है। इस तरह नाबार्ड के प्रत्यक्ष ऋण एव साख व्यवस्था का अभिप्राय यह है कि विकास सस्थाओं के ग्रामीण साख व्यवस्था के वित्तीयन हेतु यह सीधे विस्तृत दृष्टिकोण और क्षेत्रीय विकास के परिप्रेक्ष्य मे कर सकती है। इस सम्बन्ध मे पूर्वी विकास निगम तथा उत्तरी-पूर्वी राज्य इस प्रत्यक्ष ऋण व्यवस्था के अन्तर्गत आते है।[9]

यहा पर नाबार्ड के विभिन्न कार्यों का पुनर्अवलोकन महत्वपूर्ण होगा और इस सम्बन्ध मे इसके सस्थागत विकास को स्पष्ट किया जा सकता है, जिसमे ग्रामीण कृषि को सस्थागत करने का उद्देश्य रखा गया था, परन्तु यह बात स्पष्ट हुयी है कि बहुत से ऐसे कारक, जैसे ऋण के लक्ष्य, वर्ग, खराब ऋण वसूली, प्रशासनिक ऋण दरों आदि से ग्रामीण साख सस्थाओं की शक्ति मे कमी किये है। इस सम्बन्ध मे नाबार्ड के सस्थागत कार्यों के विकास के सम्बन्ध मे स्पष्ट मात्रात्मक उद्देश्य और लक्ष्य निर्धारित होने चाहिए तथा समस्त कार्यों और कार्यक्रमों के समन्वय प्रक्रिया को सस्थागत सरचना मे पूरा किया जाना चाहिए। साथ ही साथ नाबार्ड तथा अन्य सगठनों के सम्बन्ध को मजबूत बनाना

---

8. NABARD, Annual Report, 1992-93, p.49.
9. Bank Finance for Rural Development (Ed.) L.K. Naidia, p. 249-255.

चाहिए। नाबार्ड को अपने सम्बन्धित बैंकों मे प्रशिक्षण क्रियाओं का सस्थागत विकास का एक अभिन्न अग बनाना चाहिए।

जहाँ तक नाबार्ड के कार्यों मे निरीक्षण कार्य सम्बन्धित है, उसक पुर्नावलोकन म रिजर्व बैंक तथा नाबार्ड के समय-समय पर दिये गये निर्देशों एव नीतियों का पालन सुनिश्चित करना चाहिये। इन सब का उद्देश्य बैंकिग व्यवस्था को एक मजबूत आधार बैंक नियम एव परिनियम क सन्दर्भ म देना है। इस सम्बन्ध मे नाबार्ड को प्रदत्त लाइसेंसों को देने तथा वापस लेने का अधिकार नही है। यह मात्र निरीक्षण किये हुये लाइसेन्सों का विवरण रिजर्व बैंक को सस्तुति कर सकता है। सहकारी ऋण सस्थाओं मे उनकी केवल बैंकिग तथा वित्तीय क्रियाए नाबार्ड क नियत्रण मे आती है और इन सस्थाओं का प्रबन्ध एव व्यवस्था कोआपरेटिव सोसाइटी एक्ट एव नियम स निर्धारित होती है। इस तरह नाबार्ड के निरीक्षण कार्य मे कई बाधाए है और अपने कार्यो को सम्पादित कराने मे रिजर्व बैंक या सहकारी साख नीति के रजिस्ट्रार का माध्यम लेना पडता है। ऐसे निरीक्षण बैंकों के नियमानुसार कार्य सम्पादन को निर्देशित नही करते। निरीक्षण रिपोर्टों का प्रयोग नाबार्ड, बैक एव अन्य एजेन्सियाँ द्वारा बहुत कम प्रयोग किया जाता है और इस तरह नाबार्ड के कार्यों और निरीक्षण कार्यों मे बहुत सम्बन्ध नही है। इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण होगा कि नाबार्ड अपने निरीक्षण के उद्देश्य को पुन स्पष्ट करे, जिससे नाबार्ड के अनेक कार्यों को पूरा किया जा सके और बैंकों के निष्पादन मे सुधार किया जा सके। निरीक्षण रिपोर्टों के क्षेत्र और विषयवस्तु सस्तुति हेतु बैंको को सही दिशा-निर्देश हेतु दी जानी चाहिये।

नाबार्ड के सगठनात्मक सरचना और इसमे आवश्यक परिवर्तन को स्पष्ट किया जा सकता है। जहाँ तक सगठनात्मक सरचना का प्रश्न है वह मुख्य कार्यालय और क्षेत्रीय कार्यालयों के पारस्परिक सम्बन्ध से है और इन दोनों के स्पष्ट कार्य विभाजन तथा दायित्वों से है। इस सम्बन्ध मे जिला स्तर पर नाबार्ड के कार्यों के सहायता हेतु स्थापित करने की आवश्यकता है और इस तरह जिला स्तर पर ये कार्यालय प्रतिनिधित्व करेगें और स्थानीय दशाओं के आवश्यकतानुसार नाबार्ड के कार्यों मे सहयोग करेगे। इसी तरह नाबार्ड के उच्च सगठनात्मक स्तर पर वरिष्ठ प्रबन्ध अधिकारियों को राष्ट्रीय स्तर पर मोटे और आधारभूत नीतियों का दायित्व होना चाहिये और उन्हे अधिकार एव

स्वायत्ता प्रदान की जानी चाहिये। इसी तरह नाबार्ड के आन्तरिक सगठनात्मक और विभिन्न क्षेत्रों तथा कार्य-परिषद समितियों के अधिकार और क्षेत्र मे कार्यागत कमियों को दूर करना चाहिये। इसी तरह जहाँ तक नाबार्ड के सलाहकार परिषद का प्रश्न है, इसमे उच्च स्तरीय विशिष्ट सलाह और ज्ञान परिषद का गठन होना चाहिये और उसमे सदस्यों की विशेष योग्यता तथा क्षमता के आधार पर विश्वविद्यालयों, शोध सस्थाओं , सम्बन्धित बैंकों, सरकारी विभागों तथा अन्य जुडी सस्थाओं को होना चाहिये। इस सलाहकार समिति के इकाई रूप मे स्थानीय सलाहकार समिति राज्य स्तर पर गठित की जानी चाहिये और राज्य एव क्षेत्र स्तर के नीति-नियोजन से सम्बन्धित बातें नाबार्ड तक सस्तुति की जानी चाहिये। इन सभी परिवर्तनों का उद्देश्य नाबार्ड के नीतियों को कार्यान्वित करने मे व्यूह नीति सम्बन्धी परिवर्तनो और उनको प्रारम्भ करने से है और सभी कार्यागत सम्बन्धों मे ग्राहक बैंकों म सेवा-मानकों को स्थापित करना तथा साथ ही साथ नाबार्ड के सगठनात्मक तथा व्यवस्थात्मक विकास मे आवश्यक परिवर्तनों को प्रोत्साहित करने से है। इसी तरह नाबार्ड के नियत्रणात्मक योगदान के स्थान पर विकास और सेवा प्रवृत्ति विकसित करने की है। इस सम्बन्ध मे नाबार्ड को प्रभावी क्षेत्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण की पूरी जानकारी होनी चाहिये। इस सम्बन्ध मे नियुक्त लोगों की बढी हुयी उत्प्रेरणा की आवश्यकता है और इसके लिये दायित्व-अधिकार और कार्य-निर्वाह विवेचना का स्वीकार करने की आवश्यकता है। इस तरह नाबार्ड मे एक अधिक खुला तथा भागदारी आधार पर व्यवस्था की आवश्यकता है, जिससे इन परिवर्तनों के साथ नाबार्ड का स्वरूप निखर सके और जिसस नाबार्ड अपने अस्तित्व को एक सह-सस्था के रूप म कृषि और ग्रामीण विकास हेतु स्थापित कर सके। इस तरह उपयुक्त श्रम-शक्ति, विकास प्रशिक्षण आदि द्वारा नियुक्त कर्मचारियों की प्रवृत्ति म परिवर्तन लाया जा सकता है।

ग्रामीण साख के एक सह सस्था के रूप मे नाबार्ड का यह एक प्रमुख कार्य है कि वह सूचनाओं को प्राप्त करे और उनको न केवल अपने लिये विश्लेषित करे, अपितु ग्राहक बैंकों तथा अन्य सस्थाओं की सुविधा और समन्वय हेतु विभिन्न स्तरों पर नीतियों तथा कार्यक्रमों का विश्लेषण करे नाबार्ड के वर्तमान व्यवस्था के सूचना सम्बन्धी पुनर्विलोकन, दिशा-निर्देशन तथा अन्य कार्यों

मूल्याकन एव उनके कम्प्यूटरीकरण हेतु यह आवश्यक समझा गया कि एक नये सूचना एव मूल्याकन विभाग की स्थापना की जाए, जो मोटे तौर पर नाबार्ड के कार्यक्रमों एव क्रियाओ के उच्च प्रबन्धकीय स्तर, क्षेत्रीय अधिकारियों, सदस्य सस्थाओं तथा अन्य सस्थाओं तक पहुचाये। नाबार्ड के अलावा अन्य सस्थाओं से महत्वपूर्ण सूचनाए प्राप्त करे और नाबार्ड को इनसे अवगत कराये। इस तरह इस विभाग की स्थापना से नाबार्ड की प्रबन्धकीय व्यवस्था मे पुनर्वित्तीयन, सस्थागत विकास, निरीक्षण, वित्त तथा प्रशासनिक क्रियाए अधिक सुनिश्चत हो जायेगी।

नाबार्ड ने अपने सगठनात्मक व्यवस्था के सम्बन्ध मे बडे पैमाने पर कम्पयूटरीकरण हेतु कदम उठाये है और एक कम्पयूटर सेवा अनुभाग स्थापित किया है, जिसकी मुख्य जिम्मेदारी पूरे नाबार्ड कार्य-कलापों मे कम्पयूटरीकरण का प्रार्दूभाव करना है। इस तरह नाबार्ड की कम्पयूटरीकरण व्यूह नीति उन आवश्यकताओ पर आधारित होनी चाहिये, जो नाबार्ड की क्रियाओ और उद्देश्यो को प्राप्त करने मे सहयोगी हों। प्रमुख उद्देश्यों के सम्बन्ध मे पुनर्वित्तीयन के मुख्य कार्य सस्थागत कार्य और निरीक्षण क्रियाओ के क्षेत्रीयकरण तथा इनके विकास और प्रभावों के मूल्याकन एव दिशा-निर्देश को प्रभावी बनाने तथा निर्णय प्रक्रिया मे सहायता हेतु समयानुसार महत्वपूर्ण और तथ्य-परक सूचनाओ को प्रस्तुत करना है।

इसी तरह नाबार्ड की व्यवस्था से सम्बन्धित अन्य बातें, शोध एव विकास फड की स्थापना है, जिसके अन्तर्गत और व्यवहारिक शोध के द्वारा नाबार्ड की परियोजनाओं के मूल्याकन आदि द्वा सहयोग प्रदान करना है। इस सम्बन्ध मे यह महत्वपूर्ण होगा कि इस फड का प्रयोग ग्रामीण विक मे नये तथा व्यवहारिक अभिरूचियो और कार्य-कलापो को प्रोत्साहित, विकसित, मूल्याकित ३ स्थापित करने मे किया जाना चाहिये। इस तरह इस फड के प्रयोग हेतु कुछ व्यूह नीति कार्य-योज को विकसित करने की आवश्यकता है। व्यापक परियोजनाओं के निर्माण हेतु चयनित क्षेत्रों यथा फार्म क्षेत्रों तथा चयनित खडों मे गहन अध्ययन मे वित्तीयन करना और प्रशासनिक एव ग्राहक बैं मे प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना और इस तरह अपने ग्राहक बैंकों के दिशा-निर्देशन, मूल्या और निरीक्षण व्यवस्था मे सहयोग प्रदान करना तथा कृषि साख क्षेत्र के लिये एक दीर्घका कम्पयूटर व्यूह नीति के क्रियान्वयन हेतु वित्तीयन, निर्देशन एव समन्वय स्थापित करना है।

वर्ष 1993-94 के बजट मे कृषि ऋण प्रणाली को फिर से मजबूत बनाने पर विशेष जोर दिया गया है, ताकि यह पूँजी-निर्माण और कृषि की उत्पादकता बढ़ाने का एक अधिक कारगर साधन बन सके। प्राथमिकता वाले क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने हेतु नवीन एक मुश्त उपाय सुझाया गया है।

बजट मे बेको को नाबार्ड की निवेश पुनर्वित्तीयन सहायता 2500 करोड रुपये रखा गया है, जो पिछले वर्ष (1992-93) के लिये निर्धारित 2300 करोड रुपये से 22 प्रतिशत अधिक है इसी प्रकार सस्थागत स्रोतों से ग्रामीण ऋण प्रवाह मे 20 प्रतिशत की वृद्धि से यह [illegible] करोड रूपये से बढकर 16,600 करोड रूपये हो जाने की सभावना है। बैंक उधारों के नाबार्ड पुनर्वित्तपोषण की दर को उत्तर-पूर्व राज्यों के मामले मे 90 प्रतिशत तक और कृषि तथा सम्बद्ध कार्यकलापो को शत-प्रतिशत निर्यातोमुखी इकाइयो के निवेश के सबध मे इसकी वृद्धि करने का प्राविधान है। नाबार्ड 125 करोड रूपये के परिव्यय से पाच चुने जिलों मे ग्रामीण उद्योगों के सघन विकास के लिये प्रायोगिक परियोजनाए प्रारभ करेगा। नाबार्ड कृषि और गैर-कृषि क्षेत्रों मे नवीन निवेशों के सहायतार्थ [illegible] करोड रूपये के आरम्भिक सग्रहण से एक उद्यम पूजी निधि और सहकारी बैंको मे प्रबध प्रणालियों और दक्षताओ को सुधारने मे सहायता देने के लिये 10 करोड़ रुपये के आरभिक सग्रहण से एक सहकारी विकास निधि की स्थापना करेगा।[10] वित्तीय वर्ष 1993-94 की द्वितीय छमाही के लिये घोषित साख नीति के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र को ओर अधिक ऋण सुविधाए उपलब्ध कराने के लिये नाबार्ड की ऋण सीमा रू0 400 करोड बढा दी गयी। यह वर्तमान मे रू0 3300 करोड से बढ़कर रू0 3700 करोड हो गयी है।

6.3 नाबार्ड संसाधन एवं लाभकारिता-कुछ प्रक्षेप

कृषि एव ग्रामीण साख पूर्ति तथा आवश्यकता के निमित्त अनुमानों के आधार पर यह स्थापित किया गया कि 1994-95 तथा 1999-2000 मे साख व्यवस्था मे क्रमश रू0 5,487 करोड़

---

10 27 फरवरी, 1993 को ससद मे वर्ष 1993-94 का बजट पेश करते हुए वित्त मत्री डॉ मनमोहन सिह के भाषण से उद्धृत।

रू0 21,426 करोड का समग्र घाटा होगा। अत साख व्यवस्था मे सहकारी बैंक तथा व्यापारिक बैंक स्वभावत इस घाटे को पूरा करने के निमित्त पुनर्वित्तीयन हेतु नाबार्ड की ओर उन्मुख होगें तथा साथ ही साथ यह भी उल्लेखनीय है कि नाबार्ड के ससाधन मात्र इन्हीं सीमाओं तक सीमित न होगें, अपितु कई कारणों से इससे अधिक होगें। प्रधानत भूमि विकास बैंक, जिनका अपना कोई ससाधन नही है तथा अपने ऋण क्रियाओं मे ससाधन हेतु पूरी तौर पर नाबार्ड पर आश्रित है और इसी तरह नाबार्ड का पुनर्वित्तीयन सहकारी बैको और व्यापारिक बैको दोनो को उपलब्ध है, जिसका लाभ व्यापारिक बैंक उठाते है तथा नाबार्ड का पुनर्वित्तीयन सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को फसल ऋण हेतु पुनर्वित्तीयन हेतु उपलब्ध रहता है।

साख सम्बन्धी प्रक्षेपों मे फसल ऋण हेतु माग व्यापारिक और सहकारी बैको दोनों द्वारा सन 2000 तक रू0 53,534 करोड अनुमानित किया गया है [11] और इसमे सहकारी बैंकों और व्यापारिक बैको का योगदान दोनों 50 प्रतिशत अनुमानित किया गया, चूकि व्यापारिक बैको के पास पर्याप्त ससाधन होगें, अत वे फसल ऋण हेतु नाबार्ड से पुनर्वित्तीयन कम प्राप्त करेगें और वर्तमान समय मे इस उद्देश्य हेतु नाबार्ड उन्हे पुनर्वित्तीयन अनुमोदित नही करता। यह ध्यान देने योग्य है कि विभिन्न वर्षो के सन्दर्भ से सहकारी बैंकों को पुनर्वित्तीयन क्रमश घट रहा है। यद्यपि 1986-87 87-88, 88-89 मे यह तेजी से बढ़ा है। इस सम्बन्ध मे यह प्रस्तावित किया गया है कि सहकारी बैंको की आश्रिता 10 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिये।

वर्ष 1993-94 मे नाबार्ड ने पुनर्वित्तीयन का पिछले वर्ष 1992-93 की तुलना मे 22 प्रतिशत अधिक रखा है। 1992-93 मे पुनर्वित्तीयन सहायता 2200 करोड निर्धारित किया गया था। अपने सस्थापित वर्ष 1982-83 मे रू0 703 करोड से बढ़कर यह 1993-94 म रू0 2800 करोड हो गया। इस सम्बन्ध मे नाबार्ड अपने पुनर्वित्तीयन कार्यक्रम को लघु सिचाई परियोजनाओं और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के प्रमुख अवयवों मे जारी रखेगा। इसी तरह कृषि क्षेत्र मे यन्त्रीकरण एव ट्रैक्टर आदि हेतु पुनर्वित्तीयन नीति को जारी रखने की अवश्यकता है। इसी के साथ-साथ ज

---

11. RBI, Report of the Agricultural Credit Review Committee, p. 397.

भराव तथा शुष्क कृषि, फार्म, वानिकी, अनुपयुक्त भूमि विकास परियोजनाओ आदि हेतु पुनर्वित्तीयन पर विशेष बल दिया जायेगा।[12]

'ए रिव्यू ऑफ द एग्रीकल्चर क्रेडिट सिस्टम इन इण्डिया' मे भारतीय रिजर्व बैंक ने 1994-95 तथा 1999-2000 के लिये सावधि साख माग का अनुमान क्रमश रू0 29,450 करोड तथा रू0 57,339 करोड अनुमानित किया है। इसमे वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी बैंको का योगदान क्रमश 65 प्रतिशत तथा 35 प्रतिशत है।[13] इसका विवरण सारणी-6 5 मे दिया गया है-

सारणी-6 5

सावधि साख माग में वाणिज्य बैंकों तथा सहकारी बैंकों का योगदान

(भारतीय रिजर्व बैंक के अनुमान) **(करोड रूपये)**

वर्ष	वाणिज्य बैंक (65 प्रतिशत)	सहकारी बैक (35 प्रतिशत)	योग
1994-95	19,143	10,307	29,450
1999-2000	37,270	20,069	57,339

स्रोत - ए रिव्यू ऑफ द एग्रीकल्चर क्रेडिट सिस्टम इन इण्डिया

उपर्युक्त ऑकडे अन्तिम ऋण ग्राहकों के स्तर पर होने वाले ऋण का प्रदर्शित करते है। सामान्यता नाबार्ड 75-90 प्रतिशत तक बैको को पुनर्वित्तीयन करता है और 10-25 प्रतिशत बैंकों द्वारा किया जाता है। 1985-86 के अत तक नाबार्ड ने इसे ऋणों के 41 प्रतिशत अश का किया था। इस तरह नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन का प्रक्षेप इन ऋणो के लिये 1994-95 तथा 1999-2000 के लिए क्रमश रू0 14,725 तथा रू0 29,669 करोड अनुमानित है। नाबार्ड के ससाधनो की स्थिति जो इन पुनर्वित्तीयन अनुमानों के लिए उत्पन्न की जायेगी, उसका विवरण नीचे दिया गया है। इन अनुमानो

12. National Bank News Review, Dec 1990 pp 21-23
13. R.K Narula, Agricultural & Rural Advances b Commercial Bank, 1984, pp 479-485

के अलावा नाबार्ड ने स्वय अपने पुनर्वित्तीयन सहयोग हेतु आठवी योजना अवधि के लिए कुछ अनुमान किये है। इस तरह नाबार्ड के वित्तीय प्रक्षेपों को नीचे दिया जा सकता है।

सारणी-6 6

नाबार्ड के वित्तीय प्रक्षेप

(रूपये करोड)

संसाधनों की माग	1990-91-1994-95
नियमित किये जाने वाले ऋण एव अग्रिम	18,531
पुनर्भगतान	750
योग	19,281
ससाधनों की पूर्ति	
ऋणों की वसूली	10,283
राग्राऋ (दी अप) निधि मे	
भारतीय रिजर्व बैंक का योगदान	1,650
राग्राऋ (दी अप) निधि मे	
नाबार्ड के लाभों मे से योगदान	2,568
भारत सरकार से उधार	
योग	14,501
घाटा	4,780

उपर्युक्त विवरण मे यह स्पष्ट नही किया गया है कि प्रदशित घाटे का किस तरह पूरा किया जायेगा, किन्तु इस घाटे की पूति बाजार या सरकार या अन्य विकल्पों से उधार लेकर किया जायेगा। यहाँ यह निदिष्ट किया जा सकता है कि यह अनुमान वित्त के प्रवाह को प्रदर्शित करता है न कि स्टॉक को। यहाँ आठवी योजना के साथ-साथ नवी योजना के भी अनुमानों को परिकल्पित किया गया है और इस तरह नाबार्ड से पुनवित्तीयन का अनुमान 1994-95 तथा 1999-2000 तक क्रमश रू0 15,079 करोड तथा रू0 26,389 करोड अनुमानित किया है और इस तरह वार्षिक प्रक्षेपों और उन आधारों को जिन पर वे अनुमानित किये गये है, सारणी-6 7 मे प्रदर्शित किये गये है।

नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन प्रक्षेप के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र के लिये सावधि ऋण वितरण

सारणी 6 7

	30, जून की स्थिति	1984-85	1985-86	1986-87	1987-88	1988-89	1989-90	1090-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-2000
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
A	नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्तीयन												
1	सहकारी बैंक	1,807	2,181	2,421	2,688	3,825	4,440	5,157	5,991	6,999	8,247	9,801	17,152
2	सहकारी सस्थाए	1,526	1 719	2 040	2,386	2,059	2,391	2,777	3,226	3,769	4,441	5,278	9,237
3	योग	3,333	3,900	4,461	5,074	5,884	6,831	7,934	9,217	10,768	12,788	15,079	26,389
B	कुल वितरित सावधि ऋण												
4	सहकारी बैंक	5 136	5, 649	6,212	6,834	7,157	9,720	11,178	12,854	14,781	16,998	19,143	37,720
5	सहकारी सस्थाए	3 531	3 884	4 272	4 699	5 168	5,834	6,018	6,917	7,955	9,152	10,307	20,069
6	योग	8 667	9,533	10,485	11,538	12,685	14,954	17,196	19,771	22,736	26,150	29,450	57,339
	प्रतिशत 4 1	35 18	38 60	38 96	39 33	50 88	45 68	46 13	46 61	47 35	48 75	51 20	46 02
	5 2	43 21	44 25	47 75	50 77	39 84	45 68	46 14	46 64	47 37	48 52	51 21	46 03
	6 3	38 45	40 91	42 54	43 99	46 38	45 68	46 14	46 62	47 38	48 52	51 20	46 02

स्रोत - 1 नाबार्ड का विभिन्न वर्षो की वार्षिक रिपोर्ट ।

2 करेन्सी एण्ड फाइनेंस रिपोर्ट, 1984-85 ।

जिन स्रोतो से नाबार्ड वांछित ससाधनो का प्राप्त कर सकता है, उस सारणी 6 8 म प्रदर्शित किया गया है ।

सारणी 6-8

नाबार्ड वांछित ससाधन

(रूपये करोड)

	मद का नाम	1994-95	1999 - 2000
1	भारतीय रिजर्व बैंक का अशदान रू0 400 करोड प्रति वर्ष आठवी योजना मे, रू0 450 करोड प्रतिवर्ष नवी योजना मे	2,000	2,250
2	नाबार्ड के लाभ	2,600	4,000
3	बाजार से उधार	800	1,300
4	5 5 प्रतिशत की दर से भारतीय रिजर्व बैंक या भारत सरकार से उधार	2,248	2 760
5	अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निमाण और विकास बैंक/अन्तर्राष्ट्रीय विकास सघ के काण्उटर पार्ट फड	600	1,000
6	योग	8,248	11,310

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि प्रदर्शित सारणी के तीसरे, चौथे एव पाँचवे स्रोतों मे ससाधन प्राप्त करने मे कुछ समस्याए उत्पन्न होगी और कुछ सीमा तक घाटा पूरा नहीं किया जा सकेगा। यहाँ पर इन ससाधनों के वित्तीयन को नाबार्ड के लाभकारिता पर आधारित किया गया है।

नाबार्ड की स्थापना से यह परिकल्पना थी कि कृषि एव ग्रामीण साख चुनौतियों के लिये इसके पास पर्याप्त ससाधन होंगें। स्थापना के समय ही नाबार्ड का पूजी अशदान रू0 100 करोड़ के अतिरिक्त रिजर्व बैंक के कृषि पुनर्वित एव विकास निगम तथा राष्ट्रीय कृषि निगम के फडो की आदेयों और दायित्वो के रूप मे रू0 1390 करोड थी। यह स्थान्तरित वित्त लागत रहित ससाधन होने के नाते इक्विटी के समकक्ष माने जा सकते है। इस तरह नाबार्ड की ऋण इक्विटी अनुपात बहुत ही अनुकूल रही है और वह लगातार नाबार्ड तथा रिजर्व बैंक के स्थानान्तरित लाभों के कारण सुधरता रहा। इसी तरह इक्विटी फड के अतिरिक्त नाबार्ड ने ऋण वित्तीयन हेतु कई कदम उठाये है। इनका प्रधान स्रोत भारतीय रिजर्व बैक, जो हर तरह के अल्पकालीन आवश्यकताओ को पूरा करता है, नाबार्ड के तुलन-पत्र वर्ष 1982-83 से 1986-87 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय फड के स्थानान्तरण होने के नाते नाबार्ड की ऋण इक्विटी अनुपात जो 1 35 1 से अनुकूलतम् रूप मे शुरू हुयी, वह और अधिक सुधर कर 1986-87 मे 0 81 1 हो गयी। इस ऊँचे इक्विटी के कारण नाबार्ड ने बहुत ही लाभकारिता के आधार पर कार्य किया है और नाबार्ड के स्वय के लाभ इसके महत्वपूर्ण फड के रूप मे उत्पन्न हुआ है। वर्ष 1986-87 मे यह स्पष्ट होता है कि नाबार्ड को मध्यकालीन और दीर्घकालीन पुनर्वित्तीयन वितरण 6 5 प्रतिशत विभिन्न विकेन्द्रीकृत लघु कृषकों को हुआ है। यहाँ पर ब्याज दर नाबार्ड की लाभकारिता के सन्दर्भ मे महत्वपूर्ण है कि वस्तुत कोई भी विकास कार्य, जो अधिकाशत वर्तमान ब्याज-दर पर ऋणों के द्वारा वित्तीयन किया जा रहा हो, वह नाबार्ड के लाभकारिता को गिरायेगा। इसके पुनर्वित्तीयन शक्ति को कम करेगा। इस सम्बन्ध मे लाभकारिता के दृष्टिकोण से निम्नलिखित तीन बातें महत्वपूर्ण है।

1 नाबार्ड के क्रियान्वयन हेतु वार्षिक वृद्धि दर 14 प्रतिशत होनी चाहिये और भारतीय रिजर्व बैंक की तरह फड की कमी को बाजारी ऋणों द्वारा पूरा करना चाहिये। इस स्थिति को सारणी6 9 मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

2 उपर्युक्त स्थिति के आधार पर उसी वार्षिक वृद्धि दर, बाजारी ऋणों की वृद्धि पर 10 वार्षिक अवरोध किया जाना चाहिये। इस स्थिति को सारणी-6 10 मे प्रदर्शित किया जा सकता है।

सारणी- 6.10

वित्तीय स्थिति-मॉडल II **(रूपये करोड़)**

तुलन पत्र	**1995**	**2000**
ऋण	16887	32514
निवेश	1650	2000
अन्य परिसपतियॉं	929	1788
	19466	36302
पूॅंजी	100	100
प्रारक्षित निधियॉं *	4911	8642
दीअप तथा स्थरीकरण निधियॉं **	5760	7635
	10771	16377
उधार भारत सरकार से	5660	15300
भारतीय रिजर्व बैंक	1656	2323
डिबेंचर से	1100	1765
जमाओं से	109	149
अन्य दायित्व	170	388
	19466	36302
निधि (फंड) के स्रोत तथा प्रयोग		
लाभ *	615	831
दी अप तथा स्वरीकरण निधियॉं **	375	375
उधार भारत सरकार से	1010	2700
भारतीय रिजर्व बैंक से	108	152
डिबेंचर से	100	160
जमाओं से	7	9
अन्य दायित्व	23	60
	2338	4287
अग्रिम	2074	3993
निवेश	50	75
अन्य दायित्व	114	219
आय और व्यय		
प्राप्त योग्य ब्याज	1327	2381
देय योग्य ब्याज	577	1273
अन्य मद मे व्यय	115	244
अनुसधान और विकास के पूर्व शुद्ध लाभ	632	864
अनुसधान और विकास पर व्यय	17	33
शुद्ध लाभ	615	831

* नाबार्ड के अपने लाभ मे से दीर्घावधि परिचालन (दी अप) और स्थिरीकरण निधि को अतरित जोडकर

** भारतीय रिजर्व बैक का अशदान मात्र

3 उपलब्ध फड तथा बाजारी ऋणों मे कोई महत्वपूर्ण वृद्धि स्वीकृत न करना और उसे 10 प्रतिशत वार्षिक दर से बढने देना। इस स्थिति को सारणी-6 ।। मे प्रदर्शित किया गया है।

सारणी-6 ।।

वित्तीय स्थिति-मॉडल III

(रूपये करोड़)

तुलन पत्र	**1995**	**2000**
ऋण	14290	21660
निवेश	1650	1900
अन्य परिसपतियाँ	785	1190
	16725	24750
पूँजी	100	100
प्रारक्षित निधियाँ*	4968	8954
दी अप तथा स्थरीकरण निधियाँ **	5760	7635
	10828	16689
उधार भारत सरकार से	2916	3666
भारतीय रिजर्व बैंक से	1656	2323
डिवेचर से	1100	1765
जमाओं से	109	149
अन्य दायित्व	116	158
	16725	24750
निधि (फंड) के स्रोत तथा प्रयोग		
लाभ *	637	915
दी अप तथा स्थरीकरण निधियाँ **	375	375
उधार-भारत सरकार से	150	150
भारतीय रिजर्व बैंक से	108	152
डिबेंचर से	100	160
जमाओं से	7	9
अन्य दायित्व	8	9
	1385	1770
अग्रिम	1265	1630
निवेश	50	50
अन्य दायित्व	70	90
	1385	1770
आय और व्यय		
प्राप्त योग्य ब्याज	1162	1673
देय योग्य ब्याज	411	575
अन्य मद मे व्यय	100	162
	511	737
अनुसधान और विकास के पूर्व शुद्ध लाभ	651	936
अनुसधान और विकास पर व्यय	14	21
शुद्ध लाभ	637	915

* नाबार्ड के अपने लाभ मे से दीर्घावधि परिचालन (दी अप) और स्थरीकरण निधि को अतरित को जोडकर

** भारतीय रिजर्व बैक का अशदान मात्र

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि ऋण प्रसार के वित्तीयन को ऋणों द्वारा करने से नाबार्ड की लाभकारिता हतोत्साहित होती है। प्रथम रूप सारणी-6 8 में 1994 में लाभ गिरने लगते हैं और 2000 वर्ष तक नाबार्ड अपने कार्यगत ऋणो को प्रारम्भ कर देता है। इसी तरह सारणी-6 9 मे भी स्पष्ट है कि कुछ रियायती दरो पर ऋण के बावजूद नाबार्ड 6 5 प्रतिशत ब्याज दर को देते हुये अन्तत घाटे में जायेगा, किन्तु तीसरे विकल्प सारणी-6 10 में नाबार्ड की लाभाकारिता निम्न वृद्धि दर और लागत के कारण अनुमानित की गयी है। इस सम्बन्ध में नाबार्ड की लाभकारिता की दृष्टिकोण से सारणी-6 9 में ऋणो को 1994-95 और 1999-2000 के लिये उपयुक्त होगा। एक उदाहरण के दृष्टिकोण से सारणी-6 8 में प्रयुक्त समृद्धि और ब्याजदरों पर आधारित नाबार्ड के इक्विटी योगदान का अनुवर्णन किया गया है, जिसे 1993-94 से 1999-2000 के लिये सारणी-6 12 मे दिखाया जा सकता है।

सारणी-6 12

नाबार्ड के इक्विटी योगदान

वर्ष	1993-94	1994-95	1995-96	1996-97	1997-98	1998-99	1999-2000
इक्विटी योगदान	30	145	285	480	680	905	1145

6 4 नाबार्ड · कुछ महत्वपूर्ण सुझाव

नाबार्ड के कार्यों तथा सगठनात्मक सरचना को अधिक प्रभावी बनाने हेतु और सही माने में कृषि और ग्रामीण विकास का एक विकासात्मक बैंक स्थापित करने के लिये यहाँ कुछ सुझावों को दिया जा सकता है। यह पाया गया है कि विभिन्न क्रियाओं मे समन्वय का अभाव तथा नाबार्ड के पुनर्वित्तीय क्रियाओ के निर्देशन और मूल्याकन के अभाव के कारण पुनर्वित्तीयन का चक्रीय प्रवाह प्रभावी ढग से कार्यशील नहीं है।[12] स्थानीय आवश्यकताओं के पुनर्वित्तीयन हेतु क्षेत्रीय स्तर पर

कार्यालयों को सम्बन्धित नही किया गया है और इस तरह नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन क्रियाओं मे उच्च स्तरीय नीति और नियोजन की प्रधानता रही है। इस तरह नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन क्रियाओं के विश्लेषण पर आधारित इनकी कुछ कमियों को प्रकट किया गया है। इसमे विनियोग निर्धारक तत्व योजनाओं का वित्तीयन तथा इकाई लगातों को दृढ़ रूपों मे प्रयोग किया जाता है और परिवर्तनीय स्थायी दशाओं और स्थानों को ध्यान मे नहीं रखा जाता है। इसी तरह फार्म तथा गैर फार्म साख नियोजन तथा अल्पकालीन मध्यकालीन तथा दीर्घ कालीन के वित्तीयन मे भी प्रभावी समन्वय का अभाव है और क्षेत्रीय कार्यालयो की जिम्मेदारियाँ बहुत ही सीमित है। साथ ही साथ यह भी देखा गया है कि नाबार्ड ने इन दिशाओं मे कुछ कदम उठाये है, इनमे प्रधान कार्यालयों के अधिकार को क्षेत्रीय कार्यालयों को सौंप कर पुनर्वित्तीयन सम्बन्धी अनेक प्रार्थनापत्रों का निपटारा करना, जिला साख नियोजनों की गुणवत्ता वृद्धि विधियों का विकास करना, राज्य और क्षेत्रवार योजनाओं के वित्तीयन मॉडलो को विकसित करना तथा योजनाओ के क्रियान्वयन मे बैंकों को उचित दिशा-निर्देश प्रदान प्रदान करना। इस तरह इन विभिन्न कार्यों से जिला साख नियोजन व्यष्टि स्तरीय योजना हेतु वास्तविक भूमिका अदा करके उत्पादन साख-सम्र्थक विनियोग फार्म और गैर-फार्म के क्रियाओं मे समन्वय तथा पिछडे क्षेत्रों के विकास मे सहयोगी होगा। अन्तत यह आशा की जाती है कि सेवा क्षेत्र उपागम के अन्तर्गत गाव साख नियोजन महत्वपूर्ण रूप से प्रभावी जिला साख नियोजन से जुड़ सकेगा और इस तरह से व्यष्टि एव समष्टि साख नियोजन और पूरी साख व्यवस्था मे नियोजन स्थापित किया जा सकेगा। इसके भारतीय रिजर्व बैंक और नाबार्ड को अन्य एजेन्सियों के साथ प्रतिक्रिया और समन्वय के साथ कार्य करना होगा। इसी तरह नाबार्ड को अपने ग्राहक बैंकों की क्षमता मे वृद्धि करनी होगी, जिससे कि ये वैक परियोजनाओं के लिये तकनीकी तथा वित्तीय आवश्यकता पूरी कर सके और नाबार्ड को भी अपने निरीक्षण तथा सस्तुति प्रक्रिया को सुधारने मे सहयोग मिलेगा। साथ ही साथ यह भी महत्वपूर्ण होगा कि पुनर्वित्तीयन का विवरण ग्राहक बैंकों के सुविधानुसार उपर्युक्त स्थान पर होना चाहिये। यद्यपि इस दिशा मे नाबार्ड पहले से ही ऋणों के बँटवारे को क्षेत्रीय कार्यालय स्तर पर कर रहा है, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इसमे और शीघ्रता की जाये।

नाबार्ड को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये यह भी सुझाव दिया गया है कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को उनके प्रयोजित बैंकों मे मिला देना चाहिये और इस तरह से ससाधनों को महत्वपूर्ण

रूप से अन्य सवर्धनात्मक क्रियाओं मे प्रयुक्त करना चाहिये। इस तरह से सारे सुझावों का अभिप्राय यह है कि हम सस्थागत ग्रामीण साख सरचना को स्वनिर्मित रूप मे उत्पन्न कर सके। इन सुझावों के साथ यह आशा की जा सकती है कि एक राष्ट्रीय बैंक के रूप मे साख व्यवस्था के नेतृत्व में यह भविष्य मे उभरेगा। परन्तु इन सबके लिये आवश्यक है कि नाबार्ड को अधिक से अधिक सहकारी साख व्यवस्था पर सक्रेन्दीत होना पड़ेगा। ग्रामीण क्षेत्रों मे कार्यरत बहुत सी वाणिज्य बैंक शाखाओं को भी साख को अधिक प्रभावी रूप से समायोजित करने के लिये मजबूत बनाना होगा। वस्तुत यह कार्य नाबार्ड के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों मे से है, जिसके बिना साख प्रवाह तथा वसूली का चक्र पूरा नहीं होगा और व्यवस्था स्व निर्मित नही हो सकेगी। इसी तरह नाबार्ड को अपने फलनात्मक योग्यता, जो परियोजनाओं, प्रभावीकरण, मूल्याकन, निर्देश आदि से सम्बन्धित है, को सुधार करना चाहिये, जिससे ग्राहक बैंक इन कार्यों को अधिक प्रभावी ढग से कर सके। अन्तत नाबार्ड को अपने निरीक्षण कार्यों तथा विकास कार्यों मे अधिक अच्छा सम्बन्ध स्थापित करना पडेगा अर्थात् निरीक्षणों से प्राप्त स्थितियों का उपर्युक्त ढग से ग्राहक सस्थाओं को मजबूत करने मे किया जाना चाहिये। साथ ही साथ नाबार्ड को ऐसे क्षेत्र, जो बेकार भूमि, वानिकी कार्यक्रम, शिल्पकार वर्ग के वित्तीयन तथा कृषि आधारित उद्योगों मे पुनर्वित्तीयन को विकसित करना चाहिये। इस तरह नाबार्ड को प्रत्येक जिला मे एक अधिकारी की नियुक्ति के द्वारा जिला साख नियोजन के सहयोग तथा ग्राहक बैंकों के सहयोग हेतु होना चाहिये। इन सब महत्वपूर्ण आधारो पर यह समझा जाता है कि इन सभी कार्यों तथा जिम्मेदारियों को पूरा करने मे नाबार्ड को कार्य करना पड़ेगा । परन्तु पहले की उपलब्धियों तथा महत्वपूर्ण कार्य परिवर्तनों के साथ अगले दशक तक इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होने की सम्भावना है। इस सन्दर्भ मे भारतीय रिजर्व बैंक को सारे शक्तियों, अधिकार नाबार्ड को नीति विषयों मे दे देना चाहिए और सहकारी बैंकों को इस दिशा मे सहयोग करना चाहिये, जिससे इनकी सरचना और कार्यों को ठोस आधार प्राप्त हो सके।

---- 000 ----

अध्याय - 7

कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एवं साख नियोजन की आवश्यकता

(NEED FOR MONETARY AND CREDIT PLANNING FOR AGRICULTURAL SECTOR)

एक नियोजित अर्थव्यवस्था के रूप मे कृषि विकास के सामने अनेक वित्तीय समस्याये आती है, जिनका समाधान मोद्रिक एव वित्तीय-नीतियों द्वारा किया जाता है। भारतीय कृषि व्यवस्था मे व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से लेकर नाबार्ड की भूमिका का उल्लेख पिछले अध्यायों मे किया जा चुका है। भारतीय कृषि क्षेत्र मे साख वितरण एव कृषि कार्यों के लिए अग्रिमों तथा ऋणों से यह प्राप्त हुआ है कि उनका उत्पादक एव उत्पादिता मे प्रयोग न होकर दुर्पयोग हुआ है, जिससे एक ओर मुद्रा एव साख का विस्तार हुआ है तथा साथ ही साथ ऋणों एव अग्रिमों की वसूली नहीं हो पा रही है। इन साख सुविधाओं का अनुत्पादक एव अवाछनीय प्रयोग हुआ है। इससे एक ओर जहा अनुत्पादक व्यय मे वृद्धि हुई है, वही देश मे मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति पर अधिक दबाव पड़ा है। अर्थव्यवस्था मे मोद्रिक एव वित्तीय क्षेत्रों मे सरचनात्मक परिवर्तन लाने हेतु मुद्रा एव साख प्रवाह को नियन्त्रित करना होगा। इसके लिए मौद्रिक एव वित्तीय नीति के साथ-साथ नियोजित मुद्रा योजना तथा नियोजित साख की आवश्यकता है। प्रो० एस० चक्रवर्ती ने अपने रिपोर्ट 'ए रिव्यू ऑफ मॉनेट्री सिस्टम इन इण्डिया' मे मोद्रिक लक्ष्यों द्वारा नियोजित मुद्रा एव साख नियोजन की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है।[1] इसी तरह डॉ० पी० डी० हजेला ने अपने ग्रन्थ 'प्रावलम्पस ऑफ मॉनेट्री पॉलिसी इन अण्डरडॅवलप कन्ट्री' मे नियोजित मुद्रा को आधार रख कर सस्ती मुद्रा नीति का विरोध किया है।[2] इसी क्रम मे प्रो० सूरजभान गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'मॉनेट्री प्लानिग इन इण्डिया' मे मुद्रा एव साख नियोजन

---

1. S. Chakravarty, Report of the Committee to Review the Working of the Monetary System, 1985 pp.166-172.
2. P.D. Hajela, The Problem of Monetary Policy in Underdeveloped Countries,1966, pp.30-34.

पर अत्यधिक बल दिया है।[3] यद्यपि जून 1991 मे नरसिहम कमेटी रिपोर्ट के बाद देश की मौद्रिक एव वित्तीय व्यवस्था स्वतत्र तथा उदारीकरण नीति के आधार पर बाजारी शक्तियों के निर्धारित पूजीवादी प्रवृत्तियों से सम्बन्धित रही है, तथापि मुद्रापूर्ति एव साख पूर्ति की नियोजन की आवश्यकता बनी रही है।

7 1 कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एवं साख नीतियॉं

जहॉं तक कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नीतियों का प्रश्न है, इसका विस्तृत विवरण पिछले अध्यायों मे दिया जा चुका है, फिर भी देश के कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नियोजन की आवश्यकता के सन्दर्भ मे अति सक्षेप मे इन नीतियों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा। प्रथम पचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं पचवर्षीय योजना तक कुछ उतार-चढ़ाव के बावजूद विशेषकर से बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद से कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नीतियॉं महत्वपूर्ण रूप से उत्पादन एव उत्पादिता हेतु प्रेरक रही है। 1961 के बाद से कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र मे साख एव मुद्रा का अत्यधिक विस्तार हुआ और इनके विकास मे मौद्रिक एव साख नीति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। मौद्रिक एव साख नीति मे परिवर्तन मुख्य रूप से ऊॅंचे स्तर के विनियोग द्वारा आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिये की गयी।

7 2 मौद्रिक एव साख नीति की सीमाऍं

देश की कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु यद्यपि मौद्रिक एव साख नीतियॉं अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है, परन्तु सही माने मे उनका कृषि एव ग्रामीण विकास पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं रहा है। इसका प्रधान कारण यह रहा है कि ग्रामीण बैंकिग व्यवस्था तथा अन्य वित्तीय सस्थाओं द्वारा नियोजित ढग से विकासात्मक कार्यों हेतु इन सुविधाओं का प्रयोग नहीं हो पाया है और न ही उत्पादन एव रोजगार सृजन हेतु इन्हे उपयुक्त बनाया गया है। यद्यपि समय-समय पर भारतीय रिजर्व बैंक बैंक-दर, खुले बाजार की क्रियाए तथा आरक्षित कोष अनुपात विधियों के साथ-साथ अनेक प्रकार के

---

3. S.B.Gupta, Monetary Planning For Inida.

चयनात्मक साख विधियों को अपनाया है, परन्तु मोटे तौर पर भारतीय मौद्रिक एव साख नीति सस्ती मुद्रा नीति के ही स्वरूप मे बनी रही है। देश मे अविकसित मुद्रा बाजार तथा पूजी बाजार के रहते हुए तथा सुसगठित बाजारों के अभाव मे सस्ती मुद्रा नीति अधिकाशत हानिकारक एव स्फीतिकारी रही है। केन्स के मिश्रित अर्थव्यवस्था मे मौद्रिक क्षेत्र मे मौद्रिक नीति की एक सीमा है, जिसे तरलता जाल कहते है और यहा पर मौद्रिक अधिकारी अर्थव्यवस्था को इस जाल से छुटकारा दिलाने के लिए मौद्रिक नीति की असमर्थता को प्राप्त करते है। यहा पर मौद्रिक नीति के स्थान पर वित्तीय नीति महत्वपूर्ण होती है, जो अर्थव्यवस्था को स्थिरावस्था से हटा कर विकासात्मक प्रवृत्तियों मे ले जाती है। इससे स्पष्ट है कि भारतीय मौद्रिक नीति एव साख नीति मे ब्याज दर का विशेष महत्व नहीं है और मुद्रा पूर्ति एव साख पूर्ति मे नियत्रण तथा नियोजन की आवश्यकता है। यद्यपि कृषि क्षेत्रों की आगतों यथा खादों, रासायनिक उर्वरकों पर अब दी जाने वाली सब्सीडी को कम कर दिया जा रहा है या समाप्त कर दिया जा रहा है, परन्तु देश के आर्थिक विकास एव सामाजिक न्याय की दृष्टिकोण से, पिछडे क्षेत्रों एव वर्गों की दृष्टिकोण से, देश के ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र मे सीमान्त कृषक, भूमिहीन कृषक तथा अन्य गरीब जनता तथा उनके लिए उपयुक्त रोजगार के अवसरों के न होते हुए अब भी इस बात की भारी गुजाइश है कि प्रभावी ढग से कृषि एव साख का प्रवाह उत्पादक कार्यों के लिए किया जाय।

कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के साख वितरण के सम्बन्ध मे जहा उत्पादन एव उत्पादिता का प्रश्न रहा है, वहीं साख, ऋणों की वसूली की भी समस्या रही है। देश के अधिकाश व्यापारिक बैंक एव विशेषकर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हानि पर चल रहे है। वस्तुत यह आश्चर्य की बात है कि देश मे साख-मेला तथा रू0 10,000 तक के बैंकों के कर्ज को समाप्त किया गया है। भारत जैसे एक निर्धन देश मे पर्याप्त ससाधनों के अभाव मे इस तरह की क्रियाए पूर्वाग्रह तथा राजनैतिक दृष्टिकोण से प्रेरित रही है, जिससे ये बैंक लाभकारिता के उद्देश्य को पूरा नहीं कर सके। मौद्रिक नीति से ही अधिक जटिल साख नीति है, जिसमे साख का बॅटवारा प्राथमिकता के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों मे किया जाता है। वर्तमान साख नीति की यह अव्यवस्था रही है कि वह निर्धारित तथा लक्षित उद्देश्यों तक साख सुविधाओं को नहीं पहुचा पायी और इसका अधिकाश लाभ बडे तथा शक्तिशाली लोगों द्वारा अनुत्पादक कार्यों के लिए किया गया है।

कृषि एव साख नीति की यह भी सीमा रही है कि मौद्रिक एव वित्तीय नीतियों के अलावा अन्य गैर-वित्तीय मध्यस्थ सस्थाए और उनके द्वारा कृषि कार्यों हेतु वित्तीयन पर सरकार तथा मौद्रिक अधिकारियों का कोई नियत्रण नहीं रहा। भारत मे सहकारी समिति, अब तक की स्थिति मे ग्रामीण क्षेत्रों के कृषि विकास मे बहुत ही महत्वपूर्ण एजेन्सी के रूप मे माना गया है, परन्तु उपयुक्त मौद्रिक एव साख नीति न होने के कारण सहकारी साख समितिया भ्रष्टाचार के केन्द्र बिन्दु बन गये।

अत मौद्रिक एव साख नीति के क्रियान्वयन एव प्रभावी उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि देश की मौद्रिक एव साख नीति, मजदूरी नीति, आय नीति, उपभोग नीति तथा अन्य नीतियों मे समन्वय स्थापित किया जाय।

कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव वित्तीय नीति की असफलता इस दृष्टिकोण से भी रही है कि देश मे मुद्रा बाजार, पूँजी बाजार, तथा स्टॉक एक्सचेन्ज मे सम्बन्ध नहीं है और ये असगठित तथा अविकसित है। यही कारण है कि देश मे ब्याज-दर नीति द्वारा आर्थिक-विकास एव कृषि-विकास को अत्यधिक रूप मे प्राप्त नहीं किया जा सकता। केन्स की मौद्रिक नीति, जो ब्याजदर नीति से सम्बन्धित है, वह भारत जैसे अल्पविकसित देश मे लागू नहीं होती और इस तरह भारतीय कृषि क्षेत्र मे सस्ती मुद्रा नीति अधिक उपयुक्त नहीं है।

7 3 कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नियोजन की प्रकृति तथा क्षेत्र

पिछले अध्यायों से यह स्पष्ट होता है कि देश के कृषि विकास हेतु मौद्रिक एव साख नियोजन की अत्यधिक आवश्यकता है। जहा तक साख नियोजन का प्रश्न है, वह मौद्रिक नियोजन से अधिक जटिल है। मौद्रिक नियोजन का तात्पर्य समग्र मुद्रापूर्ति एव साख के नियत्रण स है, वहीं साख नियोजन का तात्पर्य मुद्रा की मात्रा एव साख की मात्रा नियत्रित करने से नहीं है। साख नीति की प्रकृति क्षेत्रवार एव दिशावार आवंटन करने की है, जो साख के विभिन्न प्रयोगकर्ताओं के बीच की जाती है। जहा तक साख के आवटन का प्रश्न है, वह निम्नलिखित तीन कारणों से महत्वपूर्ण है

I- साख का बटवारा सरकार तथा व्यापारिक क्षेत्रों से है ।

2 व्यापारिक क्षेत्र के अन्तर्गत साख का आवटन प्राथमिकता के आधार पर यथा, कृषि निर्माण तथा व्यापारिक क्रियाओं से सम्बन्धित है।

3 आर्थिक स्तर या आय स्तरों के आधार पर व्यक्तिगत ऋण ग्राहकों के बीच साख का आवटन करना है।

उपर्युक्त साख आवटन के अतिरिक्त कुछ अन्य आधार भी महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए निर्माण उद्योगों मे लघु स्तरीय उद्योग वृहद उद्योगों की तुलना मे पीछे रह जाते है। इसी तरह व्यापार मे आन्तरिक व्यापारियों तथा विदेशी व्यापारियों एव थोक व्यापारियों तथा फुटकर व्यापारियों मे अन्तर किया जाता है। इस तरह कुछ चयनित वस्तुओं के सन्दर्भ मे साख का नियोजन महत्वपूर्ण हो जाता है। भारतीय रिजर्व बैंक एक दूसरे वर्गीकरण के आधार पर साख का आवटन करती है, अर्थात् प्राथमिकता के आधार या अन्य आधार पर। यहा पर क्षेत्रीय साख का बॅटवारा एव शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र मे साख का बटवारा महत्वपूर्ण है।[4]

उपर्युक्त विश्लेषण से कई महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते है। हमारा विश्लेषण किसी प्राप्त निष्कर्ष को देने से सम्बन्धित नहीं है, अपितु उन कदमों को लेने से है, जिससे नीति, उपाय व्यवहारिक रूप से प्रभावी हो सके। भारतीय सन्दर्भ मे मौद्रिक एव साख नियोजन मात्र नीति निर्माण स्तर पर निर्धारित करने से नहीं है, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से कुल बैंक साख तथा इसके आवटन तथा प्रयोगकर्ताओं के बीच निर्धारण करने से है। इसी के साथ-साथ इन नियोजनों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था मे आधारभूत एव सरचनात्मक परिवर्तनों से है, जिससे वांछित रूप मे साख का बटवारा हो सके, क्योंकि बिना इसके सम्पूर्ण मौद्रिक एव साख नियोजन केवल कागजी कार्यवाही होगी।

साख के निर्धारण के सभी प्रश्नों का प्रारम्भ सम्पूर्ण बैंक साख की मात्रा तथा नियोजित समयावधि (वार्षिक) से है। एक वर्ष के अन्तर्गत कितना साख एव कितना मुद्रा की मात्रा नियोजित है, यह महत्वपूर्ण है। इन दोनों नियोजनों का उद्देश्य एक ही उद्देश्य से सम्बन्धित है। यहाँ पर हम उद्देश्यों, लक्ष्यों तथा उपकरणों को नहीं दे रहे है, क्योंकि उनका विवरण पहले ही दिया जा चुका है। जो हम मुद्रापूर्ति के नियत्रण के बारे मे कह चुके है, वही बात साख नियत्रण के बारे मे

---

4. Suraj Bhan Gupta, Monetary Economics 1990 p. 392.

भी लागू है।

इसके पहले कि हम साख नियोजन एव मौद्रिक नियोजन मे साख की मात्रा का क्षेत्रवार आवटन एव निर्धारण करे, यह आवश्यक हो जाता है कि हम अकित साख तथा वास्तविक साख मे भेद स्पष्ट कर दे। मौद्रिक नियोजन तथा साख नियोजन मे अकित साख तथा वास्तविक साख का महत्व विशेष अर्थ मे अपना महत्व रखता है। अकित साख का अभिप्राय वर्तमान द्रव्य के मूल्य से है, जबकि वास्तविक साख स्थायी मूल्य द्रव्य से है। इनके अन्तर मे जो महत्वपूर्ण बात है वह समयोपरि मूल्य परिवर्तन से सम्बन्धित है। यदि मूल्यस्तर स्थिर रहे तो अकित साख एव वास्तविक साख मे कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं होगा। परन्तु यदि कीमतें समयोपरि बदलती रहती है तो अकित साख वास्तविक साख से भिन्न होगा। स्फीतिकारी दशाओं के सन्दर्भ मे अकित साख अधिक होगा, वास्तविक साख से। नीति निर्माण हेतु यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि मौद्रिक अधिकारी अधिकतम् सीमा तक अकित साख मात्रा को नियत्रित करते है। यह अकित साख से भिन्न है। यदि स्थायी व्यवहार सम्बन्धी आदेयों की प्राथमिकता ऐसी वस्तुओं के लिए करेन्सी जमा अनुपात तथा समय जमा अनुपात दिये हो तो यह अकित साख समग्र पूर्ति का निर्धारक होता है। चूँकि अर्घ मुद्रा स्टॉक का नियत्रण मौद्रिक अधिकारियों द्वारा होता है, अत यह निश्चित करना कि उच्च अर्घ मुद्रा मे वृद्धि तथा अकित साख मुद्रा मे वृद्धि कितना हो, निर्धारित करना आसान है। यहा पर यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि किस कारण से साख की अधिक पूर्ति ऋण ग्राहकों को किया जाता है, जो बैंक के शर्तों के आधार पर ऋण प्राप्त करते है। ये भी मौद्रिक सिद्धान्त के अन्दर जानने वाली बाते है और वे भी नवक्लासिकल परपरा मे।

कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नियोजन की प्रकृति, स्वरूप तथा क्षेत्र के सम्बन्ध मे यह महत्वपूर्ण होगा कि हम साख के आवटन के आधार का विवरण प्रस्तुत करे। इस सम्बन्ध मे कम से कम दो नीतिपरक बातें निश्चित हो जानी चाहिए, इसके पहले कि कोई साख आवटन का नियोजन किया जाय। प्रथमत समष्टि स्तर पर यह स्पष्ट रूप से जाना जाय कि साख नीति का पूरा दृष्टिकोण साख आवटन पर आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्रानुसार है अथवा साख आवटन आय सम्पत्ति सम्बन्धित ऋणकर्ता के आधार पर है। दूसरा यह कि समष्टि स्तर पर यह जानना आवश्यक है कि क्या साख का प्राथमिक आधार–व्यक्तिगत ऋण ग्राहक के भौतिक प्रतिभूति पर आधारित है। इन दोनों

बातों को स्पष्ट कर देना यहा महत्वपूर्ण होगा। इन बातों का स्पष्टीकरण मोटे तौर पर सामाजिक उद्देश्यों के आधार पर होगा। प्रथमत आर्थिक क्रिया के अनुसार क्षेत्रवार इनका निर्धारण होता है। इस तरह हम व्यक्तिगत साख, कृषि साख, निर्यात साख, खाद्यान्न साख तथा अन्य के रूप मे देखते है। यदि पूरा उद्देश्य उत्पादन और विनियोग को प्रोत्साहित करना है और वह भी निर्धारित अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे, तो क्षेत्रीय उपागम को न्यायोचित माना जा सकता है। इस तरह से वही बातें कृषि यथा, खाद्यान्न एव आवश्यक कच्चे माल से सम्बन्धित है। इस पर सब्सिडी विचार-धारा के दृष्टिकोण से साख का आवटन व्यापारिक बैंको तथा मौद्रिक अधिकारियों द्वारा प्राथमिक क्षेत्र के रूप मे किया जाता है। बहुत से अध्ययनों मे यह दिखाया गया है कि कृषि साख का एक महत्वपूर्ण भाग बडे कृषकों द्वारा अधिग्रहित कर लिया जाता है और क्षेत्रवार साख का वितरण इस समस्या का कोई हल नहीं ढूढ़ पाता । इस सम्बन्ध मे यह महत्वपूर्ण होगा कि हम सामाजिक न्याय क दृष्टिकोण से यथा, गरीबी, बेरोजगारी निवारण तथा क्षेत्रीय असमानताओं तथा असतुलन को दूर नहीं कर सकते। कृषि क्षेत्र मे अनेक ऐसे शोध-अध्ययन हुए है, जिसमे अनुकूल दशाओं के अन्तर्गत प्रति हेक्टेयर उत्पादन छोटे फार्मों पर बडे फार्मों की तुलना मे अधिक हुए है। यह अनुमान किया गया है कि उत्पादन वृद्धि 100 से 200 प्रतिशत वर्तमान स्तर से अधिक हो सकती है। 'एग्रीकल्चर रिफाइनेंस एण्ड डेवलॅपमेन्ट कारपोरेशन' ने यह पाया है कि लघु सिचाई पर विनियोग का प्रतिफल भूमि विकास, डेयरी तथा अन्य क्षेत्रों मे 20 से 50 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहा। अत इसमे कोई सन्देह नहीं है कि उपयुक्त साख नियोजन द्वारा छोटे उत्पादक महत्वपूर्ण रूप से से उत्पादन को बढ़ाने मे कार्य कर सकते है।

समान महत्व के रूप मे गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या साख नियोजन की दृष्टिकोण से उपयुक्त है, उस सीमा तक जहा बेरोजगारी गरीबी का कारण है। वहा दो बातें एक जैसे हो जाती है, परन्तु बहुत सख्या मे रोजगार प्राप्त व्यक्ति भी गरीब है। इस तरह से ये दो समस्याए गरीबी तथा बेरोजगारी कितनी शीघ्रता से दूर की जा सके, यह साख तथा मुद्रा नियोजन का मुख्य विषय रहा। पिछले 30 वर्षों मे नियोजन तथा विकास पर दबाव बडे उद्योगों को विकसित करने मे रहा, जिससे इन समस्याओं का समाधान नहीं हो सका। इनका सही समाधान लघु स्तरीय उत्पादकों को अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र मे बढ़ावा देने से है, मुख्य रूप से कृषि उद्योग तथा व्यापार सेवाओं मे। यहा पर हम इस समस्या का विस्तृत विश्लेषण करेगे और निष्कर्षात्मक रूप मे यह स्पष्ट करना चाहेगे कि कृषि एव

ग्रामीण विकास के क्षेत्र मे लघु उत्पादन कार्यों हेतु साख नियोजन एव नीति की अलग से व्यवस्था होनी चाहिए।[5]

7.4 कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक लक्ष्य तथा नियोजित मुद्रा एव साख पूर्ति

इसके अन्तर्गत हम मुख्य रूप से चक्रवर्ती कमेटी रिपोर्ट एव उनकी सस्तुतियों का विवरण प्रस्तुत करेगें। यह समिति 1985 मे भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा देश के मौद्रिक व्यवस्था तथा कार्यशीलता की समीक्षा हेतु नियुक्त की गयी थी। समिति के सुझावों का उद्देश्य मौद्रिक नियत्रणों को सुधारना रहा है, जिससे मूल्य स्थायित्वता प्राप्त की जा सके। समिति के अध्ययन मे यह उल्लेखनीय रहा कि मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण कार्य आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए देश मे स्थायित्वता प्राप्त की जाय। मौद्रिक नियत्रण को मोटे तौर पर तीन रूपों मे विभाजित किया गया -

1. मौद्रिक लक्ष्यों के आधार पर नियत्रित मुद्रापूर्ति मे वृद्धि करना।
2. साख बजटीकरण, जिसके अन्तर्गत व्यापारिक क्षेत्र मे उपयुक्त बैंक साख की मात्रा तथा इस तरह के साख का सामाजिक कार्यों मे आवटन का विस्तृत रूप सम्मिलित है।
3. उपरोक्त दो के लिए समिति ने व्यवस्थित क्षेत्र मे उपकरणों पर विशेष जोर दिया और प्रशासनिक ब्याज दर को उपयुक्त माना। इस तरह से मौद्रिक लक्ष्य तथा साख बजटीकरण अनुपेक्षित क्षेत्रों मे प्रभावपूर्ण कार्य कर सकते है।

उपर्युक्त तीनों सस्तुतिया अर्थात् मौद्रिक लक्ष्य, साख बजटीकरण तथा नियत्रित परिवर्तनशील प्रशासनिक ब्याज दर अर्थव्यवस्था के मौद्रिक क्षेत्र के सरचनात्मक परिवर्तन की रीढ है।

इनके अलावा भी समिति ने व्यष्टि स्तर पर तथा व्यक्तिगत ऋण ग्राहक मे पुर्नसरचना और ऋण व्यवस्था पर भी अपने सुझाव दिये है। इसी के साथ-साथ वित्तीय व्यवस्था के विकास हेतु कई महत्वपूर्ण बातें उल्लेखनीय है। प्रथमत , मुद्रा बाजार के एक उपकरण से रूप मे ट्रेजरी बिल को विकसित करना। दूसरे, कॉल मुद्रा बाजार को विस्तृत करके गैर -बैंकों के अल्पकाल वित्त को

---

5. S.B. Gupta- Monetary Economics, 1990 p. 402.

सम्मिलित करना। तीसरा, बिल बाजार को प्रोत्साहित करना। चौथा, कैश क्रेडिट सिस्टम के स्थान पर धीरे-धीरे ऋणों एव बिल वित्तों द्वारा करना। इनका विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

जहा तक मौद्रिक लक्ष्यों का तात्पर्य है, वह मुद्रापूर्ति के वार्षिक वृद्धि दर को निश्चित करने से है। इसका उद्देश्य पूर्व परिभाषित नीति उद्देश्यों को प्राप्त करना है। मौद्रिक सिद्धान्त तथा मौद्रिक अनुभवों के आधार पर समिति ने सही माने मे मुद्रापूर्ति की समृद्धि को निर्धारित करने का सुझाव दिया है, जिससे यह नियत्रित हो कर नियोजित उत्पादनस्तर पर मूल्य स्थायित्वता प्राप्त कर सके, यद्यपि इसके बावजूद भी कि मूल्य अन्य गैर-शक्तियों से प्रभावित है। इस सम्बन्ध मे समिति ने 4 प्रतिशत थोक कीमतों मे वृद्धि का प्रस्ताव रखा। इस मात्रा का प्रभाव दो कारणों से कमजोर पड़ता है। पहला, यह स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था अनुभवों के आधार पर 7 प्रतिशत से अधिक मुद्रास्फीति की स्थिति मे रही है, और दूसरा, इसे अधिक मुद्रास्फीति के रूप मे मानता है, जो तुलनात्मक मूल्यों मे परिलक्षित होता है।

मुद्रापूर्ति के निर्धारित लक्ष्यों के निर्धारण का आधार वही है, जिसका विश्लेषण हम कर चुके है। सक्षेप मे यह कहाजा सकता है कि अनुकूलतम् रूप मे मुद्रापूर्ति मे वृद्धिदर अपनाना चाहिए, जो प्रत्याशित मुद्रा-माग वृद्धि के अनुरूप हो और प्रत्याशित वास्तविक आय स्थिर मूल्यों पर वृद्धि के अनुरूप हो। इस तरह से मुद्रापूर्ति वृद्धि का लक्ष्य का आधार आसानी से प्राप्त हो जाता है। यदि वास्तविक उत्पादन वृद्धि का दर 5 प्रतिशत हो तो अगले वर्ष मे मुद्रापूर्ति की वृद्धि दर लक्ष्य भी 5 प्रतिशत होनी चाहिए।

चक्रवर्ती समिति मे मुद्रापूर्ति के लक्षित दायरा को नहीं दिखाया गया है। इसमे मौद्रिक नीति के लचीलेपन हेतु , जिसमे भारतीय रिजर्व बैंक तथा सरकार को विवेचनात्मक अधिकार हों, समिति ने यह स्पष्ट किया है कि यहा तक कि मुद्रापूर्ति का लक्षित दायरा, जो पहले उद्घोषित कर दिया गया है, उसे उच्च या निम्न रूप मे उत्पादन तथा प्रवृत्तियों के आधार पर किया जा सकता है।[6]
भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुभवगम्य लक्ष्यों जिसमे मुद्रा, मूल्य एव उत्पादन का सम्बन्ध है, जो समिति के रिपोर्ट मे प्रस्तावित की गयी है , वह यह दर्शाती है कि इनमे पारस्परिक सम्बन्ध वार्षिक

---

6. Report of the Committee to Review the Working of the Monetary System, S. Chakravarty 1985, pp. 25-30.

आकडों के आधार पर सम्भव नहीं है। इन सब कारणों से मौद्रिक समीक्षा, अल्पकालीन उतार-चढ़ाव सम्बन्धी उत्पादन तथा मूल्य मे वांछित नहीं है। दूसरे शब्दों मे, अत्यधिक अल्पकालीन मौद्रिक व्यवस्था का सचालन नही होना चाहिए और इस बात पर विशेष जोर देना चाहिए कि दीर्घकालीन मौद्रिक स्थायित्वता सुनिश्चित की जा सके।[7] इस सम्बन्ध मे उपर्युक्त आधार पर मौद्रिक नीति एव नियोजन की मुख्य दो बातें महत्वपूर्ण है पहला, समिति ने मुद्रा पूर्ति के लिए एम$_1$ की तुलना मे एम$_3$ को अधिक महत्व दिया, यद्यपि समिति ने ऐसा करने का कोई स्पष्ट कारण नहीं दिया। दूसरा, समिति ने उच्च अर्घ मुद्रा अथवा मुद्रागुणक को मुद्रापूर्ति के रूप मे माना और मुद्रागुणक को भारत मे अत्यधिक स्थिराक के रूप मे देखा।

समिति का दूसरा महत्वपूर्ण प्रतिवेदन मौद्रिक सरचनात्मक परिवर्तन साख बजटीकरण रहा। साख बजट के मुख्य रूप से दो रूप है। प्रथमत व्यापारिक क्षेत्र मे यथा सम्भव बैंक साख को निर्धारित करना तथा दूसरा क्षेत्रवार साख वितरण का विस्तृत लेखा-जोखा रखना।

समिति का तीसरा महत्वपूर्ण प्रतिवेदन अवयवों था जो वर्तमान मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन से अलग और प्रशासनिक ब्याजदर व्यवस्था से सम्बन्धित है। समिति ने वर्तमान मौद्रिक नीति के सचालन मे कई कमियों के सम्बन्ध मे स्पष्ट किया है, जिसे हम मौद्रिक एव साख नीति के सीमाओं मे दिखा चुके है। सामान्य रूप मे समिति साख के मूल्यों के निम्न होने का विरोध करती है- चाहे यह सरकारी क्षेत्र मे हो या व्यापारिक क्षेत्र मे। इसके कई कारण है। भारतीय रिजर्व बैंक से सरकार द्वारा अत्यधिक ऋण देने को प्रोत्साहन तथा सरकारी ऋणों का मौद्रीकरण। भारतीय रिजर्व बैंक के पास बैंकों के पुर्नवित्तीयन हेतु कम मुद्रा छोडना। सरकार तथा अन्य द्वारा प्रभावी साख प्रयोग को हतोत्साहित करना। वित्तीय बजटों को हतोत्साहित करना। बैंक तथा अन्य वित्तीय सस्थाओं की लाभकारिता को कम करना। अत समिति ने अधिकतर दशाओं मे अनेक ब्याज दरों को ऊँचे दरों मे करने की सस्तुति की है। विश्लेषणात्मक सुविधा की दृष्टिकोण से समिति के अनेक सस्तुतियों को निम्न तीन रूपों मे देखा जा सकता है -

पहला, ब्याजदर तथा प्रत्याशित मुद्रा स्फीति-दर,

---

7. S.B.Gupta, Monetary Planning for India p. 69.

दूसरा, सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दर,

तीसरा, बैंकों के जमा और ऋण पर ब्याज दर।

साराश रूप मे चक्रवर्ती समिति की उपर्युक्त सस्तुतियों तथा अन्य सस्तुतियों को हम दे सकते है। ये सारी सस्तुतिया मोटे तौर पर मुद्रापूर्ति मे वृद्धि को लक्ष्य करके दी गयी है। मौद्रिक लक्ष्य के अन्तर्गत यदि मुद्रा-माग की आय लोच दो के बराबर मान लिया जाय तो इसका परिणाम मुद्रापूति मे अत्यधिक समृद्धि से है और इस तरह यदि वास्तविक उत्पादन की तीव्र दर पाच प्रतिशत वार्षिक है तो यह लोच अकेले ही मुद्रापूर्ति मे पाच प्रतिशत वृद्धि करेगा। सबसे महत्वपूर्ण बात जो इस समिति मे उल्लेखनीय है वह चार प्रतिशत सामान्य मुद्रा-स्फीति की दर से है। समिति ने अधिकतम् वार्षिक मुद्रापूर्ति के एक दायरे की सस्तुति की है, न कि लक्ष्य का । इस तरह से मुद्रापूर्ति मे अत्यधिक वृद्धि का दर बना रहेगा। समिति ने मुद्रापूर्ति के वृद्धि सम्बन्धी दायरे को और भी लोचशील बनाया है, जिसमे यह कहा गया है कि मौद्रिक लक्ष्य को अर्थव्यवस्था के अनुभवों एव समस्याओं के सन्दर्भ मे ऊपर नीचे किया जा सकता है और तरह निर्धारित मौद्रिक लक्ष्य मुद्रापूर्ति पर नियत्रण करने मे असमर्थ होगा। साख बजटीकरण के अन्तर्गत यह सस्तुति कि भारतीय रिजर्व बैंक बैंकों को अतिरिक्त पुनर्वितीयन करे, जब आवश्यक साख के अनुमान की पूर्ति न हो सके। ऐसी दशा मे मौद्रिक लक्ष्यों के आधार पर मौद्रिक ससाधनों को उत्पन्न किया जा सकता है, इससे मुद्रापूर्ति के बढ़ने का दूसरा रास्ता खुल जाता है। अतत प्रशासनिक ब्याज दरों के सम्बन्ध मे मुद्रा स्फीति की दर को चार प्रतिशत वार्षिक रखा गया है। यह दर वर्तमान प्रशासनिक ब्याज दरों हेतु वांछित है।

7 5 2000 ए0डी0 तक मौद्रिक एव साख प्रक्षेप

एक नियोजित अर्थव्यवस्था मे भविष्य की प्रक्षेपों तथा आवश्यकताओं का सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत क्षेत्रों के विनियोग हेतु महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस दिशा मे कृषि क्षेत्र मे कई प्रयास किये गये है, जो उत्पादन तथा आवश्यक आगतों का अनुमान प्रस्तुत करते है। यद्यपि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद से साख सुविधा व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण रूप से की गयी है और कुछ प्रयास भविष्य की साख आवश्यकताओं के सन्दर्भ मे किये गये । भविष्य के आवश्यकता तथा प्रक्षेपों हेतु अभी अनुमान विधिया पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पायी है।

पूरे देश के रूप मे कृषि साख की आवश्यकता हेतु एक वर्किंग ग्रुप कृषि उत्पादन बोर्ड भारत सरकार द्वारा 1965 मे नियुक्त किया गया था, वह विशिष्ट रूप से चौथी पचवर्षीय योजना के सन्दर्भ मे थी। वैकटरमैया समिति ने अल्पकालीन साख आवश्यकता 1973-74 के लिए रू0 2000 करोड अनुमानित किया था। चौथी पचवर्षीय योजना मे दीर्घकालीन साख आवश्यकता का अनुमान रू0 1500 करोड और मध्यकालीन साख का अनुमान 500 करोड किया गया था। 1976 मे नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर, अल्प-कालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन साख आवश्यकता को वर्ष 1985 के लिए किया था। आयोग ने लघु कृषक, सीमान्त कृषक तथा कृषि श्रमिकों एव गैर लघु कृषकों का अलग-अलग अनुमान किया था। साख की अल्पकालीन अनुमान कृषि सम्बन्धित-उत्पादनों यथा दूध, सुअरपालन, मुर्गी पालन, भेड पालन, तथा मत्स्यं पालन हेतु अलग-अलग किया गया था और कुल साख आवश्यकताओं का अनुमान रू0 16149 करोड किया था।

'नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर' की अनुमान विधि अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन साख आवश्यकताओं की अलग-अलग सीचित एव गैर सींचित फसलों के लिए तथा कृषि सम्बन्धी अन्य क्रियाओं के लिए किया गया था। अल्पकालीन साख आवश्यकताओं के निर्धारण मे यह माना गया था कि प्रति हेक्टेयर रू0 600 सिंचित क्षेत्र के लिए तथा रू0 400 असिचित क्षेत्रों के लिए होगा। कुल साख फसलों के लिए सीमान्त एव लघु कृषकों के बीच, पूरे देश के स्तर पर प्रत्येक वर्ग के लिए निर्धारित किया गया था। इसी तरह चारागाह कार्यक्रमों के लिए साख का अनुमान अल्पकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन आवश्यकताओं के अनुसार किया गया था।

यहा पर हम कृषि क्षेत्र मे साख का अनुमान एव प्रक्षेप वर्ष 1990, 1995 तथा 2000 वर्ष के लिए प्रस्तुत कर रहे है। अल्पकालीन साख आवश्यकता के सम्बन्ध मे हमने यह मान्यता मान ली है कि उत्पादन, मूल्य तथा नकदी एव वस्तुरूप मे व्यय के बीच सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध एक फसल से दूसरे फसल मे तथा एक ही फसल मे एक राज्य से दूसरे राज्य मे परिवर्तित होता रहता है। इस सम्बन्ध के आधार पर फसल उत्पादन की वित्तीय आवश्यकता को प्राप्त किया गया है। नकदी तथा वस्तुरूप मे वित्त की आवश्यकता की भी इस सम्बन्ध पर आधारित किया गया है। फसल ऋण व्यवस्था के अन्तर्गत यह सामान्यतया मान लिया जाता है कि परपरागत कृषि मे नकदी साख का अनुपात प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन का 1/3 भाग से अधिक नहीं होगा। प्रयुक्त मॉडल मे

अल्पकालीन साख आवश्यकता राज्यवार एव फसलवार के आधार पर किया गया है।

राज्यवार एव फसलवार वार्षिक अनुमान वर्तमान और स्थिर मूल्यों (1970-71) पर महत्वपूर्ण फसलों के सम्बन्ध मे 1970-71 से 1980-81 के सन्दर्भ मे सी0एस0ओ0, भारत सरकार, 1985 के आधार पर 1981-82 से 1984-85 तक किया गया है। भौतिक उत्पाद तथा मूल्यों के आकडे कृषि मत्रालय, भारत सरकार से प्राप्त किये गये है। राज्यवार तथा फसलवार उत्पादन मूल्यों को इन चार वर्षों मे कुल उत्पादन को उत्पादन मूल्य से गुणा करने से प्राप्त हुआ है। इसी तरह फसलवार उत्पादन के मूल्य के आकडे वर्तमान और स्थिर मूल्यों पर पूरे देश स्तर पर सी0एस0ओ0, भारत सरकार 1987 से प्राप्त हुये। राज्यवार एव फसलवार आकडे फसल मूल्यों के आधार पर प्राप्त किये गये, जो 1970-71 से 1984-85 तक सम्बन्धित थे।

यहा पर फसलों के उत्पादन सम्बन्धी समृद्धि दर का विश्लेषण महत्वपूर्ण होगा इस तरह का समृद्धि दर प्रक्षेप 1984-85 से 1990-91 तथा 1995-96 से 2000 वर्ष तक अनुमान प्रमुख उत्पादक राज्यों के सम्बन्ध मे दिया गया है। इस तरह समृद्धि दर के अनुमान को हम सिचाई सुविधाओं तथा अन्य सुधारों के सम्बन्ध मे फसल उत्पादन की माग तथा व्यापार सम्भावनाओं के दृष्टिकोण से किये है। भविष्य के समृद्धि दरों के लिये हम कृषकों के सम्बन्ध मे सर्वेक्षणों के प्राप्तियों का भी सहारा लिये है, जिसमे तकनीक हस्तारण, फसल उत्पाद, उर्वरक का प्रयोग तथा अन्य सुधरी हुई कृषि प्रक्रिया सम्मिलित है।

यहा पर विभिन्न वर्ग परिवारों के द्वारा कृषि क्षेत्र का अनुपात देना उपयुक्त होगा। मॉडल के अनुसार साख की आवश्यकता, जबकि वित्तीय आवश्यकता का राज्यवार एव फसलवार अनुमानित कर लिया गया हो, कृषि जोत परिवारों के रूप मे विभाजित किया जा सकता है। इन आकड़ो के आधार पर वर्ष 1990 का अनुपात अनुमानित किया गया है और वर्ष 1995 तथा 2000 वर्ष तक का अनुमान किया गया है। सम्पूर्ण देश के स्तर पर आकडे इस बात को इंगित करते है कि भारतीय कृषि मे सीमान्त कृषक अधिक होते जा रहे है। इस सम्बन्ध मे विभिन्न वर्ग परिवारों का अनुपात पूरे देश के स्तर पर सारणी 7 । मे दिया जा सकता है ।

सारिणी 7 ।

भारत मे विभिन्न वर्ग के कृषकों के जोतों का वर्गीकरण

वर्ष	लघु तथा सीमान्त कृषक		मझले कृषक		बड़े कृषक	
	सख्या	क्षेत्र	सख्या	क्षेत्र	सख्या	क्षेत्र
1970-71	69 89	29 87	26 21	48 25	3 90	30 88
1976-77	72 64	23 52	24 37	50 24	2 99	26 24
1980-81	74 54	26 27	23 05	50 92	2 41	22 81
1990	-	28 96	-	52 03	-	19 01

Source: National Bank News Review, March, 89

अल्प समयावधि के लिए वित्तीय आवश्यकता 1984-85 मे रू0 29500 करोड होगी और 2000 वर्ष तक यह बढ़कर रू0 49000 करोड होगी । इन वित्तीय आवश्यकताओं को जोत - परिवार के आधार पर विभाजित कर दिया गया है, जिसका विवरण सारणी 7 2 मे प्रदर्शित किया गया है। क्रियान्वित क्षेत्र के आकडा 1984-85 के वास्तविक आकडों पर आधारित है, जब कि अन्य वर्षो का अनुमान लगाया गया है । वित्तीय आवश्यकता के इन अनुमानों तक पहुचने के लिए कृषि परिवार जोतों का आकार हम वही मान लिये है, जो अन्य शोधकर्ताओं ने माना है और इस तरह कृषि - फार्म से आय को वर्ष 2000 तक दिया गया है ।

सारणी 7 2

अखिल भारतीय स्तर पर जोतों के आकार के अनुसार वित्तीय आवश्यकता

(रूपये करोड)

वर्ष	लघु तथा सीमान्त जोतें	मध्यम जोतें	बड़े जोतें	योग
1984-85	7740	115003	6721	29464
1990	9892	117771	6493	34156
1995	11748	121107	7712	40567
2000	14293	125680	9383	49356

लघु एव सीमान्त कृषकों का वांछित वित्तीय माग 1984-85 मे रू0 60740 करोड़ से बढ़कर 2000 वर्ष मे रू0 14993 करोड हो जायेगा, जबकि बडे कृषक वर्ग का यह वित्तीय आवश्यकता कम हो करके 1984-85 मे रू0 6721 करोड हुआ और 1990 के आधार पर यह बढ़कर रू0 9383 करोड हो गया। 1990 की तुलना मे 1984-85 में इस साख आवश्यकता को गिरने का कारण कृषि-जोत आकार मे कमी का होना रहा।

फसलवार तथा राज्यवार वित्तीय आवश्यकताओं के अनुमान के बाद साख आवश्कताओं के चार नीति विकल्पों के रूप मे माना गया है। इसे सारणी 7 3 मे प्रदर्शित किया गया है, जिसमे साख आवश्यकता जो 1984-85 मे रू0 24783 करोड था, बढ़कर 2000 वर्ष तक रू0 44964 करोड हो गया। कुल साख आवश्यकताओं को कृषि जोत आकार के अनुसार विभाजित कर दिया गया है। प्रथम विकल्प मे लघु एव सीमान्त कृषकों के लिये अन्य विकल्पों की तुलना में अधिक साख आवश्यकता को प्रदर्शित किया गया है। यहा पर बडे कृषकों की साख माग कम दिखाई गई है। विकल्प 2 मे सबसे कम साख आवश्यकता को प्रदर्शित किया गया है। नीति निर्धारकों ने लघु तथा सीमान्त कृषकों पर अधिक प्रधानता दिया है, इस दृष्टिकोण से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की स्थापना की

गयी है, जो इन कृषकों की साख मॉग को पूरा कर सके। कृषि परवार जोत आकार के आधार पर साख आवश्यकता का विवरण सारणी 7 3 मे स्पष्ट किया गया है।

सारणी 7 3

विभिन्न विकल्पों के अनुसार साख की आवश्यकता

(रूपये करोड़)

वर्ष	योग	लघु एव सीमान्त जोतें		मध्यम जोतें		बड़े जोतें	
				विकल्प 1			
1984-85	27,824	9,450	(34,00)	15,003	(53,92)	3,361	(12,08)
1990	33,108	12,090	(36,52)	17,771	(53,68)	3,247	(9,80)
1995	39,322	14,359	(36,52)	21,107	(5368)	3,856	(9,80)
2000	47,842	17,470	(36,52)	25,680	(53 68)	4,592	(9 80)
				विकल्प 2			
1984-85	25,783	6,773	(26 27)	13,129	(50 92)	5,881	(22 81)
1990	30,101	8,717	(28 96)	15,662	(52 03)	5,722	(19 01)
1995	36,196	10,082	(28 96)	18,833	(52 03)	6,881	(19 01)
2000	44,968	13,023	(28 96)	23,397	(52 03)	8,548	(19 01)
				विकल्प 3			
1984-85	29,464	7,740	(26 27)	15,003	(50 92)	6,721	(22 81)
1990	34,156	9,492	(27 79)	18,071	(52 91)	6,593	(19 30)
1995	40,567	11,748	(28 96)	21,287	(52 03)	7,712	(19 01)
2000	49,356	14,293	(28 96)	25,680	(52 03)	9,383	(19 01)

विकल्प 4

1984-85	36,011	9,460	(26 27)	18,337	(50 92)	8,214	(22 81)
1990	41,747	12,090	(28 96)	21,721	(52 03)	7,936	(19 01)
1995	49,582	14,359	(28 96)	25,798	(52 03)	9,426	(19 01)
2000	60,324	17,470	(28 96)	31,386	(52 03)	11,468	(19 01)

नोट. **कोष्ठक में दिये गये अक प्रत्येक वर्ष के योग का प्रतिशत दर्शाते है।**

अब हम साख आवश्यकता को 1984-85 से 2000 वर्ष तक फसलवार दिखा सकते है। यह फसलवार विश्लेषण अल्पकालीन साख आवश्यकताओ पर आधारित है। प्रथम विकल्प के आधार पर हमने साख आवश्यकता को विभिन्न फसलों के दृष्टिकोण से सारणी 7 4 मे प्रदर्शित किया है, पुन हमने फसलवार साख आवश्यकता को मुख्य फसलो के रूप मे विभाजित किया है। हमने विभिन्न फसलों के प्रतिशत वर्गों के रूप मे दी हुई कीमते वर्ष 1978-79 से 1980-81 के आधार पर रखा है। इस तरह 1984-85 से 1990-95 के आधार पर प्रस्तुत विश्लेषण दिया जा रहा है।

सारणी 7 4

विकल्प I के अनुसार फसल साख की आवश्यकता

(रूपये करोड)

फसल वर्ष	1984-85		1990		1995		2000	
चावल	7,274	(26)	3,441	(25)	10,270	(26)	13,107	(27)
गेहू	3,098	(11)	4,055	(12)	5,425	(14)	7,433	(16)
अन्य खाद्य पदार्थ	1,958	(7)	2,169	(7)	2,395	(6)	2,777	(6)
चना	781	(3)	887	(3)	1,028	(3)	1,251	(3)
अन्य दालें	1,101	(4)	1,252	(4)	1,451	(4)	1,765	(4)
गन्ना	1,619	(6)	1,922	(6)	2,283	(6)	2,777	(6)

मूँगफली	1,694	(6)	1,964	(6)	2,333	(6)	2,907	(6)
अन्य तिलहनें	1,424	(5)	1,843	(6)	2,431	(6)	3,253	(7)
कपास	1,139	(4)	1,421	(4)	1,814	(5)	2,426	(5)
जूट और	321	(1)	382	(1)	453	(1)	552	(1)
आलू	391	(1)	487	(1)	621	(2)	831	(2)
अन्य फसलें	2,027	(26)	8,286	(25)	8,819	(21)	8,762	(17)
योग	27,827	(100)	33,109	(100)	39,323	(100)	47,841	(100)

नोट कोष्ठक में दिये गये अक योग का प्रतिशत दर्शाते है।

1990 से 1995 तथा 2000 वर्ष तक साख आवश्यकता की मात्रा को सक्षेप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। आदर्श विश्लेषणों के अलॉवा जो मुख्य समस्या थी वह पर्याप्त तथा समय से कृषि मे साख देने की थी। सारी रूकावटे, जो शीघ्र साख देने मे आती है, उन सब का निराकरण होना चाहिए। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है -

1 कृषि क्षेत्र मे साख आवश्यकता केवल साख आवश्यकता तक सीमित नही होना चाहिए अपितु पूरी कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित होना चाहिए।

2 इस सम्बध मे साख आवश्यकता आगत वितरण के रूप मे होना चाहिए और थोक तथा फुटकर आवश्यकताओं को ध्यान देना चाहिए। इस सम्बन्ध मे साख आगत वितरण हेतु सहकारी समितियो पर विशेष जोर देना चाहिए। फिर भी यदि आगत का वितरण व्यक्तिगत क्षेत्र से होता है तो वही प्राथमिकता मिलनी चाहिए, जो इस समय कृषि क्षेत्र मे प्रदान की जा रही है।

3 कृषि आधारित उद्योगो को, जो अभी तक औद्योगिक क्षेत्र मे गिना जाता है, वे कृषि साख के अग होने चाहिए और वही प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो वर्तमान समय मे कृषि आवश्यकता हेतु दी जा रही है।

4 जहा तक अल्पकालीन साख आवटनों तथा साख कार्यक्रमों का प्रश्न है, कृषि उत्पादन मे उप विभाग को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

5 हर प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे अल्पकालीन साख हेतु उपलब्ध साधनो को बढ़ाया जा सके।

6 ग्रामीण क्षेत्रों से उपलब्ध जमाओं का पूरा प्रयोग अल्पकालीन साख आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लगाना चाहिए।

7 इन ससाधनों का प्रयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र मे नही लगाना चाहिए।

8 यदि आवश्यकता हो तो कृषि के प्राथमिक क्षेत्रों मे वर्तमान 17 प्रतिशत से बढ़ाकर के 25 प्रतिशत अश लगाना चाहिए। कृषि उत्पादन के उपक्षेत्र मे विशेष अश निर्धारित किया जाना चाहिए।

9 चूंकि भविष्य मे अल्पकालीन साख की मात्रा कम होने की सम्भावना है, अत इसका वितरण उत्पादिता तथा विवेकपूर्ण ऋण भुगतान से सम्बन्धित होनी चाहिए।

10 वर्तमान समय मे अल्पकालीन साख का वितरण जो विभिन्न परिवार जोत के आधार पर है, उसमे विशेष ध्यान देना चाहिए।

11 यदि साख का वितरण विभिन्न जोत आकारों के आधार पर हो तो वर्तमान समय मे बडे और लघु तथा सीमान्त कृषक से साख परिवर्तित करके अधिकाश साख मध्यम कृषको को देना चाहिए।

12 उपर्युक्त साख आवश्यकता के आधार पर अल्पकालीन साख का क्षेत्रवार वितरण होना चाहिए। इसका विवरण सारणी 7 5 मे प्रदर्शित किया गया है।

सारणी 7.5

फसल उत्पादन हेतु साख आवश्यकता का अल्पकालीन साख आपूर्ति सम्बन्धी व्यूह नीति

(रूपये करोड़)

व्यूहनीति	1984-85 धनराशि	वृद्धि दर (प्रति0)	1990 धनराशि	वृद्धिदर (प्रति0)	1995 धनराशि	वृद्धि दर (प्रति0)	2000 धनराशि
व्यूहनीति I	3219		16554		29491		35889
वृद्धि दर 1984-85 तथा 1990 के मध्य		38 75					
वृद्धि दर 1990 तथा 1995 के मध्य				12 24			
वृद्धि दर 1995 तथा 2000 ए डी						4.01	
यूह नीति II	3214		9741		29491		35889
वृद्धि दर 1984-85 तथा 1990 के मध्य		24 79					
वृद्धिदर 1990 तथा 1995 के मध्य				24 79			
वृद्धि दर 1995 तथा 2000 ए0डी0						4 01	
यूह नीति III	3219		7957		19661		35889
वृद्धि दर 1984-85 तथा 1995 के मध्य				19 84			
वृद्धि दर 1995 तथा 2000 ए0डी0						12.79	
व्यूहनीति IV	3219		7192		16065		35889
वृद्धि दर 1984-85 तथा 2000 ए.डी. के मध्य		17 44		17 44		17 44	

कृषि हेतु सस्थागत स्रोतों से अल्पकालीन, मध्यमकालीन तथा दीर्घकालीन कुल साख का अनुमान 1999-2000 तक के लिये किया गया है। साख माग के प्रक्षेपों को अनुमानित करने हेतु ऋणों एव अग्रिमों का भुगतान तथा बकाया वर्ष के अत तक का लगाया गया है न कि प्रत्याशित दर से। यह प्रक्रिया पूर्णरूप से साख माग के तुलनात्मक दृष्टिकोण से लगायी गयी है, जिसमे कृषि तथा सम्बन्धित क्रियाओं मे इसका अनुमान किया गया है। अल्पकालीन सावधि फसल उत्पादनों मे यह प्रधान मान्यता रही है कि फसलों के उत्पादन मूल्य मे तथा उन फसलो के उत्पादन लागत मे सम्बन्ध है। ऐसा सम्बन्ध फसल-फसल मे तथा एक ही फसल मे परिवर्तित होता रहता है। इसी तरह मौसम-मौसम मे, राज्य-राज्य मे और राज्य के अन्तर्गत भी परिवर्तित होता रहता है जो कृषि जलवायु दशाओं पर आधारित है।

7.6 कृषि क्षेत्र में मौद्रिक एवं साख नियोजन की आवश्यकता

भारतीय कृषि क्षेत्र मे एक सतुलित विकास के दृष्टिकोण से तथा साख का क्षेत्रवार आवटन के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। मौद्रिक एव साख नियोजन की इस रूप मे परिभाषित किया जा सकता है कि देश मे सम्पूर्ण मौद्रिक एव साख ससाधनों को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों मे उनकी आवश्यकता, प्रयोग की क्षमता और पूरे विकास के दृष्टिकोण से आवटन किया जाय। साख नियोजन के दो पक्ष है-समष्टि पक्ष एव व्यष्टि पक्ष। समष्टि पक्ष मे साख नियोजन क्षेत्रवार और लक्ष्य के अनुसार साख का आवटन होता है और व्यष्टि स्तर पर यह बैंकों के द्वारा विभिन्न बैंक सस्थाओं के माध्यम से किया जाता है।

साख नियोजन के पूर्व दो नीति सम्बन्धी बातों को ध्यान मे रखना चाहिए। प्रथमत , व्यापक दृष्टिकोण से इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है कि क्या पूरे साख का ध्यान अर्थव्यवस्था के क्षेत्रवार साख आवटन पर है कि नही। दूसरे, यह कि व्यापक रूप से यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि व्यक्तिगत ऋण ग्राहकों को दिये जाने वाले ब्याज का आधार वास्तविक सम्पत्ति के द्वारा प्राप्त होगी अथवा उनके भुगतान सामर्थ्यता अथवा दोनों के सहयोग के आधार पर। इन प्रश्नों का उत्तर इस बात पर निर्भर करेगा कि सामाजिक उद्देश्य किस प्रकार से चुने गये है और उनका क्या क्रम है। परपरागत स्थिति के अनुसार पहले प्रश्न का उत्तर अर्थव्यवस्था के आर्थिक क्रियाओं के अनुसार साख

आवटन से है। इस तरह से हम औद्योगिक साख, कृषि साख, निर्यात साख, मध्य साख तथा अन्य साख की बात कर सकते है। यदि पूरा उददेश्य उत्पादन को और विनियोग को बढ़ाने से है और अन्य सामाजिक कारकों यथा बेरोजगारी, गरीबी तथा समाज मे आय तथा सम्पत्ति का बॅटवारा और इस तरह से क्षेत्रीय उपागम को औचित्यपूर्ण देखा जा सकता है।

सफलता के दृष्टिकोण से साख-नियोजन जमायोजनाओं से सम्बंधित होनी चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण साख का आवटन बैंको की कुल जमा पर निर्धारित होता है इस तरह का साख नियोजन विकासशील भारत देश मे अपना विशेष महत्व रखता है, ताकि सीमित बैंक ससाधनों का उत्पादकता के दृष्टिकोण से उपयोग हो सके और जिससे सामाजिक दृष्टिकोण से साख का आयोजन निर्धारित किया जा सके । इस तरह साख नियोजन बैंकिग व्यवस्था के निर्धारित उद्देश्यों को सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण से देश की प्रगति मे विशेष महत्वपूर्ण है । एक नियोजित अर्थव्यवस्था का विकास उपलब्ध आर्थिक ससाधनों का प्रयोग राष्ट्रीय नियोजन की प्राथमिकता के आधार पर करता है । इस प्रकार का प्राकृतिक, आर्थिक ससाधनों का प्रवाह अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत नीति प्राथमिकता के आधार पर किया जाता है । चूकि व्यापारिक बैंको को साख सीमित मात्रा मे है,इसलिए इसका प्रयोग अच्छे ढग से नियोजित होना चाहिए, जिससे कि इसका प्रयोग अधिकतम् हो सके और आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से आर्थिक विकास अधिकतम् किया जा सके । इस तरह इस अध्याय का प्रमुख उद्देश्य भारत मे साख नियोजन को देश के नियोजित अर्थव्यवस्था के दृ्टिकोण से करना है, जहा मूल्य स्थायित्वता तथा अन्य सामाजिक आर्थिक उद्देश्यो को प्राप्त किया जा सके । इस दिशा मे व्यापारिक बैंको को आर्थिक सामाजिक परिवर्तन के दृष्टिकोण से सबसे प्रमुख समझा जा रहा है ।[8]

साख नियोजन का उद्देश्य उपलब्ध साख ससाधनो का अधिकतम् उत्पादन के दृष्टिकोण से प्रयोग हो सके और पूरे समाज को देखते हुए। इसका अभिप्राय यह है कि यह सम्भव है कि सामाजिक आर्थिक दृष्टिकोण से अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्रो मे साख मात्रा को निर्धारित किया जाय। इस तरह साख नियोजन का उद्देश्य साख प्रवाह को उन दिशाओं मे प्रवाहित करने की आवश्यकता है,

---

8. S. Subrahmanya- Trends and Progress of Banking in India p. 273.

जो परम्परागत क्षेत्रों से हट कर व्यापारिक क्षेत्र मे अधिक महत्वपूर्ण है, जिसे प्राथमिक क्षेत्र कहा जाता है और जिससे कि उत्पादकता मे वृद्धि हो सके।

पूरे देश मे साख की मात्रा इसकी आवश्यकता से कम है। इसलिए साख की मात्रा को विवेकपूर्ण होना चाहिए ताकि विभिन्न प्रतिस्पर्धी क्षेत्रों मे इसे वितरित किया जा सके। एक पूजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत गैर-नियोजित तथा परपरागत बैंक व्यवस्था के अन्तर्गत साख नियोजन साख के मूल्यों के आधार पर किया जाता है। जैसा कि साख के माग की तुलना साख पूर्ति मे कमी होने के कारण स्वभावत बाजारी ब्याजदर ऊँचा होगा, जिससे व्यापारिक वर्ग मे ऋण ग्राहकों मे साख की माग मे कमी होगी और वे पूर्व के बराबर हो जायेगा। इस तरह साख की माग इसकी पूर्ति की तुलना मे ब्याजदर को घटाने का काम करेगी और अपने प्रभाव मे सीमान्त कृषकों की साख माग को बढ़ायेगी। मूल्य व्यवस्था इस तरह से यदि स्वतत्र क्रियान्वयन मे छोड दी जाय तो अतिरिक्त साख की माग एव पूर्ति को कम करेगा और साख बाजार मे सस्थिति उत्पन्न करेगा।

फिर भी इस तरह सीमित साख का बॅटवारा विभिन्न प्रतिस्पर्धी लोगों मे मूल्य व्यवस्था द्वारा पूरी अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से अनुकूलतम् होगा और बडे ऋण ग्राहकों के द्वारा प्राथमिक क्षेत्र कृषि एव उद्योग को उचित साख न मिल पायेगा। पूरे समाज के दृष्टिकोण से साख उत्पादक बनाने के लिये और अर्थव्यवस्था के सम्भव अधिकतम् विकास के लिए साख का विभिन्न क्षेत्रों मे आवंटित करना चाहिए, न कि उनके ऊँचे ब्याजदर को अदा करने की योग्यता के अनुसार, अपितु उनके आर्थिक एव सामाजिक महत्व के अनुसार दिया जाना चाहिए। साख नियोजन उत्पादन, रोजगार सृजन, मूल्य स्थायित्वता को सुनिश्चित करने तथा आर्थिक लाभों को समानता के आधार पर विकसित करने के आधार पर किया जाना चाहिए।

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पहले, जब बैंक शेयर ग्राहकों से सम्बन्धित थे, उस समय लाभकारिता बैंको का मुख्य उद्देश्य था और उस समय ये बैंक सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान मे नहीं रखते थे, वर्तमान समय मे ये एक दूसरे तरफ, जबकि राष्ट्रीकृत बैंक पूर्णतया सामाजिक लोगों द्वारा नियत्रित है, समाज के प्रति उत्तरदायी है, न कि व्यक्तिगत शेयर ग्राहको के। अब ये न केवल

सामाजिक उद्देश्य को प्राप्त करने मे सहायक है, अपितु अपने उद्देश्यों के प्रमुख रूप मे साख क्रियाओ को रखते है। अब बैंकों का सचालन इस बात से नही देखा जाता कि ये वास्तविक रूप मे कितना लाभ करते है, अपितु उनकी सफलता इस बात मे देखी जाती है कि देश के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने मे कितने सफल रहे। यहाँ पर स्पष्ट किया जा सकता है कि व्यापारिक बैंकों द्वारा धीरे-धीरे सामाजिक उद्देश्यों को अपनाने के कारण क्षेत्रवार साख का विकास महत्वपूर्ण रूप से हुआ है। इसका प्रभाव निश्चित रूप से देश के तीव्र आर्थिक एव सामाजिक विकास पर पडेगा। देश की बैंकिग व्यवस्था के सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों एव देश मे समृद्धि का एक उपकरण माना जाता है। अत देश के व्यापारिक बैंकों को अपने कार्यान्वयन मे ऐसे साख नियोजन मे लाना चाहिए, जो देश के आर्थिक एव सामाजिक न्याय को सुनिश्चित कर सके। इस तरह के सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने मे साख नीति को विस्तृत साख नीतियों और जमा नीतियों से जुड़ना चाहिए।

विकासशील भारत देश मे एक केन्द्रीय बैंक सुरक्षित मुद्रापूर्ति को कायम रख सकता है और इस सन्दर्भ मे साख नीति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। एक साख नीति या मौद्रिक बजट एक दीर्घकालीन दृष्टिकोण से, जिससे मुद्रा की पूर्ति तथा वस्तुओं का उत्पादन वृद्धि बराबर हो सके। इसतरह से समष्टि स्तर पर साख का नियोजन अर्थव्यवस्था के मुद्रापूर्ति वृद्धि के अनुपात मे उत्पादन क्षमता और उपलब्ध बाजारी अतिरेक के रूप मे होना चाहिए, किन्तु व्यष्टि स्तर पर साख नियोजन एक सतुलित आधार रखता है, जिससे क्षेत्रीय स्थायित्वता तथा बेरोजगारी का वितरण अनिश्चित न हो सके। जहा भी उत्पादन मे कमी होगी, विशेषकर कृषि उत्पादन की दृष्टिकोण से वहाँ मुद्रापूर्ति की सुरक्षित मात्रा मे कमी होगी, परन्तु मुद्रा पूर्ति मे इस तरह के गिरावट औद्योगिक उत्पादकों और औद्योगिक क्षेत्रों मे सुस्ती ला सकता है। अत एक सामान्य उपायों के साथ-साथ एक सतुलित क्षेत्रवार उपाय ही अधिकतम् क्षमता वाले समृद्धि और मूल्य स्थायित्वता को प्राप्त कर सकता है। यह भारतीय रिजर्व बैंक का उत्तरदायित्व है कि वह साख नियोजन को इस तरह करे कि मौद्रिक बजट का क्रियान्वयन व्यष्टि स्तर पर साख-बजट का स्वरूप ले लें । इसका उद्देश्य मौद्रिक बजट द्वारा मुद्रापूर्ति के विकास-दर को सुनिश्चित करना है। मुद्रापूर्ति सरकार को दी जाने वाली शुद्ध साख का फलन है तथा व्यापारिक क्षेत्रो को दी जाने वाली शुद्ध साख तथा विदेशों मे दी जाने वाली साख पर

आधारित है।

इस तरह समष्टि स्तर पर साख का सम्बन्ध व्यष्टि स्तर पर साख नियोजन से होना चाहिए। व्यापारिक बैंको की यह जिम्मेदारी है कि वे अपने साख का आवटन अपने सम्बन्धित शाखाओं द्वारा करे। व्यक्तिगत बैंक अपने शाख का वितरण सबसे गरीब तबके के लोगों से लेकर विभिन्न ऋण ग्राहकों तक वितरित करे, विशेषकर कृषि और प्राथमिक क्षेत्रो मे इस तरह का साख आवश्यकता के आधार पर किया जाना चाहिए।

साख वितरण की प्रवृत्ति की समीक्षा 1968 से सारणी 7 6 मे दी गयी है। इस सारणी से स्पष्ट है कि साख वितरण मे कुल मिलाकर जो परिवर्तन हुआ है, वह नीति उद्देश्यों के सगत से गुजरी है। इस तरह से कुल साख मे कृषि साख का क्षेत्र लगभग सत्ररह प्रतिशत गया है, जो 1968 मे केवल एक प्रतिशत था। इसी तरह लघु स्तरीय उद्योगों मे कुल साख का बारह प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्रों से ले करके अर्थात् कृषि, लघु उद्योग, फुटकर व्यापारी, छोटे व्यापारी, स्वरोजगार आदि कुल साख का 1/4 हिस्सा प्राप्त करते है, जो पहले केवल सात प्रतिशत था। साख नियोजन जो बैंकों द्वारा किये गये है, वे पूर्ण सफल नही हो सके है, ऐसे अध्ययन जो साख अन्तराल से सम्बन्धित है वे स्पष्ट करते है कि लीड-बैंक स्कीम अभी भी वास्तविकता का रूप नहीं ले पाये है। अब भी साख नियोजन मे इस बात की आवश्यकता है कि साख वितरण मे समयावधिक को कम किया जा सके और विशेषकर लघु और ग्रामीण क्षेत्रों मे उधार लेने वालो के सम्बन्ध मे । जहा तक क्षेत्रीय असतुलनों का प्रश्न है वहाँ बैंक कोई महत्वपूर्ण योगदान नही कर पाये है। इस तरह कृषि उद्योग, व्यक्तिगत क्षेत्र तथा व्यापार एव अन्य के सम्बन्ध मे साख मे इनके अनुपात को दिखाया जा सकता है।

सारणी-7 6
महत्वपूर्ण क्षेत्रों मे साख का हिस्सा

	सम्पूर्ण अग्रिमों का प्रतिशत	
	जून, 1972	मार्च, 1968
I कृषि एव सम्बन्धित क्रियाए	6 8	2 2
(अ) कृषि	4 0	0 2
(ब) वृक्षारोपण	2 2	1 8
(स) सम्बन्धित क्रियाए	0 6	0 2

II	उद्योग	57 6	67 5
	(अ) बडे एव मध्यम	45 5	60 6
	(ब) लघु	12 1	6 9
	बडे उद्योग		
	(1) चीनी	1 9	5 3
	(2) खाद्य-तेल	0 6	1 4
	(3) सूती वस्त्र	7 5	10 3
	(4) जूट वस्त्र	1 5	3 1
	(5) रसायन एव रसायनिक उत्पाद	5 4	3 6
	जिसमे से उर्वरक	0 6	1 2
	(6) इस्पात एव स्टील	2 8	3 7
	(7) इजीनियरिंग	15 8	16 4
	(8) विद्युत, गैस, जल एव सफाई सेवाऐ	1 5	1 0
III	अन्य प्राथमिक क्षेत्र	1 8	-
	(अ) सडक एव जल परिवहन क्रियाए	1 2	-
	(ब) लघु व्यापार	0 2	-
	(स) व्यवसायिक एव स्व-रोजगार	0 3	-
	(द) शिक्षा	0.1	-
IV	व्यापार एव अन्य	33 8	30 3
	योग	100 0	100.0

Source- S.L.N. Simha and A Raman (Ed.), Credit Planning and Policy.

---- 000 ----

अध्याय - 8

सारांश, निष्कर्ष एवं नीतिपरक सुझाव

(SUMMARY, CONCLUSION AND POLICY RECOMMENDATIONS)

प्रस्तुत अध्याय में शोध विषय के सन्दर्भ में कुछ नीतिपरक सुझावों को प्रस्तुत किया गया है, जो भविष्य मे अल्पविकसित भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के सन्दर्भ मे मौद्रिक एव साख नीति के निर्माण मे सहायक सिद्ध होगा। इन सुझावो के पूर्व सम्पूर्ण शोध-साहित्य का साराश एव निष्कर्ष अध्यायवार दिया जायेगा । भारत मे योजनाबद्ध आर्थिक विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ होने के पूर्व से ही मौद्रिक एव साख नीति के महत्व को स्वीकार किया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था एक कृषि तथा ग्रामीण क्षेत्र से जुडी है, लेकिन देखने मे यह आया है कि राष्ट्रीय आय मे कृषि तथा इस पर आधारित व्यवसायो यथा, पशुपालन, वानिकी आदि की भागीदारिता लगातार कम होती गयी है। राष्टीय आय मे इसका हिस्सा आज मात्र 33 प्रतिशत (1988 - 89) है, जबकि 1950-51 में यह 59 प्रतिशत, 1960-61 मे 52 प्रतिशत और 1983-84 मे 37 प्रतिशत था ।

शोध-प्रबन्ध का प्रथम अध्याय प्रस्तावना से सम्बन्धित है, जिसमे अध्ययन का स्वरूप, औचित्य और अन्य प्रमुख बातो को प्रस्तुत किया गया है। सामान्यत मौद्रिक नीति का अभिप्राय अर्थव्यवस्था मे मुद्रा एव साख के नियत्रण से है । मौद्रिक एव साख नीति किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए अत्यत महत्वपूर्ण है, । साख नीति के उचित सचालन से देश के मौद्रीकृत क्षेत्रों की वृद्धि, मद्रापूर्ति के साथ-साथ राष्ट्रीय आय म वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि तथा मुद्रा एव मूल्य वृद्धि के सन्दर्भ मे मूल्य स्थायित्वता की प्राप्ति आदि महत्वपूर्ण बातें जुडी है । सैद्धान्तिक अनुभवगम्य विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि किसी भी देश के आर्थिक क्रियाओ मे और विशेषकर विकास प्रक्रिया मे मुद्रापूर्ति, मौद्रिक शक्तियो और इससे सम्बन्धित अन्य कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है । मौद्रिक एव साख नीति किसी भी देश की आर्थिक परिस्थितियो, नीतियो आदि द्वारा निर्धारित होती है। अल्पविकसित देशो के सन्दर्भ मे आर्थिक विकास मे मौद्रिक नीति का योगदान तभी अधिकतम् कहा जायेगा, जब यह पूर्ण रोजगार को प्राप्त कर ले और इसके साथ ही साथ मूल्य को एक निश्चित सीमा से आगे न बढने दे ।

शोध - प्रबन्ध के दूसरे अध्याय में मौद्रिक नीति के सिद्धान्त को स्पष्ट किया गया है। आर्थिक क्षेत्र मे मुद्रा का महत्व केन्स के योगदानों से स्पष्ट होता है। इसके पूर्व क्लासिकल अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा-पूर्ति पर बहुत महत्व नहीं दिया था। केन्स ने इस बात को स्पष्ट किया है कि एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था मूल रूप से एक बारट्र अर्थव्यवस्था से भिन्न है। केन्स ने अपने मौद्रिक विश्लेषणो और ब्याजदर सिद्धान्त द्वारा यह स्पष्ट किया है कि किस तरह ब्याजदर में परिवर्तन का प्रभाव विनियोग और अन्य आर्थिक क्रियाओ पर पडता है। केन्स के पूर्व मौद्रिक सिद्धान्त मुख्य रूप से मूल्य स्तर का सिद्धान्त था और सामान्य मूल्य स्तर के निर्धारण से सम्बन्धित था । केन्सोपरान्त मौद्रिक सिद्धान्त में डॉन पेटिन्किन, फ्रीडमैन, गर्ले-शॉ आदि अर्थशास्त्रियो का योगदान विशेष रूप से रहा है। डॉन पेटिन्किन ने अपने वास्तविक शेष प्रभाव सिद्धान्त द्वारा व्यष्टि एव समष्टि स्तर पर केम्ब्रिज मुद्रा परिमाण सिद्धान्त में निहित अनुपातिका नियम को पुन स्थापित किया और मुख्य रूप से मुद्रा बाजार और वस्तु बाजार के अत प्रक्रिया द्वारा केन्सीय ब्याज सिद्धान्त के निष्कर्षो के विपरीत इस बात को स्थापित किया कि मुद्रा तटस्थ है और इसके परिवर्तन के परिणामस्वरूप ब्याजदर एव विनियोग मे कोई परिवर्तन नहीं होता । मिल्टन फ्रीडमैन समस्त स्तर पर रोजगार तथा राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के लिये मुद्रा की पूर्ति मे वृद्धि आवश्यक मानते हैं और अपने विश्लेषण से स्थापित किया है कि केन्सीय आय गुणक की तुलना मे आय प्रचलन वेग अधिक स्थायी है। उन्होने समग्र मुद्रा माग को बढाने मे मौद्रिक नीतिको प्रमुख आधार माना है। इसके बाद गर्ले-शॉने इस बात को स्थापित किया कि व्यापक अर्थ में अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति को पूरी बैंकिग व्यवस्था के साथ-साथ गैर-बैकिग वित्तीय मध्यस्थो के क्रियाओ को भी नियत्रित करना चाहिए ।

मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुख्यत तीन अवयव होते हैं - पहला मुद्रा की मात्रा, दूसरा, साख की मात्रा और तीसरा, ब्याजदर । केन्द्रीय बैंक, बैंक दर मे परिवर्तन करके ब्याज दर और ब्याज सरचना मे परिवर्तन करता है, जिससे मुद्रा की मात्रा और साख की मात्र नियत्रित होती है । इसी तरह मुद्रा और साख की मात्रा को नियत्रित करने के लिये खुले बाजार की क्रियाए और आरक्षित कोष अनुपात मे परिवर्तन करके नियत्रण किया जाता है। केन्द्रीय बैंक मौद्रिक नीति के अन्तर्गत परिमाणात्मक और चयनात्मक (गुणात्मक) मुद्रा और साख नियत्रण निधियो का सहारा लेता है ।

सामान्यत मौद्रिक नीति और साख नीति समान है । समान अधिकारी के रूप मे केन्द्रीय बैंक दोनों नीतियों का निगमन करता है । समस्त स्तर पर दोनो के उपकरण समान है । बावजूद इस समानता के, मौद्रिक नीति कई कारणों से साख नीति से भिन्न है। मौद्रिक नीति जहा मात्र समग्र पूर्ति से सम्बन्धित है, वहीं साख नीति विभिन्न क्षेत्रों और आपूर्तिकर्ताओ के बीच उसके निर्धारण से सम्बन्धित है। इसी तरह साख के स्रोतों में भी भिन्नता है, इसमे सस्थागत तथा गैर सस्थागत स्रोत हैं । मात्रा के अलावा साख के अन्य पहलू जैसे, इसकी लागत, इसकी शर्ते एव दशाएं, अवधि, पुनीर्करण, जोखिम आदि उधार लेने-देने वालों के लिये महत्वपूर्ण है। इस तरह यह स्पष्ट है कि साख नीति का क्षेत्र अधिक व्यापक है । मौद्रिक नीति और वित्तीय नीति में आमतौर पर कोई स्पष्ट अन्तर तथा विभाजन करना सभव नहीं है। मौद्रिक नीति अपने फलनात्मक क्रिया के द्वारा कभी - कभी वित्तीय नीति का रूप ले लेती है और इसी तरह वित्तीय नीति भी कभी - कभी मौद्रिक नीति में परिवर्तित हो जाती है । उदाहरणार्थ, यदि अर्थव्यवस्था में घाटे के बजट को पूरा करने के लिये कर, सार्वजनिक ऋण तथा अन्य साधनों का सहारा लिया जाता है तो यह वित्तीय नीति के अन्तर्गत आयेगा, लेकिन यदि यही इस घाटे को पूरा करने के लिये अतिरिक्त मुद्रा को छाप कर घाटे की वित्त - व्यवस्था का सहारा लिया जाता है तो यह मौद्रिक नीति के अन्तर्गत आयेगा । इसी तरह मौद्रिक नीति, बैकिग नीति से भी बहुत समान है । इनमें सम्बध और समानता इतना अधिक है कि प्राय मौद्रिक नीति और बैंकिग नीति एक ही मान लिया जाता है और उनमें अन्तर करना कठिन हो जाता है ।

मौद्रिक नीति का प्रमुख उददेश्य है कि वह अर्थव्यवस्था के अधिकतम् आर्थिक विकास की प्राप्ति मे सहयोग दे । यद्यपि आर्थिक विकास को अधिकतम् करने से सम्बन्धित मौद्रिक नीति के उद्देश्य मे बहुत विवाद रहा है, किन्तु अब यह सर्वमान्य विचार है कि अर्थव्यवस्था की दीर्घकालीन आर्थिक विकास मे मौद्रिक नीति का प्रमुख योगदान है। उपयुक्त दशाओ में सस्ती और महगी मुद्रा नीतियो पर प्रसारणपूर्ण तथा सकुचित मौद्रिक दशाओ के द्वारा अर्थव्यवस्था मे आर्थिक सवृद्धि को बढाया जा सकता है । मौद्रिक नीति का दूसरा प्रमुख उददेश्य यह है यह अर्थव्यवस्था मे पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने मे सहायक हो । पूर्ण रोजगार को प्राप्त करने के रूप मे मौद्रिक नीति

अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन, आय तथा रोजगार के वृद्धि मे सहायक होती है। मौद्रिक नीति का एक अन्य प्रमुख उद्देश्य आन्तरिक मूल्य का स्थिरीकरण करना है। आजकल आर्थिक विकास के साथ स्थायित्वता को प्राप्त करना, आर्थिक नीति का प्रधान लक्ष्य होता जा रहा है। मूल्य - स्तर में अप्रत्याशित उतार - चढाव समाज के विभिन्न वर्गो को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है, जिससे अर्थव्यवस्था का सामान्य आर्थिक विकास खतरे में पडे जाताहै और उत्पादन, वितरण आय तथा रोजगार स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है । अत मौद्रिक नीति का उद्देश्य यह होना चाहिये कि मुद्रा तथा साख की मात्रा में परिवर्तन के द्वारा मूल्य में स्थायित्वता हो । मौद्रिक नीति विनिमय - दर के स्थायित्व के द्वारा भुगतान सन्तुलन के घाटे तथा पूजी प्रवाह की समस्या का समाधान कर सकती है। अर्थव्यवस्था के आन्तरिक व बाह्य स्थिरता के लिये यह आवश्यक है कि मौद्रिक नीति विनिमय दर को स्थायी बनायें । मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य मुद्रा को तटस्थ रखना भी है तटस्थ मौद्रिक नीति का उददेश्य अर्थव्यवस्था के वास्तविक क्षेत्रों पर मुद्रा की मात्रा से पडने वाले हानिकारक प्रभावो तथा परिवर्तनो को दूर करना है । आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय के महत्व के कारण यह आवश्यक हो गया है कि मौद्रिक नीति ऐसी हो, जिससे आय की असमानता दूर हो और वितरण की उचित व्यवस्था स्थापित हो । मौद्रिक नति के उपयुक्त प्रमुख उद्देश्यो के अलॉवा प्राकृतिक साधनों का सचयन, अधिक स्वतत्रता और सुरक्षा, अधिक प्रभावपूर्ण विदेशी नीति तथा साधनों को अधिक गतिशील बनाने सम्बधी उददेश्य मे मौद्रिक नीति का सहयोग अपेक्षित है ।

मौद्रिक नीति के क्रियान्वयन मे कई सरचनात्मक अवरोध उत्पन्न होते हैं । ऐसे अवरोधों का एक समूह स्थिर स्फीतिकारी दशा से सम्बन्धित है और दूसरा लागत वृद्धि शक्तियो के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है । किसी भी अर्थव्यवस्था मे यह कठिन कार्य होता है कि मौद्रिक नीति के सभी उददेश्यो को एक साथ प्राप्त किया जा सके । ऐसी स्थिति मे किसी भी सरकार के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि प्राथमिकता के आधार पर एक समय मे केवल कुछ उददेश्यों को प्राप्त करे और किसी दूसरे समय दूसरे उद्देश्य को । अल्प विकसित देशो मे एक बडे गैर-मौद्रिक क्षेत्र की स्थिति के कारण मौद्रिक नीति सीमित हो जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था का लगभग एक तिहाई क्षेत्र गैर-मौद्रीकृत है । यहा कृषि उत्पादन का एक बहुत बडा भाग बाजारी स्थिति का न हो कर जीवन

निर्वाह हेतु है । मौद्रिक एव साख नीति पाच अन्तरपरस्परीय कारको पर आधारित है । ये कारक निम्नलिखित है -

। साख की उपलब्धता 2 मुद्रा की मात्रा, 3 ऋण की लागत पूजी, 4 आदेयो की कीमतें तथा 5 अर्थव्यवस्था की समान्य तरलता । भारत में मौद्रिक नीति का सम्बन्ध नियत्रणात्मक पक्ष से है । मौद्रिक नीति की प्रभावकारिता मुद्रा एव साख नियत्रण के उपकरणो पर आधारित है । मौद्रिक नीति के महत्वपूर्ण उपकरण बैंक दर,खुले बाजार की क्रियाए, आरक्षित अनुपात कोष में परिवर्तन,घाटे की वित्त व्यवस्था,रिजर्व बैंक की बैंको को दिये गये साख की उपलब्धता तथा लागत में परिवर्तन,बैंको की वैधानिक तरलता अनुपात मे परिवर्तन, चयनात्मक साख नियत्रण तथा नैतिक दबाव आदि हैं । जहा तक मौद्रिक नियत्रण की सरकार उपकरण का प्रश्न हैं, वह घाटे की वित्त व्यवस्था से सम्बन्धित है । मौद्रिक एव साख नियत्रण के लिये बैंक दर का प्रयोग जब एक उपकरण के रूप किया जाता है तो इससे विनियोग एव साहसोद्यमियों के प्रत्याशाओं और लाभकारिता तथा नये विनियोग हेतु साख की माग पर प्रभाव पडता है। इस तरह यह वित्तीय सस्थाओ के साख राशिनिग नीति को प्रभावित करती है। बैंक दर का प्रभाव सरकारी बॉड दरो तथा प्रतिभूतियो के विक्रय पर भी पडता है । बैंक दर की प्रभावकारिता के सम्बध में बहुत विवाद रहा है, किन्तु भारत मे, जहा नियोजित व्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है, वहा विनियोग को प्रभावित करने मे यह शक्तिशाली उपकरण सिद्ध हुआ है । इसलिये रिजर्व बैंक ने बैंक दर नीति का बारम्बार प्रयोग किया है, जैसा कि सारणी 8 । मे स्पष्ट है ।

मौद्रिक नीति का दूसरा महत्वपूर्ण उपकरण केन्द्रीय बैंक की खुले बाजार की क्रियाए हैं। इस का अभिप्राय रिजर्व बैंक द्वारा लोगों तथा अन्य बैंको से सरकारी प्रतिभूतियों के क्रय एव विक्रय से है। रिजर्व बैंक द्वारा खुले बाजार मे प्रतिभूतियो के क्रय से मुद्रा पूर्ति तथा उच्च अर्ध मुद्रा की मात्रा बढ़ जाती है। और प्रतिभूतियों के विक्रय से यह मात्रा घट जाती है। किन्तु भारत मे रिजर्व बैंक द्वारा खुले बाजार की क्रियाए मौद्रिक नियत्रण का एक शक्तिशाली उपकरण नहीं रहा है। तीसरे उपकरण के रूप मे केन्द्रीय बैंक आरक्षितो की दरो मे परिवर्तन करके मुद्रा प्रसार एव सकुचन की

सारणी 8 1

भारत में बैंक दर में परिवर्तन

(प्रतिशत में)

माह	वर्ष	बैंक दर
प्रथम योजना के पूर्व		3 0
नवम्बर,	1951	3 5
मई,	1957	4 0
जनवरी,	1963	4 5
सितम्बर,	1964	5 0
फरवरी,	1965	6 0
मार्च,	1968	5 0
मई,	1971	6 0
जुलाई,	1973	7 0
जुलाई,	1974	9 0
जुलाई,	1981	10 0
जुलाई,	1991	11 0
अक्टूबर,	1991	12 0

Source - Varıous Issues of Economıc Survey.

स्थिति पैदा कर सकते हैं। इस तरह नकद आरक्षित अनुपात में कमी के द्वारा मुद्रापूर्ति मे वृद्धि और इसकी वृद्धि के द्वारा मुद्रापूर्ति मे कमी लायी जा सकती है। खुले बाजार की क्रिया की तुलना में आरक्षित अनुपात उपकरण कम प्रभावी है। उपर्युक्त के अतिरिक्त केन्द्रीय बैंक बैंको तथा विकास बैंको को साख की उपलब्धता तथा लागत में परिवर्तन, को मौद्रिक नीति के एक उपकरण के रूप में प्रयोग

करता है। वर्तमान समय मे मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप मे संवैधानिक तरलता अनुपात महत्वपूर्ण हो गया है। इस विधि का प्रमुख योगदान व्यापारिक क्षेत्र तथा सरकारी क्षेत्र के बीच साख के आवटन से है। इस विधि मे सरकारी प्रतिभूतियो तथा ऋणों को प्रभावित करके उच्च अर्ध मुद्रा को प्रभावित किया जाता है, जिससे मुद्रा पूर्ति भी प्रभावित होता है। भारत मे संवैधानिक तरलता अनुपात मे परिवर्तन मौद्रिक नीति का एक परिवर्तनशील उपकरण नहीं रहा है।

उपरोक्त मौद्रिक नीति के परिणामत्मक उपकरणो के साथ-साथ कुछ चयनात्मक उपकरण भी हैं। ये चयनात्मक विधिया सामान्यत प्रतिभूति उन्मुख होतीं हैं। भारत मे प्रथमत 1956 में इन विधियो का प्रयोग किया गया था । वर्तमान समय मे खाद्यान्न, तिलहन, खाद्य तेल, सूत एव कपास, चीनी, गुड एव खाडसारी, सूती वस्त्र आदि वस्तुए इन विधियों से सम्बन्धित हैं ।

केन्स के सामान्य सिद्धान्त के बाद विश्व के अधिकाश देशों द्वारा महगी मुद्रा के स्थान पर सस्ती मुद्रा नीति को अपनाया गया । सस्ती मुद्रा नीति के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था मे मुद्रा बाजार पूर्णतया सगठित और विकसित हो । इसकी एक महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि पूजी की सीमान्त दक्षता गिर रही हो, अर्थात् अर्थव्यवस्था मे विनियोग, रोजगार तथा आय का स्तर बढ रहा हो और भविष्य की प्रत्याशा और तकनीकी ज्ञान का स्तर अपरिवर्तित हो । विनियोग की माग और ब्याज लोचशील हो । एक अल्प विकसित देश मे सस्ती मुद्रा नीति की मान्यता स्वीकार करना सम्भव नहीं है, क्योंकि यहा मजदूरी जीवन निर्वाह के इतने सन्निकट है कि इसमे किसी भी तरह की कटौती लोगो को स्वीकार न होगी ।

मौद्रिक नीति का अभिप्राय ऋण की मात्रा मे वृद्धि और सरकार के नगद शेषों मे कमी है, जिसका परिणाम मुद्रा पूर्ति मे वृद्धि करने से हैं । जहा तक इन ऋणों को केन्द्रीय बैंक से लिया जाता है, अर्थव्यवस्था के चलन मे सीधे करेन्सी की मात्रा बढ़ जाती है। यह स्पष्ट है कि आर्थिक विकास और मूल्य स्थायित्वता के सन्दर्भ मे घाटे की वित्त - व्यवस्था की अहम भूमिका है ।

मौद्रिक नीति के सन्दर्भ मे रेडक्लिफ कमेटी पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है । रेड क्लिफ कमेटी को मौद्रिक नीति और उसके क्रियान्वयन के परीक्षणका एकमात्र दायित्व सौंपा गया था ।

इस समिति ने ब्रिटिश मौद्रिक नीति के सैद्धान्तिक विश्लेषण म महत्वपूर्ण परिवर्तन किया । फिर भी इस समिति की रिपोर्ट बिट्रेन के मौद्रिक विकास का सम्यक विश्लेषण नहीं प्रस्तुत कर सका । इस समिति ने यह स्वीकार किया है कि मौद्रिक उपायो के सन्दर्भ मे कोई सरल सस्तुति सम्भव नहीं हो सकी और मौद्रिक समस्याओं का कोई समाधान विधि नहीं सम्भव है । इस समिति का मौद्रिक नीति के प्रभावकारिता पर भी बहुत कम विश्वास था।

मौद्रिक नीति की कुछ सीमाए हैं तथा कुछ निर्धारित कार्य क्षेत्र है । जहा तक मौद्रिक नीति के लिये सम्भव कार्य क्षेत्र का प्रश्न है, मौद्रिक नीति का सबसे महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्र, जो यह कर सकती है, वह है मुद्रा पूर्ति के नियत्रण के द्वारा देश में अस्थायित्वता उत्पन्न करने वाले कारकों को नियन्त्रित करना । इसके अतिरिक्त यह अर्थव्यवस्था को एक स्थायी पृष्ठभूमि दे सकता है। स्फीतिकारी और घाटे के बजट की स्थिति मे अल्पकालीन ब्याज दर मे वृद्धि के द्वारा मौद्रिक नीति सहयोग कर सकती है। मौद्रिक नति के सचालन मे सबसे महत्वपूर्ण मूल्य स्तर का नियत्रण है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि मौद्रिक अधिकारियो को मौद्रिक नीति मे तीव्र उतार चढ़ाव से बचना चाहिये। कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं, जो मौद्रिक नीति की सीमा से बाहर हैं। मौद्रिक नीति की प्रथम सीमा यह है कि दीर्घ अवधि तक ब्याज दर को स्थिर नहीं रख सकती है। केन्द्रीय बैंक द्वारा लोगों से प्रतिभूतिया खरीदने पर अन्तत ब्याज दर गिर जाती है और इसी प्रकार अर्थव्यवस्था में व्ययों पर पडने वाले दबाव के कारण कुल व्यय बढ़ जाते हैं, परिणामस्वरूप ब्याज दर बढ़ जाती है। इसकी दूसरी महत्वपूर्ण सीमा यह है कि यह बेरोजगारी दर को भी बहुत समय तक स्थिर नहीं रह सकती है। मौद्रिक मानों के आधार पर वास्तविक ब्याज दर, बेरोजगारी दर, वास्तविक राष्ट्रीय आय स्तर, वास्तविक मुद्रा पूर्ति तथा मात्रा वृद्धि दर को स्थिर नहीं बनाया जा सकता ।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध का तीसरा अध्याय मुद्रा पूर्ति के सिद्धान्त से सम्बन्धित है, वर्तमान समय मे मुद्रा पूर्ति के चार स्वतत्र मान एम$_1$ एम$_2$ एम$_3$ एम$_4$ के रूप मे हैं । मुद्रापूर्ति का यह नया विश्लेषण भारतीय मौद्रिक आकडो का सशोधन दो क्षेत्रो मे करेगा । प्रथमत तरलता परिवर्तन के आधार पर यह नया उपागम मौद्रिक योगो के लिए अधिक विस्तृत अर्थ प्रस्तुत करता है। दूसरे, नया

उपागम अपने विस्तार वृद्धि के साथ मौद्रिक आकडों को वास्तविकता के और अधिक निकट लायेगा। मुद्रा पूर्ति के एक अन्य विश्लेषण बैंकिग सर्वसमिका सिद्धान्त में यह दर्शाया गया है कि बैंकिग व्यवस्था का कुल दायित्व उसके कुल आदेयों के बराबर होता है। यहा कुल दायित्व में मौद्रिक दायित्व तथा गैर मौद्रिक दायित्व सम्मिलित हैं। इसी तरह कुल आदेयों मे वित्तीय आदेय तथा गैर वित्तीय आदेय सम्मिलित हैं। किन्तु मुद्रा पूर्ति का यह विश्लेषण एक अव्यवहारिक, सीमित और सकीर्ण विश्लेषण है । इस कारण से अधिक व्यवहारिक तथा मौद्रिक नियोजन की उपयुक्तता के दृष्टिकोण से मुद्रा या साख गुणक का सिद्धान्त दिया जाता है । मुद्रा या साख गुणक मिद्धान्त के अनुसार मुद्रापूर्ति, करेन्सी तथा माग जमाओ के योग के बराबर होती है तथा मौद्रिक आधार, वास्तविक बैंक संचितों तथा करेन्सी के योग के बराबर है । इसके अलावा मुद्रापूर्ति तथा मौद्रिक आधार में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है,जबकि आरक्षित कोष अनुपात से विलोम सम्बध है। मुद्रा पूर्ति का एक और अन्य विश्लेषण उच्च अर्ध मुद्रा (एच) सिद्धान्त है । साधारण मुद्रा के विपरीत उच्च अर्घ मुद्रा (एच) वह मुद्रा है, जो भारतीय रिजर्व बैंक तथा भारत सरकार द्वारा निर्गमित तथा जो लोगों एव बैंक के पास है भारतीय रिजर्व बैंक इस मुद्रा को आरक्षित मुद्रा मानती है । मुद्रापूर्ति के 'एच' सिद्धान्त को मुद्रा गुणक का सिद्धान्त भी कहते हैं । मुद्रा पूर्ति के 'एच' सिद्धान्त की यह मान्यता है कि प्रचलित ब्याज-दर के सन्निकट लाभ अर्जित करने वाले आदेयो की पूर्ति अत्यधिक लोचदार होती है और सामान्यतया बैंक अपने अवांक्षित अतिरिक्त आरक्षितों के द्वारा इन लाभ अर्जित आदेयों की ओर उन्मुख नहीं होते। इस तरह 'एच' सिद्धान्त की यह महत्वपूर्ण मान्यता है कि बैंक अपने आरक्षित जमाओं में संस्थिति प्राप्त करते हैं । यह माना जाता है कि 'एच' का निर्धारण नीतिगत है, लेकिन वास्तविक व्यवहार में यह इतना आसान नहीं है । एक और सिद्धान्त मुद्रा पूर्ति का लेखा-जोखा विश्लेषण भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य बैंको के सग्रथित लेखा-जोखा चार्ट से प्राप्त किया जाता है । इसको इसके वित्तीय आदेयो को क्षेत्रवार विभाजित करके बनाया जाता है । इसमें व्याख्यात्मक गुण नहीं हैं, क्योंकि यह विशुद्ध लेखा-जोख विश्लेषण है । यह अनेक नीतियो और गैर-नीतियों में होने वाले परिवर्तन के कारण उनके मुद्रा पूर्ति पर पडने वाले प्रभाव की व्याख्या नहीं कर सकता है । यह मुद्रापूर्ति का लेखा - जोखा विश्लेषण 'एच' और 'एम' के अवयवो के योग को प्रस्तुत करता है और इसमे 'एच' पर ' एम ' के आश्रित होने का ध्यान नहीं दिया जाता ।

साख की पूर्ति और इसके निर्धारण के सम्बन्ध मे साख निर्माण के सामान्य प्रश्न पर मानक सिद्धान्त अत्यन्त सरल है । यहा पर एक समरूप साख बाजार की मान्यता है, जिसमे ऋण ग्राहकों के सभी साख अदाओ को साख देने की एक जैसी बात कही जाती है । साथ ही साथ यह भी मान्यता है कि बाजार के दोनों पक्षो में पूर्ण प्रतियोगिता कार्यशील है, जिससे कुल माग, कुल पूर्ति के आधार पर एक ही समरूप ब्याज दर का निर्धारण होता है । विशेष बात यहा यह है कि प्रत्येक ऋण ग्राहक जितनी भी मात्रा में ऋण लेना चाहे, वह प्रचलित ब्याज दर पर ले सकता है, अर्थात् व्यवस्था में कोई भी साख राशिनिग नहीं है। इस तरह के साख बाजार का फलन पूर्णत अवास्तविक है, क्योंकि एक तो साख बाजार पूर्णत समरूप नहीं होते हैं और दूसरे इन बाजारों में सदैव पूर्ण प्रतियोगिता नहीं रहती है,प्राय योग्य ऋण ग्राहको का चुनाव गैर मूल्य प्रक्रिया द्वारा किया जाता है और इसी तरह कुल साख की मात्रा का भी निर्धारण किया जाता है। यहा यह दिखाना आवश्यक होगा कि गैर मूल्य कारक किस तरह मूल्य कारक पर अधिक प्रभावी है । सस्थागत कारक के प्रभावित कारको को दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है - वित्तीय तथा गैर-वित्तीय। जहा तक सस्थागत साख के निर्धारणमे वित्तीय कारको का प्रश्न है, उसमे साख की अदायगी तथा शुद्ध प्रतिफल दर हैं। इन दो मुख्य कारको के साथ और बहुत से अन्य कारक भी हैं, उन्हें इसमे स्वत निर्धारण कर लिया जाता है और सीमित अर्थ में यह ब्याज दर एक राशिनिग प्रक्रिया का कार्य करता है, किन्तु इच्छुक ऋण ग्राहको में ब्याज दर के अलावा अन्य शक्तिया भी कार्य करती हैं और यही शक्तिया सस्थागत साख के निर्धारण मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । इससे सस्थागत ऋण दाताओ को छोटे ऋण देने मे हतोत्साहित होना पडता हैं । सामान्यतया एक स्थायी राजनैतिक वातावरण मे सरकारी ऋणो पर अदायगी का जोखिम बहुत कम होता है, क्योंकि लोगों से अदायगी के इसके अनेक अधिकार होते हैं, परन्तु व्यक्तिगत क्षेत्रो के सभी ऋणों पर कुछ न कुछ जोखिम रहता ही है । अत ऋण दाता का सबसे महत्वपूर्ण सम्बन्ध इस जोखिम का पता लगाना है और पर्याप्त रूप से सुरक्षित होना है। इस तरह के साख निर्धारण की प्रक्रिया पूरी तरह से न तो बाजारी शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है और न ही वे मात्र माग और पूर्ति शक्तियो से निर्धारित होती है । यह कई गैर-बाजारी शक्तियो पर भी आधारित है और हर देश मे अलग - अलग कारक होते हैं । यहा पर

साख अदायगी से सम्बन्धित जोखिम के दो स्रोतो को बता देना महत्वपूर्ण होगा । (1) व्यक्तिगत (नैतिक) जोखिम, (2) व्यापारिक जोखिम । अनुभव के आधार पर यह प्राप्त हुआ है कि भुगतान साम्र्थयता भी ऋण दाता के लिए ऋण देने के लिए उत्साहित नहीं करता, क्योंकि वास्तविक साख क्षति की दशा मे यह पर्याप्त नहीं है कि ऋण दाता ऋण और ब्याज की वसूली कर सके । परिणाम स्वरूप ऋण दाता पर्याप्त मात्रा में ऋण के बदले प्रतिभूति रखने पर जोर देता है। ऋण के बदले मे दी जाने वाली प्रतिभूतिया मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है - प्राथमिक प्रतिभूतिया और कोलेट्रल प्रतिभूतिया । बैंक सामान्यतया बैंकिग आदेयो के पूरे मूल्य के बराबर ऋण प्रदान नहीं करते, बल्कि उसके एक प्रतिशत के रूप मे ऋण दिया जाता है और प्रतिभूति के मूल्य और प्रतिशत ऋण के अन्तर को ऋण ग्राहक के ऊधार लेने की शक्ति को प्रदर्शित करता है ।

परपरागत सिद्धान्त में किसी व्यक्तिगत ऋण ग्राहक की पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार होती है और निर्धारित बाजारी ब्याज दर पर इस वक्र पर इन कारकों को ध्यान में रखते हुए कोई व्यक्तिगत ऋण ग्राहक जितना चाहे उधार नहीं ले सकता । इस तरह साख पूर्ति वक्र ऊपर की ओर ढाल लिए होती है । अत धनी ऋण ग्राहक को साख प्रदत्त की मात्रा निर्धन ऋण ग्राहक की तुलना मे अधिक होगी । इस तरह ऋण ग्राहको मे साख राशिनिग का अनुपात अनुपातिक रूपसे समान नहीं होगी । यदि सस्थागत साख का निर्धारण सस्थागत है और एक बाजारी प्रक्रिया नहीं है तो इसको गैर-वित्तीय कारक भी उसी तरह प्रभावित करेगे । यह मुख्य कारक सामाजिक और राजनैतिक हैं । मुद्रापूर्ति का विशुद्ध बैंकिग सिद्धान्त मुद्रा की पूर्ति मे होने वाले परिवर्तनो के विभिन्न स्रोतें को दिखाता है और अर्थव्यवस्था मे किसी विशिष्ट अवयव के नियत्रण द्वारा मौद्रिक स्थायित्वता प्राप्त करने मे सहयोगी है। भारत जैसी अर्थव्यवस्था में बैंकिग दशा तथा मुद्रा माग के विभिन्न अवयव मौद्रिक नियत्रण हेतु बहुत महत्वपूर्ण हैं ।

चौथे अध्याय मे पचवर्षीय योजनाओ में भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति का क्रमबद्ध अध्ययन है । भारत सरकार ने अपने पचवर्षीय योजनाओं मे एक सुदृढ मौद्रिक एवं साख

नीति के महत्व पर बल दिया है । प्रथम पचवर्षीय योजना में यद्यपि मौद्रिक नीति के निश्चित तथा स्पष्ट उद्देश्य सामने नहीं थे, फिर भी प्रारम्भ में समस्या अल्पकालिक संस्थिति को प्राप्त करने की नहीं थी, बल्कि आर्थिक विकास लाने की थी। इस योजना मे मौद्रिक नीति के महत्व को देखते हुये साख सृजन पर विशेष बल दिया गया । कृषि की अशातीत उत्पादन के कारण योजनावधि में मूल्य स्तर में निरन्तर वृद्धि की प्रवृत्ति नहीं देखी गयी, जैसा कि आगे की योजनाओ में देखी गयी । योजना प्रारम्भ होने के तुरन्त बाद बैंक दर 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 3 5 प्रतिशत कर दी गयी । खुले बाजार की क्रियाओं का भी योजना में प्रयोग किया गया । प्रथम पचवर्षीय योजनावधि मे मौद्रिक नीति की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि पूरी योजनावधि मे चयनात्मक साख नियत्रण का प्रयोग एक बार भी नहीं किया गया।इस योजनावधि मे वास्तविक राष्ट्रीय आय में 14 4 प्रतिशत की वृद्धि हुयी तथा मुद्रा पूर्ति में 10 5 प्रतिशत की वृद्धि हुयी । बैंकिग क्षेत्र से सरकार द्वारा ऋण की मात्रा में कुल वृद्धि रूपये 2974 करोड़ थी । प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष में हुये मुद्रा प्रसार को विरासत में लेकर द्वितीय पचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ । जून 1955 से मार्च 1956 के बीच खाद्यान्नों के मूल्य मे 30 प्रतिशत तथा सामान्य कीमत निर्देशाक मे 15 प्रतिशत की वृद्धि हुयी । योजनावधि में वित्तीय व्यवस्था मे घाटे की वित्त व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया था । वास्तविक राष्ट्रीय आय मे 21 7 प्रतिशत की वृद्धि हुयी तथा मुद्रा पूर्ति मे लगभग 33 प्रतिशत की वृद्धि हुयी, तदनुसार मुद्रा पूर्ति रूपये 2184 करोड से बढ़ कर रूपये 2902 करोड हो गयी । द्वितीय योजनावधि में मुद्रा की पूर्ति मे बहुत अधिक वृद्धि के कारण मूल्य स्तर मे स्फीतिक वृद्धि हुयी । मुद्रा प्रसार मागजन्य प्रकार का था, क्योंकि इस योजना मे वस्तुओ की पूर्ति की अपेक्षा व्यय की मात्रा बहुत अधिक रहीं। इन व्ययो को पूरा करने के लिये घाटे की वित्त व्यवस्था को प्रमुखता दी गयी । अर्थव्यवस्था मे साख नियत्रण के लिये रिजर्व बैंक मे दोनो ही परिमाणात्मक तथा चयनात्मक विधियों का सहारा लिया । परिमाणात्मक साख नियत्रण के अन्तर्गत पूरी योजनावधि में बैंक दर केवल एक बार मई 1957 में 3 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया । बिल बाजार के अन्तर्गत ब्याज दर में कई बार वृद्धि की गयी, अन्तिम बार अक्टूबर 1960 मे किया गया । 1956 में बैंक द्वारा नियन्त्रित प्रसार तथा विभेदात्मक समर्थन की नीति को अपनाया गया । मई 1960 तथा जनवरी 1961 में बीच

परिवर्तनशील नकद अनुपात विधि का प्रयोग भी किया गया । योजनाकाल मे पहली बार चयनात्मक साख नियत्रण का प्रयोग किया गया । इस योजनावधि में छ खाद्यान्नों से सम्बन्धित तथा एक सूती वस्त्र से सम्बन्धित इस प्रकार कुल सात आदेश जारी किये गये।इन आदेशो के अनुसार रिजर्व बैंक ने वह अधिकतम् सीमा निर्धारित की,जो इन वस्तुओं के आधार पर किसी एक ऋण लेने वाले को दी जा सकती थी । रिजर्व बैंक ने मुद्रा स्फीति को नियत्रित सीमा में रखने का भरसक प्रयास किया, किन्तु वह इसमे असफल रही ।

तीसरी पचवर्षीय योजना एक अव्यवस्थित अवस्था में प्रारम्भ हुयी, क्योंकि दूसरी योजना के अन्त में मुद्रा स्फीति की स्थिति काफी निराशाजनक थी । लगभग पूरी योजनावधि में पूरी बैंकिग व्यवस्था को सामान्यत चुस्त बनाया गया । घाटे की वित्त व्यवस्था, जिसका अनुमान 7 3 प्रतिशत था, बढ़कर 13 2 प्रतिशत हो गयी । मुद्रा प्रसारीय सरकारी वित्त व्यवस्था तथा बैंक साख के लिये बढ़ती हुयी माग के फलस्वरूप मुद्रा पूर्ति में बहुत अधिक वृद्धि हुयी । यह वृद्धि 58 प्रतिशत तक रही । 1960-61 के मूल्य पर राष्ट्रीय आय मे वृद्धि लगभग 15 प्रतिशत हुयी । इसके साथ ही मूल्य स्तर में भी वृद्धि हुयी । योजनावधि में थोक मूल्य निर्देशाक में 32 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। नियत्रित मौद्रिक नीति के बावजूद भी व्यक्तिगत क्षेत्र में निर्गत ऋण में 58 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। परिमाणात्मक साख-नियत्रण के अन्तर्गत बैंक दर मे वृद्धि कई स्तरो पर किया गया । जनवरी 1963 मे 4 प्रतिशत बढ़ाकर 4 5 प्रतिशत, सितम्बर 1964 मे 5 प्रतिशत और फरवरी 1965 मे 6 प्रतिशत बैंक दर कर दिया गया। परिवर्तनशील नकद अनुपात का प्रयोग नहीं किया गया । चयनात्मक साख नियत्रण के सन्दर्भ मे 1960 से 1963 के बीच इन नीतियों मे कुछ उदारता कर दी गयी । 1963 मे साख के प्रवाह के नियत्रण हेतु गेहू, चावल, धान, चीनी आदि के सम्बन्ध में पुन आदेश जारी किये गये । तीसरी योजनावधि मे देश में मौद्रिक विस्तार बहुत अधिक हुआ । तीसरी पचवर्षीय योजना की प्राथमिकताओ को ध्यान मे रखने पर रिजर्व बैंक की नीति की प्रभावपूर्णता इस बात में भी झलकती है कि बैंक साख की बहुत अधिक मात्रा ग्रामीण कुटीर उद्योग धन्धों तथा सहकारी क्षेत्रो को मिली है । इतना ही नहीं बैंक ने ब्याज दर के ढ़ाचे मे उर्ध्वमुखी परिवर्तन का भी प्रयास किया, जिससे बैंक द्वारा दी जाने वाली साख की लागत बढ़ जाये तथा स्फीतिक वृद्धि के

नियन्त्रण मे यह सहायक हो सके । पिछली योजना की ही तरह इस योजना मे भी मूल्य में तीव्र वृद्धि बनी रही । इसके बाद वार्षिक योजनावधि मे सबसे विचित्र स्थिति यह रही कि मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि दर में कमी के बावजूद भी मूल्य स्तर मे वृद्धि देखी गयी । थोक मूल्यों के सामान्य निर्देशाक में 24 प्रतिशत की वृद्धि हुई । असामान्य स्थिति के कारण सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत दोनों ही क्षेत्रो मे बैंक साख के प्रसार मे कमी दिखाई पडी। रिजर्व बैंक ने बैंको के तरलता अनुपात के सम्बन्ध मे उदार नीति अपनाने की प्रवृत्ति रखी। इस वार्षिक योजनावधि मे मौद्रिक नीति की सबसे प्रमुख घटना मार्च 1968 मे घटी, जब भारतीय रिजर्व बैंक ने पहली बार बैंक दर को 6 प्रतिशत से घटा कर 5 प्रतिशत कर दिया । फरवरी 1969 मे पुनर्वित प्रणाली में अनेक सुधार लाये गये । अल्पकालीन तथा कृषि क्षेत्र को प्रदत्त ऋणो के सम्बन्ध मे एक समान दर 4 5 प्रतिशत निश्चित की गयी ।

तृतीय पचवर्षीय योजना के मध्य से स्फीतिकारी दबावो प्रारम्भ हो जाने के परिणामस्वरूप चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे आर्थिक विकास को स्थायित्वता की दशा को प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया । इस योजना के मौद्रिक एव साख नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप समग्र माग एव पूर्ति में सतुलन कायम करना, नयी उभरती हुई स्थिति के सन्दर्भ मे घाटे की वित्त व्यवस्था की मात्रा को निर्धारित करना तथा 14 बडे व्यापारिक बैंको के राष्ट्रीयकरण (जुलाई 1969) के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के नियोजन के वित्तीयन के लिए अधिक ससाधन उपलब्ध कराना, प्राथमिक क्षेत्रो और विशेषकर उपेक्षित क्षेत्रों, कृषि छोटे उद्योग आदि मे साख प्रवाह को निर्धारित करना, विकास के साथ - साथ निर्यातों एव उद्योगो की आवश्यकता के लिए साख की पूर्ति करना था । बैंक दर को 5 प्रतिशत से बढ़ाकर जनवरी 1971 मे 6 प्रतिशत तथा पुन मई 1973 मे 7 प्रतिशत कर दिया गया । 1970 मे सवैधानिक तरलता अनुपात को दो बार 25 प्रतिशत से बढ़ाकर क्रमश 27 प्रतिशत तथा 28 प्रतिशत कर दिया गया और पुन अगस्त 1972 मे इसे 30 प्रतिशत तथा 1973 मे 32 प्रतिशत कर दिया गया । इसी के साथ-साथ आवश्यक शुद्ध तरलता अनुपात को भी 1973 मे 40 प्रतिशत कर दिया गया, 1973-74 के दो मन्दी काल में नकद आरक्षित अनुपात को भी क्रमश बढाकर 3 प्रतिशत एव 7 प्रतिशत कर दिया गया । भारतीय रिजर्व बैंक से प्राप्त पुनर्वित्तीयन की सुविधा को क्रमश

अधिक कड़ा कर दिया गया । बैंको के अग्रिमो पर ब्याज दरों को बढ़ा दिया गया । 1973-74 के व्यस्त काल में परिमाणात्मक साख विधियों को अपनाया गया । 1972-73 तथा 1973-74 के व्यस्त काल में बैंक साख में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और बाद के वर्षो में साख विस्तार अपने शिखर स्तर तक पहुच गया, यह साख विस्तार परिमाणात्मक साख विस्तार की नियत्रणात्मक सीमा के बाद भी हुआ । चतुर्थ पचवर्षीय योजना के समयावधि मे मुद्रापूर्ति बढ़कर 88 प्रतिशत हो गया, जो इसी समयावधि में वास्तविक उत्पादन वृद्धि 18 9 से बहुत अधिक ऊचीं थी । पूरी समयावधि में कुल प्रदत्त साख 22 3 प्रतिशत से बढ़कर 36 7 प्रतिशत हो गयी । चतुर्थ पचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्षो में मौद्रिक स्थिति में एक महत्वपूर्ण बात यह रही है कि बैंक साख में वृद्धि वास्तविक उत्पादन वृद्धि से काफी अधिक हो गयी । इस समयावधि मे एक महत्वपूर्ण कारक जो साख नियत्रण उपकरणोकीप्रभावकारिता को सीमित किया, वह उधार देय ससाधनों से सम्बन्धित था । चतुर्थ पचवर्षीय योजना में देश में गैर-लेखा जोखा वित्त के साथ स्फीतिकारी दशाए विकसित हुई और इनका पुन प्रभाव मौद्रिक एव साख नीतियों के प्रभावकारिता पर पडा ।

पाचवी पचवर्षीय योजना में गैर स्फीतिकारी विकास को प्राप्त करने पर विशेष जोर दिया गया, क्योंकि इस योजना के पूर्व स्फीतिकारी प्रवृत्ति बहुत अधिक सुदृढ़ हो चुकी थी । इसमें यह प्रस्ताव किया गया कि योजनाकाल के प्रथम दो वर्षो मे कोई भी घाटे की वित्त व्यवस्था नहीं की जायेगी। इस योजना मे इस बात पर भी बल दिया गया कि वित्तीय एव मौद्रिक नीतियों में उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समन्वित सगति होनी चाहिए । इस योजना मे मुद्रा प्रसार और स्फीतिकारी प्रवृत्तियों पर नियत्रण पाने हेतु बैंक दर को महत्वपूर्ण ढग से 7 प्रतिशत से बढ़ाकर के 9 प्रतिशत कर दिया गया। इसी के साथ साथ व्यापरिक बैंको के अग्रिमो सम्बन्धी न्यूनतम् ऋण दरों को भी 11 प्रतिशत से बढ़ाकर 12 5 प्रतिशत कर दिया गया और अधिकतम् ऋण दरो को 9 प्रतिशत से 10 5 प्रतिशत कर दिया गया । इस योजना मे विस्तृत निर्धारित प्राथमिकताओ के आधार पर नियोजित साख प्रयोग पर बल दिया गया । इस समयावधि मे टण्डन समिति की रिपोर्ट और प्रस्तावो के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक ने 1974 मे व्यापारिक बैंको के साख वितरण सम्बधी महत्वपूर्ण निर्देश निर्गत किये । थोक कीमतों का सूचकाक 1974-75 मे गिरकर 7 1 प्रतिशत हो गया । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा उदघोषित

उपायों में सामान्य तथा चयनात्मक साख उपाय अधिक लचीले ढग से प्रयोग किये गये। शुद्ध तरलता अनुपात की व्यवस्था, जो पिछले दस वर्षो से चली आ रही थी, उसे समाप्त कर दिया गया । वैधानिक नकद अवशेष को 1976 में 4 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया और पुन उसी वर्ष 6 प्रतिशत कर दिया गया। व्यापारिक क्षेत्रो मे बैंक साख मे महत्वपूर्ण वृद्धि मुद्रापूर्ति मे वृद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक रही और मुद्रापूर्ति 1976-77 मे बढ़कर 18 8 प्रतिशत हो गयी । मुद्रापूर्ति विस्तार मे एक नया कारक जो वर्ष 1975-76 से विराजमान रहा, वह विदेशी विनिमय आदेयों मे तीव्र वृद्धि का होना था । इसमे 1975-76 मे वृद्धि रूपये 711 करोड हुआ । इस समयावधि में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जो साख नीति अपनाई गयी, वह प्रथम दो वर्षो मे नियत्रणात्मक प्रवृत्ति के साथ सफल रही । इस समयावधि मे साख नीति मे महत्वपूर्ण विकास क्षेत्रीय साख बटवारे से सम्बन्धित था, जिससे अधिक आर्थिक और तार्किक रूप से बैंक ससाधनों का प्रयोग हो सके। बैंकिग व्यवस्था और अत्यधिक तरलता को नियत्रित करने तथा बैंक साख विस्तार को रोकने के सम्बन्ध में इस समयावधि मे अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये । वर्ष 1977 में भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंको को यह सलाह दिया कि कृषि और लघु उद्योगों के क्षेत्र मे साख को आवटित करने मे प्राथमिकता दें । फिर भी 1977-78 मे मुद्रा पूर्ति मे जो 15 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वह राष्टीय आय में 5 प्रतिशत की तुलना मे बहुत अधिक थी ।

छठीं पच वर्षीय योजना के पहले वर्ष मे यद्यपि कीमत स्तर मे अत्यधिक वृद्धि 17 प्रतिशत हुयी थी, परन्तु दृढ़ कीमत नियत्रण और मौद्रिक उपायो को सफलता पूर्वक प्रयोग करके सरकार कीमतो पर नियत्रण पाने मे सफल रही थी, लेकिन सरकार को इसके लिए भारी घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेना पडा । छठीं योजना के दौरान मौद्रिक नीति सामान्यत अत्यधिक तरलता को रोकने की थी, जिससे मुद्रास्फीति पर नियत्रण किया जा सके । इस योजना मे उत्पादक एव प्राथमिकता वाले क्षेत्रो की मूल आवश्यकताओ पर भी ध्यान दिया गया । सितम्बर 1981 मे नकद आरक्षित अनुपात 6 प्रतिशत से बढाकर 8 प्रतिशत कर दिया गया, जिससे मुद्रा एव उधार को नियत्रित किया जा सके । इस योजना मे चावल, गेहू, चीनी, गुड आदि वस्तुओ के मूल्य नियत्रण के लिए विशेष प्रयास किया गया। 1981 मे नकदी आरक्षित अनुपात को ऊचा कर दिया गया। विवेकपूर्ण

वित्तीयन तथा पुर्नगणना दर में उर्ध्वोमुखी सशोधन किया गया । पुनर्वित्तीयन पर ब्याज की अधिकतम दर को 11 प्रतिशत से बढाकर 14 प्रतिशत कर दिया गया । 1981 में ही बैंक दर 9 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया । साथ ही खाद्य तथा निर्यात सम्बधी पुनर्वित्तीयन भी 9 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया ।

कुछ संवेदनशील वस्तुओं को चयनात्मक साख नियत्रण द्वारा नियत्रित किया गया। गेहूं, धान, चावल तथा अन्य खाद्यान्नों की न्यूनतम मार्जिन 10 प्रतिशत बिन्दु तक बढ़ा दिया गया। बीस सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले कमजोर वर्ग के लोगों को ऋण एव अग्रिम प्रदान करने में प्राथमिकता दी गयी तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को सभी विकास खण्डों में प्रारम्भ कर दिया गया ।जनवरी 1982 में निर्यात को समर्थन देने के लिये निर्यात - आयात बैंक की स्थापना किया गया । जुलाई 1982 मे कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र मे साख उपलब्ध कराने के उद्देश्य से एक नये बैंक, जिसका नाम नाबार्ड रखा गया प्रारम्भ किया गया । 1984 में अर्थव्यवस्था में पूजीगत विनियोगो को और तेज करने की दृष्टिकोण से भारतीय औद्योगिक विकास बैंक सहित अन्य वित्तीय सस्थाओं द्वारा ऋण नीति को और उदार कर दिया गया । फलस्वरूप 12 5 प्रतिशत की रियायती दर पर ऋण दिया गया । छठीं पचवर्षीय योजना मे अत्यधिक मौद्रिक विस्तार हुआ । एक ओर जहा बृहत मुद्रा (एम$_3$) में औसतन 16 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हुयी, वहीं प्रारक्षित मुद्रा में 16 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर्ज की गयी ।

सातवीं पचवर्षीय योजना मे भी महत्वपूर्ण मौद्रिक विस्तार हुआ । बृहत् मुद्रा पूर्ति (एम$_3$) में औसतमन 17 6 प्रतिशत प्रति वर्ष वृद्धि हुयी । सकीर्ण मुद्रा पूर्ति (एम$_1$) में औसतन 16 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हुयी । चयनात्मक साख नियत्रण के अन्तर्गत अप्रैल, 1986 मे साख अधिकरण योजना के लिये उधार सीमा बढ़ाकर रूपये 6 करोड कर दिया गया । सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक का ऋण जहा 1985-86 मे मात्र रूपये 3,186 करोड था, वहीं योजना के अतिम वर्ष 1989-90 में बढ़कर रूपये 14,056 करोड हो गया था । भारतीय रिजर्व बैंक ने 1987 में चक्रवर्ती कमेटी की सस्तुतियो को लागू किया, जो नियोजित ढग से समग्र मौद्रिक लक्ष्यो की आवश्यकता और विकास

द्वारा उपर्युक्त मौद्रिक समृद्धि प्राप्त करने से सम्बन्धित थी । सातवीं योजना में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र, कमजोर वर्ग के निर्यातको, स्व रोजगार योजना के उद्यमियों तथा ग्रामीण कलाकारों को विशेष रूप से साख उपलब्ध कराया गया । पूरी योजनावधि में मौद्रिक एव साख नीति का उद्देश्य तरलता में वृद्धि को नियत्रित करने से रहा है। क्षेत्रीय साख व्यवस्था के सम्बन्ध मे प्रधान उपकरण चयनात्मक साख नियत्रण था । इसके अतिरिक्त एक अन्य उपकरण साख अधिकरण परियोजना को भी महत्वपूर्ण माना गया । 1988-89 में लेखा वर्ष को कैलेन्डर वर्ष से बदल कर वित्तीय वर्ष कर दिया, जिससे बैंको की जमा राशियों और ऋणों में वर्ष के अन्त मे असामान्य वृद्धि आयी । सातवीं योजना की पूरी योजनावधि में साधन पक्ष की ओर मुद्रा पूर्ति वृद्धि में लगातार बढ़ोत्तरी के कारण काफी अधिक सीमा तक लगातार राजकोषीय असन्तुलन बना रहा । सरकार को भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा दिया गया निवल ऋण प्रारक्षित मुद्रा में वृद्धि का प्रमुख स्रोत रहा । सातवीं योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 के दौरान मियादी उधार देने वाली सस्थाओ द्वारा सहायता की बहुत सी नई योजनाए प्रारम्भ गई । एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र, अपतटीय निधि के क्षेत्र में भी भारतीय बैंको ने सातवीं योजना के दौरान प्रवेश किया है। इन निधियों के लिये अनिवासी भारतीय और विदेशी लोगो के सहयोग से इनका कारोबार लन्दन और न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेजो मे होता है ।

सातवीं योजना के अन्त से अत्यधिक तरलता के विद्यमान रहने से मुद्रा स्फीति की भयावह स्थिति उत्पन्न हो गयी थी । अत आगे के वर्षो मे भारतीय रिजर्व बैंक के नीतिगत कार्यो में सकल माग और विशेषकर आयात माग को सीमित रखना सर्वोपरि उद्देश्य बन गया । इसके बाद सरकार ने जुलाई, 1991 में नई उदार आर्थिक नीति की घोषणा की और वर्तमान समय तक उदारीकृत आर्थिक नीति के परिप्रेक्ष्य मे नीति निर्माण हो रहा है । 1990-91 में सरकार ने विस्तृत बजट घाटा प्रस्तुत किया, जिससे सरकार को निवल बैंक ऋण और भारतीय रिजर्व बैंक ऋण दोनों मे ही तीव्र वृद्धि हुयी। इस वर्ष अच्छी फसल के कारण खाद्य ऋण मे तज वृद्धि देखने मे आयी, जबकि खाद्य भिन्न ऋण में अपेक्षाकृत काफी कम वृद्धि हुयी । सामान्य ऋण नियत्रण अनुसूचित वाणिज्य बैंको के सन्दर्भ में अपरिवर्तित रहा । सितम्बर, 1990 से सांविधिक नकदी अनुपात को 38 प्रतिशत से बढाकर 38 5

प्रतिशत कर दिया गया । जुलाई, 1990 स तिलहनो और खाद्य तेलों के अग्रिमो के सन्दर्भ में चयनित ऋण नियत्रण को कठोर कर दिया गया है । गहू को इस नियत्रण से मुक्त रखा गया । जनवरी, 1991 से निर्यात ऋण को उदारीकृत कर दिया गया । भारतीय रिजर्व बैंक ने सितम्बर, 1990 से अनुसूचित वाणिज्य बैंको के लिये उधार दरो को नय सिरे से व्यवस्थित किया । हुडी प्रथा को प्रोत्साहित करने के लिये जनवरी, 1991 से सम्बद्ध नकद ऋण ब्याज दर से अधिक 2 प्रतिशत बिन्दु पर ब्याज दर निर्धारित किया गया । सितम्बर, 1990 से रूपये 7,500 तक के अग्रिमो पर वाणिज्यक ब्याज दर 10 प्रतिशत रखी गयी । अक्टूबर, 1990 से अनुसूचित वाणिज्य बैंको की कुछ श्रेणियो पर ब्याज दर निर्धारित करने की स्वतत्रता दे दी गयी । वित्तीय वर्ष 1990-91 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा कीमत संवदेनशील वस्तुओ के लिये बैंक ऋण के सबध मे चयनात्मक ऋण नियत्रण उपाय को प्रभावी ढग से प्रयोग किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों मे ऋण के दबाव को कम करने के उद्देश्य से मई, 1990 में कृषि और ग्रामीण ऋण राहत योजना, 1990 लागू किया गया, जो 30 जून 1991 को समाप्त हुयी । योजना के अन्तर्गत रूपये 7,962 करोड का ऋण राहत प्रदान किया गया । अप्रैल, 1990 में एक नये बैंक भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना किया गया ।

अर्थव्यवस्था के मौद्रिक एव साख क्षेत्र मे उठाये गये कदमो के परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण उपलब्धि रही, वार्षिक मुद्रा स्फीति दर, जो अगस्त 1991 मे 17 प्रतिशत था, वह घटकर मई 1993 मे 6 प्रतिशत हो गयी । सामान्य आर्थिक सवृद्धि दर, जो 1991-92 मे केवल 1 2 प्रतिशत थी, वह 1992-93 मे बढ़कर 4 प्रतिशत हो गयी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा अन्य हानि पर चल रहे बैंको के साख वितरण तथा अग्रिमो पर अनेक नियत्रणात्मक उपाय किये गये । मौद्रिक क्षेत्र के उपायो के सम्बन्ध मे विनिमय दर नीतियों मे परिवर्तन किया गया । केन्द्रीय सरकार का वित्तीय घाटा वर्ष 1990-91 मे सकल घरेलू उत्पाद को 8 4 प्रतिशत से कम करके 1991-92 में 6 5 प्रतिशत तथा पुन 1992-93 मे 5 प्रतिशत कर दिया गया । इन आर्थिक सुधारो, उपलब्धियों तथा कार्यक्रमो के आलोचनात्मक मूल्याकन के सम्बध मे यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मुद्रा स्फीति की दर मई 1993 मे घट कर 6 प्रतिशत हो गयी, किन्तु वास्तविक स्थिति मे आवश्यक वस्तुओ के मूल्य में कोई महत्वपूर्ण कमी नहीं आयी है ।

भारतीय रिजर्व बैंक ने वित्तीय वर्ष 1993-94 की अन्तिम छमाही हेतु 11 अक्टूबर 1993 को नयी नीति की घोषणा की । घोषणा के अनुसार वैधानिक तरलता अनुपात 16 अक्टूबर से 37 25 के स्थान पर 34 75 प्रतिशत होगी । यह घटी हुई दर 17 सितम्बर तक की देनदारी के स्तर पर लागू होगी । भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार नयी नीति का उद्देश्य उत्पादन वृद्धि के लिए पर्याप्त बैंक समर्थन सुनिश्चित करना है। लदान पूर्व निर्यात कर्ज के लिए विदेशी मुद्रा (अमेरिकी डालर) मे ऋण उपलब्ध कराया जायेगा । कम्पनियो को तीन माह से एक साल में पूर्ण भुगतान के ऋण पत्र जारी करने की अनुमति दी गयी है। प्रवासी भारतीयो के रूपया मुद्रा खाता पर ब्याज दर मे 1 प्रतिशत की कमी कर दी गयी । नाबार्ड की ऋण सीमा मे 400 रूपये की बढ़ोत्तरी किया गया बैंको द्वारा ऋण सीमा रूपये 5 करोड से बढाकर रूपये 50 करोड करने को कहा गया है । गेहू और कपास के लिए ऋण लेने वालो पर ऋण नियत्रणों को समाप्त कर दिया गया । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा पुनर्वितीयन में कमी करके 90 प्रतिशत कर दिया गया ।

पाचवे अध्याय मे भारतीय रिजर्व बैंक की कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नीति को स्पष्ट किया गया है । 1971 मे पजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश, जहा हरित क्रांति का प्रभाव था, को छोडकर शेष भारत मे लगभग 70 प्रतिशत किसान ऋण ग्रस्त थे । एक सर्वे के अनुसार जून, 1971 मे कुल ग्रामीण ऋण रूपये 3,848 करोड था । यू एन आई की 1975 का सर्वे यह प्रदर्शित करता है कि लगभग 65 से 70 प्रतिशत छोटे किसान, ग्रामीण हरिजन और आदिवासी ऋणग्रस्त हैं और ग्रामीण साहूकारो, महाजनो द्वारा स्वतन्त्र रूप से उनका शोषण किया जा रहा है। किसानो और ग्रामीण के इतनी बडी मात्रा मे ऋणग्रस्त होने का प्रमुख कारण है, कृषि उपज का अत्यन्त निम्न स्तर । फलस्वरूप किसानो का आय स्तर नीचा है, जिससे वे अपनी उपभोग एव उत्पादन सम्बन्धी आवश्यकताओ को ही पूरा नहीं कर पाते और यह अनुत्पादक ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता रहता है। किसानो और ग्रामीण क्षेत्रो मे ऋण ग्रस्तता के मुख्य कारण हैं - पैतृक ऋण, कृषि जोतो का उपविभाजन एव अपखडन, कृषको की दयनीय आर्थिक स्थिति, खर्चीले सामाजिक रीति रिवाज, कृषि पर जसख्या का अतिभार, कृषको की अज्ञानता एव अशिक्षा आदि ।

मोटे तौर पर कृषि साख के तीन पक्ष हैं- दीर्घकालीन, मध्य कालीन तथा अल्प कालीन । सामान्यतया कृषको को साख की आवश्यकता निम्न कारणो से होती है । पहला, कृषको को दीर्घकालीन विनियोग के लिए साख दूसरा, मध्य कालीन उपकरण साख की । तीसरा, बीजो, खादों, उर्वरकों तथा उपकरणों आदि के रख रखाव एव भूमि के चालू खर्चो पर कार्यशील पूजी की ।

भारतीय रिजर्व बैंक सीधे कृषि क्रियाओ का वित्तीयन नहीं करता, किन्तु यह अपने कृषि विभाग एव नाबार्ड द्वारा विभिन्न वित्तीय सस्थाओ का पुनर्वित्तीयन करता है। इस उद्देश्य के लिए भारतीय रिजर्व बैंक मे कृषि साख विभाग की अलग से स्थापना की गयी है, जिसका प्रमुख उद्देश्य कृषि साख की आवश्यकताओं को पूरा करने के सम्बन्ध मे विशेषज्ञों का अध्ययन दल तैयार करना है। जहा तक अल्पकालीन साख का सम्बन्ध है, भारतीय रिजर्व बैंक राज्य सहकारी बैंको को मौसमी कृषि साख के वित्तीयन हेतु प्रदान करता है और साथ ही साथ फसलो के विपणन, क्रय तथा उर्वरको के वितरण आदि हेतु वित्तीयन करता है। मध्यकालीन साख का वितरण राष्ट्रीय कृषि साख फड द्वारा कृषि सुधार हेतु प्रदान किया जाता है। इस तरह के ऋणो को 15 माह से 5 वर्ष के समयावधि के लिए प्रदान किये जाते हैं । भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जहा तक दीर्घकालीन साख का प्रश्न है, वह राष्ट्रीय कृषि फड (दीर्ष कालीन क्रियाओ हेतु) के माध्यम से दी जाती है। इस वित्त का प्रयोग राज्य सरकारो को अग्रिमो को देने से है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सहकारी साख समितियो के माध्यम से वितरण करते हैं । सामान्यत दीर्घकालीन ऋण 5 वर्ष से 20 वर्ष अवधि के लिये दिये जाते हैं। 1951-52 मे साख के मुख्य रूप से दो स्रोत प्रधान थे, पहला, महाजन और दूसरा, ऋण ग्राहक के सम्बन्धी, दोनो मिलाकर के लगभग 84 प्रतिशत कुल साख को प्रदत्त करते थे । सरकार व्यापारिक बैंक तथा सहकारी बैंक केवल 7 6 प्रतिशत साख प्रदान करते थे । किन्तु 1970 और उसके बाद संस्थागत साख एजेन्सियो का योगदान एव प्रवृत्ति को बढते हुए ग्रामीण साख के रूप में देखा जा सकता हैं। भारत मे कृषि साख व्यवस्था मे सुधार के सम्बन्ध मे अनेक सुझाव दिये जा सकते हैं । जिनमे से कुछ निम्नलिखित हैं-

1 कृषि साख काफी समय के लिए स्वीकृत किया जाना चाहिए, ताकि जिस उद्देश्य के

लिए लिया गया हो, वह पूरा सके ।

2 ग्रामीण और कृषि क्षेत्र मे दी जाने वाली साख पूर्णत सुरक्षित होनी चाहिए, जिससे साख सुविधाओ का दुर्पयोग न होने पाये ।

3 कृषि साख को उपयुक्त बैंक शाखाओ के प्रबन्धको की जिम्मेदारी पर होनी चाहिए, जो बैंकिग एव कृषि अनुभवो तथा प्रशिक्षणो को प्राप्त कर चुके हैं ।

4 कृषि साख को राज्य की नीतियो के साथ जुडा होना चाहिए ।

5 कृषि साख व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि ऋण ग्राहक इस जिम्मेदारी को ले सके कि वह ऋण अदायगी कर सकेगा ।

6 जिन कृषि उद्देश्यों के लिए ऋण दिया जाता है, वह पर्याप्त होना चाहिए, अन्यथा कृषकों को अन्य स्रोतों से अपने स्तर पर ऋण प्राप्त करने की आवश्यकता होगी ।

7 ऋण इस प्रकार होना चाहिए कि ऋण ग्राहक को यह सहयोग करे और उसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि करे, न कि उसको कठिनाइयो मे डाले

इसी सन्दर्भ में चक्रवर्ती समिति ने ब्याज दर की कमियो को दिखाया है। प्रथमत यह प्रभावी साख को सवृद्धि करने मे असफल रहा । दूसरे, यह पूरी बैंकिग व्यवस्था के लिए कम लाभकारिता सिद्ध हुई । इस तरह से जहा तक कृषि ऋण का प्रश्न है, इसमे दो वर्ग होने चाहिए । पहला, सकीर्ण वर्ग, जो अलग से लघु एव सीमान्त कृषको को रियायती दर पर होना चाहिए और दूसरा, अन्य ऋण ग्राहक, जो ब्याज दर के नियत्रण से स्वतत्र हो और जिन पर ऊँची ब्याज दर होनी चाहिए । हाल के वर्षो मे कृषि साख के क्षेत्र मे यह भी देखने मे आया कि साख सस्थाओ पर राजनैतिक दबाव बढ रहे हैं । यह भी देखा गया है कि राज्य सरकारो का सहकारी साख समितियो क भुगतान मे कोई रूचि नहीं है और राजनैतिक आधार पर सहकारी साख समितियो के बकाये को समाप्त करने के लिए वादे किये जाते हैं, इससे पूरे देश मे ऋण न अदा करने का

वातावरण उत्पन्न होता है ।

जहा तक मौद्रिक एव साख नीतियो का भारतीय कृषि स सम्बन्ध है, यहा तीन प्रमुख बाते उल्लेखनीय हैं। प्रथम एक गैर कुशल वित्तीय व्यवस्था, सस्ती साख व्यवस्था का करन मे असमर्थ हैं । दूसरे, कृषि साख के लागत के सम्बन्ध की अनिश्चितता तथा हानि का सम्भावना विशेषकर भारतीय परिवेश मे महत्वपूर्ण है, सामान्यत भारतीय कृषक आर्थिक रूप स दिवालिया की स्थिति मे रहता है और उसकी साख बहुत कम होती है। तीसरे, भारतीय कृषि साख सन्दर्भ म लागत का अश एकाधिकारिक स्थिति के रूप मे ग्रामीण महाजन का होता है इस स्थिति स निपटन क लिये केन्द्र तथा राज्य सरकारो के अधीन, जो अनेक कृषि विकास सम्बन्धी परियोजनाए है , उनका शीघ्र और प्रभावी क्रियान्वयन किया जाना चाहिए । कृषि सुधारो को प्रोत्साहित करन म और [illegible] के विनियोगो के सम्बन्ध मे देश की स्पष्ट साख नीति होनी चाहिए ।

छठें अध्याय में नाबार्ड के क्रिया कलापो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। सस्थागत वित्त एव साख के सन्दर्भ मे राष्ट्रीय स्तर पर कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु नाबार्ड की स्थापना अपना विशेष महत्व रखती है । मोटे तौर पर नाबार्ड पुनर्वित्तीयन तथा ऋण अग्रिमा द्वारा मुख्य रूप से राज्य सहकारी बैंको, भूमि विकास बैंको क्षेत्रीय ग्रामीण बैंका तथा अन्य स्वीकृत वित्तीय सस्थाओ के माध्यम से उत्पादन, विपणन एव विनियोग सम्बन्धी क्रियाओ हेतु कृषि, ग्रामीण विकास, लघु स्तरीय उद्योगो विकन्द्रीत एव पिछडे क्षेत्रो मे उद्योगो, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगो एव दस्तकारी और अन्य ग्रामीण शिल्पकारी तथा अन्य सम्बन्धित ग्रामीण आर्थिक क्रियाओ हेतु वित्त प्रदान करता है। उद्देश्यनुसार नाबार्ड के कुल वित्तीयन का सहकारी वित्तीय [illegible] लघु सिचाई योजनाओ में अधिक गया है और अवशेष कृषि मशीनीकरण, भण्डारण एव [illegible] भूमि विकास, वृक्षारोपण, बागवानी, मत्स्य पालन, डेरी विकास तथा अन्य कार्यो मे हुआ है । नाबार्ड द्वारा भारत का निर्यात आयात बैंक भी पुनर्वित्तीयन प्राप्त करता है, जो निर्यातान्मुखी [illegible] की वित्तीय आवश्यकता को पूरा करता है । मोटे तौर पर नाबार्ड के सारे कार्यो को [illegible] मे विभाजित किया जा सकता है -

1. ग्रामीण क्षेत्रो में कृषि एव साख सस्थाओं को पुनर्वित्तीयन करना ।
2. सस्थागत विकास को सवर्धित करना और नवीन सस्थाओं को विकसित करना ।
3. ग्राहक बैंको का निरीक्षण, निर्देशन एव मूल्याकन करना तथा सुझाव देना ।

यदि देश के ग्रामीण एव कृषि क्षेत्र के विकास हेतु नाबार्ड को नेतृत्व का योगदान करना है तो कृषि परियोजनाओं हेतु पुनर्वित्तीयन के अलावा अपनी क्रिया - कलापों को इसे विस्तृत करना होगा । नाबार्ड के अनेक महत्वपूर्ण कार्यो से स्पष्ट है कि इसका प्रधान महत्व और योगदान अल्पकालीन, मध्यकालीन और दीर्घकालीन ऋणों एव अग्रिमों हेतु वित्तीय सस्थाओं का पुनर्वित्तीयन करना है । यह स्पष्ट है कि लघु सिंचाई परियोजनओं को प्रारम्भ से ही सर्वोच्च प्रथमिकता प्रदान दी गयी है और इस तरह जल प्रबन्ध की सुचारू व्यवस्था को प्राथमिकता दी गयी है। कई राज्यों मे अपर्याप्त शक्ति और ऊर्जा के सम्बन्ध में नाबार्ड ने राज्य विद्युत परिषदों को पुनर्वित्तीयन सहयोग दिया है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत वितरण के कार्यो के सर्वधन हेतु । सिचाई परियोजनाओ के अतिरिक्त समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत नाबार्ड का पुनर्वित्तीयन द्वितीय स्थान का रहा है। इसी तरह क्षेत्रानुसार औसत रूप से नाबार्ड के पुनर्वित्तीयन का 28 प्रतिशत उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के राज्यों, 15 प्रतिशत पश्चिमी और पूर्वी राज्यों, 19 प्रतिशत उत्तरी राज्यों, 21 प्रतिशत केन्द्रीय राज्यो तथा 28 प्रतिशत दक्षिण राज्यों को हुआ है । नाबार्ड के पुनर्वित्तयन व्यवस्था के प्राविधान के अन्तर्गत यह अधिकृत सस्थाओं के पुनर्वित्तीयन के अलावा सीधे वित्त तथा ऋण प्रदान कर सकती है, विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में, जहा सस्थागत व्यवस्था कमजोर है। यह बात स्पष्ट हुई है कि बहुत से ऐसे कारक जैसे, ऋण के लक्ष्य, वर्ग, खराब ऋण वसूली, प्रशासित ऋण दरों आदि से ग्रामीण साख संस्थाओं की क्षमता मे कमी हुयी है। इस सम्बन्ध में नाबार्ड के सस्थागत कार्यो के विकास के सम्बन्ध में स्पष्ट मात्रात्मक उद्देश्य और लक्ष्य निर्धारित होने चाहिए तथा समस्त कार्यो और कार्यक्रमो के समन्वय प्रक्रिया को संस्थागत सरचना में पूरा किया जाना चाहिए, साथ-साथ नाबार्ड तथा अन्य सगठनो के सम्बन्ध को मजबूत बनाना चाहिए । नाबार्ड को संस्थागत विकास को अपने सम्बन्धित बैंको मे प्रशिक्षण क्रियाओं का एक अभिन्न अग बनाना चाहिए । यह महत्वपूर्ण होगा कि

नाबार्ड अपने निरीक्षण के उद्देश्य को पुन स्पष्ट करे, जिससे नाबार्ड के अनेक कार्यो को पूरा किया जा सके और बैंको के निष्पादन मे सुधार किया जा सके । निरीक्षण रिपोर्ट के क्षेत्र और विषय वस्तु सस्तुति हेतु बैंको को सही दिशा - निर्देश हेतु दी जानी चाहिए । नाबार्ड के आन्तरिक सगठनात्मक और विभिन्न क्षेत्रो के कार्यो का विभाजन स्पष्ट होना चाहिए । इसी तरह जहा तक नाबार्ड के सलाहकार परिषद् का प्रशन है, इसमे उच्च स्तरीय विशिष्ट सलाह और ज्ञान परिषद का गठन होना चाहिए । इसी तरह नाबार्ड के नियत्रणात्मक योगदान के स्थान पर विकास और सेवा प्रवृत्ति विकसित किया जाना चाहिए । नाबार्ड में एक अधिक खुला तथा भागीदारी आधार पर व्यवस्था की आवश्यकता है, जिससे इन परिवर्तनो के साथ नाबार्ड का स्वरूप निखर सके और जिससे नाबार्ड अपने अस्तित्व को एक सह-सस्था के रूप मे कृषि एव ग्रामीण विकास हेतु स्थापित कर सके और भारतीय रिजर्व बैंक की साख नीति को सफल बनाने में सक्रिय योगदान कर सके ।

सातवे अध्याय मे कृषि क्षेत्र मे मौद्रिक एव साख नियोजन को दिया गया है। भारतीय कृषि क्षेत्र मे साख वितरण एव कृषि कार्यो के लिए अग्रिमों तथा ऋणो के अध्ययन से यह प्राप्त हुआ है कि उनका उत्पादन एव उत्पादिता मे प्रयोग न होकर दुर्पयोग हुआ है। इससे एक और जहा अनुत्पादक व्यय मे वृद्धि हुई है, वहीं देश मे मद्रा स्फीती की प्रवृत्ति पर अधिक दबाव पडा है। मोटे तौर पर भारतीय मौद्रिक एव साख नीति सस्ती मुद्रा नीति के ही स्वरूप में बनी रही है । देश मे अविकसित मुद्रा बाजार तथा पूजी बाजार के रहते हुए तथा सुसगठित बाजारो के अभाव में सस्ती मुद्रा नीति अधिकाशत हानिकारक एव स्फीतिकारी रही है । भारतीय मौद्रिक एव साख नीति में ब्याज दर का विशेष महत्व नहीं है, बल्कि मुद्रा पूर्ति एव साख पूर्ति मे नियत्रण तथा नियोजन की आवश्यकता है । यद्यपि कृषि क्षेत्रो तथा आगतो यथा खाद रासायनिक उर्वरकों पर अब दी जाने वाली सहायत्य (सब्सिडी) को कम या समाप्त कर दिया जा रहा है, परन्तु देश के आर्थिक विकास एव सामाजिक न्याय और पिछडे क्षेत्रो एव वर्गो की दृष्टिकोण से, देश के ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र मे सीमान्त कृषक, भूमिहीन कृषक तथा अन्य गरीब जनता लिए उपयुक्त रोजगार के अवसरो के न होते हुए अब भी इस बात की भारी गुजाइस है कि प्रभावी ढग से कृषि एव साख का प्रवाह उत्पादक कार्यो के

लिए किया जाय । कृषि एव ग्रामीण क्षेत्र के साख वितरण के सम्बन्ध में जहा उत्पादन एव उत्पादिता का प्रशन रहा है, वहीं साख ऋणो की वसूली की भी समस्या रही है । भारतीय सन्दर्भ में मौद्रिक एव साख नियोजन मात्र नीति निर्माण स्तर पर निर्धारित करने से नहीं है, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से कुल बैंक साख तथा उसके आवटन और प्रयोगकर्ताओं के बीच निर्धारण करने से है। इसी के साथ साथ इन नियोजनों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था मे आधारभूत एव सरचनात्मक परिवर्तनों से हैं, जिससे वांक्षित रूप मे साख का बटवारा हो सके, क्योंकि बिना इसके सारा मौद्रिक एव साख नियोजन केवल कागजी कार्यवाही होगी । 'एग्रीकल्चरल रिफाइनेस एण्ड डेवलपमेन्ट कारपोरेशन' न यह पाया है कि लघु सिचाई पर विनियोग का प्रतिफल भूमि विकास, डेयरी तथा अन्य क्षेत्रों में 20 से 50 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहा । अत इसमे कोई सन्देह नहीं है कि उपर्युक्त साख नियोजन द्वारा छोटे उत्पादक महत्वपर्ण रूप से उत्पादन को बढाने का कार्य कर सकते हैं । दो मुख्य समस्याए गरीबी तथा बेरोजगारी कितनी शीघ्रता से दूर की जा सके, यह साख तथा मुद्रा नियोजन का मुख्य विषय होना चाहिए।

जहा तक मोद्रिक लक्ष्यों का तात्पर्य है वह मुद्रा पूर्ति के वार्षिक वृद्धि दर को निश्चित करने से हैं । चक्रवर्ती समिति में मद्रापूर्ति के लक्षित दायरे को नहीं दिखाया गया है। भारतीय अर्थव्यवस्था के अनुभवगम्य लक्ष्यो, जिसमे मद्रा, मूल्य एव उत्पादन का सम्बन्ध है, जो समिति के रिपोर्ट मे प्रस्तावित की गयी है, वह यह दर्शाती है कि इनमें पारस्परिक सम्बन्ध वार्षिक आकडों के आधार पर सम्भव नहीं है। ये सारी सस्तुतिया मोटे तौर पर मुद्रा पूर्ति में वृद्धि को लक्ष्य करके दी गयी है। सबसे महत्वपूर्ण बात जो इस समिति में उल्लेखनीय है, वह चार प्रतिशत सामान्य मुद्रा स्फीति की दर से है। समिति ने अधिकतम् वार्षिक मुद्रापूर्ति का एक दायरे को सस्तुति की है, न कि लक्ष्य का । सम्पूर्ण देश के स्तर पर आकडे इस बात को इगित करते हैं कि भारतीय कृषि में सीमान्त कृषक अधिक होते जा रहे हैं और इनमे साख की माग बढ़ती जा रही है । अत सारी रूकावटे जो शीघ्र साख देने मे आती हैं, उन सब का निराकरण होना चाहिए । इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं। -

1 कृषि क्षेत्र मे साख आवश्यकता केवल साख आवश्यकता तक सीमित नहीं होना चाहिए, अपितु पूरी कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित होना चाहिए ।

2 इस क्षेत्र मे साख आवश्यकता आगत वितरण के रूप में होना चाहिए और थोक तथा फुटकर आवश्यकताओं को ध्यान देना चाहिए। इस सम्बन्ध में साख लागत वितरण हेतु सहकारी समितियों पर विशेष जोर देना चाहिए ।

3 कृषि आधारित उद्योगों को, जो अभी तक औद्योगिक क्षेत्र में गिना जाता है, वे कृषि साख के अग होने चाहिए ।

4 जहा तक अल्पकालीन साख आवटनो तथा साख कार्यक्रमों का प्रश्न है, कृषि उत्पादन में उपविभाग को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए ।

5 हर प्रकार का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे अल्पकालीन साख हेतु उपलब्ध साधनों को बढाया जा सके ।

6 वर्तमान समय मे अल्कालीन साख का वितरण, जो विभिन्न परिवार जोत के आधारपर है, उसमें विशेष ध्यान देना चाहिए ।

मौद्रिक एव साख नियोजन को इस रूप मे परिभाषित किया जा सकता है कि देश मे सम्पूर्ण मौद्रिक एव साख ससाधनो को अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों मे उनकी आवश्यकता, प्रयोग की क्षमता और पूरे विकास के दृष्टिकोण से आवटन किया जाय । सफलता की दृष्टि कोण से साख नियोजन जमा योजनाओं से सम्बन्धित होना चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण साख का आवटन बैंको की कुल जमा पर निर्धारित होता है। इस तरह का साख नियोजन एक विकासशील भारत देश में अपना विशेष महत्व रखता है, ताकि सीमित बैंक ससाधनो का उत्पादकता के दृष्टिकोण से उपयोग हो सके । पूरे देश मे साख की मात्रा इसकी आवश्यकता से कम है । इसलिए साख की मात्रा को विवेकपूर्ण होना चाहिए, ताकि विभिन्न प्रतिस्पर्धी क्षेत्रो में इसे समान रूप से वितरित किया जा सके । पूरे समाज के

साख को विभिन्न क्षेत्रों में आवटित करना चाहिए, न कि उनके ऊँचे ब्याज दर को अदा करने की योग्यता के अनुसार । यह भारतीय रिजर्व बैंक का उत्तरदायित्व है कि वह साख नियोजन इस तरह करे कि मौद्रिक बजट का क्रियान्वयन व्यष्टि स्तर पर साख बजट का स्वरूप ले ले । इसका उद्देश्य मौद्रिक बजट द्वारा मुद्रा पूर्ति के विकास दर को सुनिश्चित करना है। इस तरह समष्टि स्तर पर साख का सम्बन्ध व्यष्टि स्तर पर साख नियोजन से होगा । व्यापारिक बैंको की यह जिम्मेदारी है कि वे अपने साख का आवटन अपने सम्बन्धित शाखाओ द्वारा करें । व्यक्तिगत बैंक अपने साख का वितरण सबसे गरीब तबके के लोगो से लेकर विभिन्न ऋण ग्राहकों तक वितरित करें, विशेषकर कृषि और प्राथमिक क्षेत्रों मे इस तरह का साख आवश्यकता के आधार पर किया जाना चाहए। अब तक जो साख नियोजन बैंको द्वारा किये गये हैं, वे पूर्णत सफल नहीं हो सके हैं । ऐसे अध्ययन जो साख अन्तराल से सम्बन्धित हैं, वे स्पष्ट करते हैं कि लीड- बैंक स्कीम अभी भी अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पाये हैं । अब भी साख नियोजन में इस बात की आवश्यकता है कि साख वितरण मे समय अन्तराल को कम किया जाय और विशेषकर लघु ग्रामीण क्षेत्रों में उधार लेने वालो के सम्बन्ध में ।

प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायों में सम्बन्धित क्षेत्र के सन्दर्भ में कुछ सुझावों को दिया गया है । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नीतिपरक सुझावों को हम यहा दे रहे हैं ।

भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक एव साख नीति के अन्तर्गत सक्रिय खुले बाजार की क्रियाओ सबधी नीति को मौद्रिक नियत्रण के साधन के रूप मे आरक्षित निधि की मूल नीति में बदलाव की आवश्यकता को सहर्ष स्वीकार किया गया है, लेकिन वास्तव मे मुख्य मुद्दा इस सुधार में तेजी लाने का है । यह माना जाता है कि बैंको को साविधिक अपेक्षाए इस उँचाई तक पहुच गयी है कि वे प्रति उत्पादक होती जा रही है तथा यह मध्यस्थहीनता की प्रक्रिया को प्रोत्साहित कर रही हैं। चूंकि समायोजन की अत्यधिक, प्राथमिक चलनिधि की समस्या को काफी बदतर बना सकती है।, आरक्षित निधि मे कटौती की गति का निर्धारण सावधानीपूर्वक करना चाहिए । इस प्रकार आरक्षित

नकदी निधि अनुपात मे और अधिक यथार्थवादी स्तर तभी सभव है, जब अर्थव्यवस्था मे स्फीतिकारी दबाव के स्थायी रूप से टिके रहने के स्पष्ट चिन्ह दिखायी पडते हों । नरसिहम समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि भारतीय रिजर्व बैंक मे इतना लचीलापन होना चाहिए कि वह अपनी मौद्रिक नीतिगत प्रयोजनो के लिए आरक्षित नकदी निधि अनुपात के साधन का उपयोग कर सके । आरक्षित नकद निधि अनुपात व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण, नकदी शेष पर ब्याज का अनुपात है। ऊँचे ब्याज के साथ ऊँचे आरिक्षत नकद निधि अनुपात निर्धारित करना बेहतर है। दुविधा यह है कि आरक्षित नकद निधि अनुपात समयोजन बैंको की अस्तियो को बदल देता है, जब कि ब्याज मे कटौती बैंको की आय को प्रभावित करती है। इस प्रकार आरक्षित नकदी निधि अनुपात के और नकद शेष पर ब्याज दर के स्तर को अतत अनुकूल बनाना होगा, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि समग्र बैंक लाभ्प्रदता प्रभावित न हो । इसके अलावा, पुनर्वित्तीयन और आरक्षित नकद निधि अनुपात के बीच व्यापार बदी है। शायद उच्च आरक्षित नकद निधि अनुपात तथा उच्च पुनर्वित्तीयन की अपेक्षा निम्न आरक्षित नकद निधि अनुपात और निम्न पुनर्वित्तीयन की प्रणाली को अपनाना बेहतर होगा । आदर्शत आरक्षित नकद निधि अनुपात का सामान्य स्तर ऐसा होना चाहिए कि यदि किसी प्रकार के ब्याज की अदायगी नहीं होती है तब भी बैंकिग प्रणाली व्यवहार्थ हो तथा ज्यों ही मौद्रिक विस्तार अत्यधिक होता है आरक्षित नकद निधि अनुपात को बढ़ाया जाये, जब मौद्रिक वृद्धि अपेक्षित स्तर पर वापस आ जाती है, निम्नगामी गतिविधियो को तेज किया जाना चाहिए । नरसिहम समिति ने यह सिफारिश है कि पाच वर्षो की अवधि के दौरान साविधिक चलनिधि अनुपात को कम कर के 25 प्रतिशत पर लाया जाना चाहिए । कार्य की दिशा में यह उपयुक्त लक्ष्य है । तथापि साविधिक चलनिधि को कम कर के 25 प्रतिशत पर लाया जाना चाहिए । कार्य की दिशा में यह उपयुक्त लक्ष्य है । तथापि साविधिक चलनिधि अनुपात समायोजन की चरणबद्धता को बाजार उधार कार्यक्रम से सामन्जस्य रखना चाहिए । साविधिक चलनिधि अनुपात में भारी कटौती अप्रैल, 1992 से लागू की गयी है। भविष्य मे, साविधिक चलनिधि अनुपात मे समायोजन की गति राजकोर्षीय समायोजन, मोद्रिक विस्तार तथा मुद्रास्फीति दर की गति पर निर्भर करेगी । मुद्रा बाजार दर, उधार और जमाराशि दर

तथा सरकारी प्रतिभूतियो पर ब्याज दरो के रूप मे ब्याज दर सुधार की प्रक्रिया काफी हद तक पहले ही प्रारम्भ हो गयी है। एक ओर इन उपायो को बनाये रखने की आवश्यकता है तो दूसरी ओर प्रणाली मे सभी दरो के अति तेजी सेअपविनियमन की ओर सतर्कतापूर्वक बढने की आवश्यकता है । अर्थव्यवस्था मे अत्यन्त सबल अन्तर्निहित मद्रा स्फीति कारी सम्भावना का बना रहना रिजर्व बैंक के लिए चिन्ता का विषय है । सकल माग को सीमित करने के लिए, राकोषीय और मोद्रिक नीतियों को समन्वित करने का दृढ़ प्रयास किया गया है तथा इन नीतियो को विनिमय दर, व्यापार और औद्योगिक नीति की पुनर्रचना के साथ परिचालिका करने की कोशिश की गयी है। केवल माग प्रबंध उपायों से, खासकर कम अवधि मे, मुद्रास्फीति पर नियत्रण नहीं पाया जा सकता । जहा तक देश में सामान्य मुद्रास्फीतिकारी प्रवृत्ति का प्रश्न है, यह आवश्यक है कि पण्य बाजार को स्पष्ट सकेत दिया जाये कि माग पर सरकार आवश्यक उपभोक्ता सामग्री विशेषकर, अनाज और दालों के मामलें मे, देशी आपूर्ति को बढ़ाने के लिए विदेशी मुद्रा आस्तियों के एक अश को खर्च करेगी ।

साख नीति के सन्दर्भ मे समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गो की ऋण आवश्यकताओं का सावधानीपूर्वक मूल्याकन करना आवश्यक है । उत्पादन और रोजगार से सबंधित इन खडों के अश मे किसी भी परिवर्तन के परिणामो का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना होगा, क्योंकि भारत की आर्थिक सरचना अत्यत भिन्न-भिन्न है । प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के ऋण के दो पहलू हैं, जिनकी रूप रेखा स्पष्टत प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। पहला, यह कि बैंकिग प्रणाली से कम ब्याज दरों के रूप मे आर्थिक सहायता वहन करने की आशा नहीं की जा सकती और रियायत देने की बात को ऋण के आकार के साथ सबद्ध करके बडी सीमा तक इस विषय का समाधान किया जाना चाहिए। दूसरे, यह तर्क दिया जा सकता है कि वित्त व्यवस्था मे विकास के इस चरण पर, जहा कि आज भारत है, कमजोर वर्गो को ऋण का न्यायसगत वितरण न केवल उत्पादन को बढ़ाने मे योगदान करेगा, बल्कि इससे सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने मे भी सहायता मिलेगी ।

वर्तमान समय मे एक मूलभूत प्रथम आवश्कता यह है कि ग्रामीण ऋण वितरण प्रणाली को पुन ठीक कर दिया जाए और एक सक्षम सस्थागत सरचना अस्तित्व मे लायी जाए । जबकि

ग्रामीण ऋण सरचना को सुधरी अर्थक्षमता प्रदान करने के प्रश्न ने विभिन्न समितियो का ध्यान आकर्षित किया है, एक सक्षम सरचना विकसित करना अभी भी अपेक्षित है । भारत सरकार एक भारतीय राष्ट्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित करने के प्रस्ताव पर विचार कर रही है। इस प्रश्न पर तुरत ध्यान देना आवश्यक है कि क्या सभी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को एक ही राष्ट्रीय स्तर के बैंक के रूप मे विलयित किया जाए अथवा चार या पाच आचलिक बैंको के रूप मे बैंको की ग्रामीण सहायक सस्थाओ के रूप मे। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को विलयित करने के लिए नरसिहम समिति द्वारा सुझाये गये विकल्प पर भी विचार किया जा सकता है। एक ऐसी ग्रमीण ऋण वितरण प्रणाली तैयार करना अनिवार्य है, जिसके लिए अत्यधिक आर्थिक सहायता की आवश्यकता न हो । इस सदर्भ मे ब्याज दरो के बेहतर रूप मे समनुरूप बनाने एव लक्ष्यित और लक्ष्येत्तर उधार के मिश्रण पर ध्यान देना आवश्यक होगा । क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की समस्याये गभीर हैं, इनके लिए एक बहुविध दृष्टिकोण अपनाना अपेक्षित होगा । जिस किसी क्षेत्र मे ग्रामीण ऋण वितरण प्रणाली सतोषजनक है, वहा मौजूदा सस्थाओ और वाणिज्य बैंको की ग्रामीण सहायक सस्थाओ जैसी नयी सस्थाओ को उनके अपने बल पर विकास करने की अनुमति देना उपयुक्त होगा । ऐसे क्षेत्र जहा ग्रामीण ऋण वितरण प्रणाली असतोषजनक है, वहा यह अनिवार्य है कि ऋण वितरण प्रणाली में सक्षमता युक्त सुधार लाने हेतु शीघ्र उपाय किये जाये । व्यापक आर्थिक परिदृश्य जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, कृषि पैदावार मे कमी के कारण आपूर्ति मे कमी होने की सभावनाए और उनकी मुद्रा स्फीति की स्थिति पर पडने वाले प्रभावो को ध्यान मे रखते हुये मौद्रिक क्षेत्र मे अत्यधिक सतर्कता अपनायें जाने की आवश्यकता है।

कृषि क्षेत्र के लिये विकासकी कार्यनीति देश के कृषि उत्पादन मे सीमान्त तथा छोटे खेतों, जो कुल जोतो का 76 प्रतिशत है, के योगदान को स्पष्ट रूप से मान्यता दी जानी चाहिए । छोटे खेतो की विकासात्मक कार्यनीति इस तरह तैयार की जानी चाहिए, जिससे उन्हें अधिक गहन कृषि विधिया अपनाने तथा सीमित ससाधनो का और अधिक दक्षता पूर्वक उपयोग करने में मदद मिल सके । छोटी जोत भूमि की उत्पादन समभाव्यताओ को पर्याप्त रूप से आकर्षण बनाया जाना चाहिए, ताकि वे

कृषि विकास कार्यक्रमो मे सक्रिय भागीदारी से प्रवृत्त हो सकें । छोटे फार्मो हेतु विकास कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किये जाने चाहिये, ताकि उन्हें उपलब्ध ससाधनों का सबसे सही उपयोग करने के लिये प्रशिक्षण और मदद मिल सके । नाबार्ड द्वारा वर्ष 1983 में प्रारम्भ किया गया, ऋण द्वारा विकास पर आधारित विकास वालियन्टर वाहिनी कार्यक्रम, इस दिशा मे एक सराहनीय कदम कहा जा सकता है।

ग्रामीण जनसख्या को कृषि के स्थान पर उससे सम्बद्ध अन्य कार्यकलापों तथा गैर कृषि क्षेत्र के कार्यकलापों की ओर मोड़ कर, कृषि क्षेत्र पर पडने वाले अत्यधिक दबाव को कम किया जाना चाहिए। इसके लिये ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे विविधता लाना जरूरी है, जिसमें कृषि से सम्बद्ध कार्यकलापों को प्रोत्साहन देना तथा कृषि अभिसस्करण और गैर कृषि क्षेत्र के कार्यकलापों का विस्तार करना शामिल है। पशुधन उत्पादन, डेयरी तथा वानिकी में बढ़े हुए श्रम की खपत हेतु काफी सभाव्यताए हैं । इससे ग्रामीण श्रमिको का कस्बो और शहरो की ओर पलायन रूकेगा ।

कृषि अभिसस्करण और विपणन सबधी मूलभूत सुविधाओं सहित कृषि और गैर - कृषि क्षेत्र के समन्वित विकास का महत्व इस तथ्य को देखते हुए काफी बढ़ गया है कि पिछले वर्षो के दौरान सिचाई, पशुपालन, फार्म मशीनीकरण और मूलभूत सुविधाओं के विकास हेतु काफी राशि निवेशित करने के बावजूद सकल घरेलू उत्पाद मे कृषि के हिस्से में लगातार गिरावट आई है। परिचालनात्मक जोत भूमि के लगातार उप खण्डों मे विभक्त किये जाने और कृषि के सीमान्तीकरण ने ऋण बाजार की समस्याओ को बढा दिया है, विशेष रूप से ग्रामीण गैर कृषि कार्यकलापो में लगे ऐसे व्यक्तियो को वित्तपोषित करने के मामले मे, जिनके पास ऋण एजेन्सियो के पास प्रतिभूति के रूप मे रखने के लिये ससाधन सीमित हैं । वर्तमान व्यापक आर्थिक परिदृश्य मे समग्र रोजगार के अवसरों मे धीमी वृद्धि एक चिन्ताजनक पहलू है।मौसमी रोजगार की समस्या का निवारण करने के लिये गैर कृषि कार्यकलापो का विकास किया जाना जरूरी है। इसके अलावा, ग्रामीण कृष्येत्तर क्षेत्र का वित्तपोषण अपेक्षाकृत ज्यादा लाभकारी है और इससे बैको को, कृषि क्षेत्र मे दिए गये ऋणों से हुए घाटे को कुछ सीमा तक पूरा करने मे मदद मिलेगी ।

यद्यपि सरकारी ऋण लिखतो को बाजार आधारित ब्याज दरों से जोडने के लिए एक सुदृढ़ आतरिक ऋण प्रबधन नीति को उचित तौर पर अपनाने की प्रक्रिया आरम्भ कर दी गयी है तथापि, जब तक कि कुल बाजार की गतिवधिया मौद्रिक नीति का एक प्रभावी साधन नहीं बन जाती, तब तक इस बारे में कोई भी कार्यवाई करना जल्दबाजी होगी । तब तक इसे ऐसा ही चलते देना चाहिए।

वर्तमान मौद्रिक नीति में चलनिधि को नियत्रण मे रखने के उपायो की अत्यत कमी है। मुद्रा स्फीति की वर्तमान प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में ब्याज-दर सम्बधी उपाय का प्रयोग लचीलेपन के साथ करना होगा । मौद्रिक नीति गत उपायो पर जोर दिये जाने के कारण, यह आवश्यक है कि मौद्रिक प्रसार को नियत्रित करने के लिये ब्याज दर नीति का प्रभावी तौर पर उपयोग किया जाए।

इस तरह से प्रस्तुत शोध अध्ययन एक दीर्घकालीन, स्थायी और उपर्युक्त मौद्रिक एव साख नीति का निर्माण कर सकता है। भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक ने इस क्षेत्र और दिशा में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं, लाभकारी तथा साथ-साथ हानिकारक प्रभाव भी पडे हैं । सस्ती मुद्रा एव साख नीति के स्थान पर महगी मुद्रा नीति द्वारा यदि नियोजित ढग से मौद्रिक और साख नीतियो का पालन किया जायेगा तो निश्चित ही देश के कृषि क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों के आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय को प्राप्त किया जा सकता है। इस दशा मे यह समभव हो सकता है कि यदि ये नीतिया उपयुक्त एव प्रभावी ढग से राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकता के आधार पर सचालित की जायेगी तो एक अभावपूर्ण भारत देश समृद्धि शाली देश हो सकता है और हमारे राष्ट्र का अस्तित्व विश्व के अन्य देशो के समान स्थापित किया जा सकेगा ।

-- 0θ0 --

सन्दर्भ सूची

BIBILIOGRAPHY

BOOKS

Adiseshiah, M S — Seventh Plan Perspectives, Lancer International, New Delhi, 1985

Agrawal, A N, Verma H O & Gupta, R C — India - Economic Information Year Book, 1987-88, National Publishing House, New Delhi, 1987

Andey, K K — Money Foreign Exchange and Banking, Atma Ram & Sons, Delhi, 1963

Banerjee, B N — Industry, Agriculture and Rural development, B R Publishing Corporation, Delhi, 1987

Basu, C R — Central Banking in a Planned Economy - The Indian Experiment Tata Mc Graw - Hill Publishing Company Limited, New Delhi, 1978

Basu, S K — Central Banking in Emerging Countries, Asia Publishing House, Bombay, 1968

Basu, S K — A Review of Current Banking Theory and Practice, Mac Millan, Calcutta, 1971

Belshaw, W — Provision of Credit with special Reference to Agriculture, Heffer and sons, Cambridge 1931

Bhattacharya, K N — India's Fourth Plan - Test in Growthmanship, Asia Publishing House, Bombay, 1966

Bhattacharya, P C — Role of Central Bank in a Developing Economy, Publishers Bombay, 1968

Brahmananda, P R — Growthless Inflation by Means of stockless Money Supply Himalaya Pub Bombay, 1985

Bright Singh, D — Inflationary Price Trend in India Since 1939, 2nd rev edn, Asia Publishing House, Bombay, 1961

Catanach, I J — Land Development Banking in India, Oxford University Press Bombay, 1970

Chacko, K C — The Monetary and Fiscal Policy of India, Bombay, 1957

Chakravarty, S — Working of Monetary system in India, 1985

Choubey, B N — Agricultural Banking in India, National

Dr , V Balmohan, Rao, J V , Prabhakara and Rao, P Hrushikesava	Rural Banks and Rural Credit, Discovery Publishing House, New Delhi, 1991
Das, Tushkar, K	Rural Banking, National Institute of Bank Management, Bombay
Datey, C D	Cooperative Bank and Agricultural Credit, Vora & Co , Bombay
Deb, K	Rural Development in India since Independence, 1986
De Prano, M E	Self - Correcting Problems in Money, Banking and Monetary Theory, Allyn and Bacon, Boston, 1966
Dessi, B M and D K	Farm Production Credit in Changing Desai, Agriculture, I I M , Ahmedabad, 1979
Desai, S S M	Rural Banking in India, Himalaya Publishing House Bombay, 1982
Deshmukh, C D	The Balance Between Monetary Policy and other Instrument of Economic Policy in A Modern Society, 1965
Franks, Sir Oliver	Some Reflections on Monetary Policy in the Light of the Radcliffe Report, Asia Publishing House, Bombay, 1961
Friedman, Milton (Ed)	Studies in the Quantity Theory of Money 1956
Ghosh, A	Control Techniques In Indian Monetary Management, World Press Pvt ltd Calcutta, 1971
Ghosh, B B	Problems of Rural Credit in India, Calcutta
Ghosh, O P	Financial Institutions Economic Growth of India, Light and life Publishers, New Delhi, 1979
Ghoshal, S N	Agricultural Financing in India, Asia Publishing House, Bombay, 1966
Ghoshal, S N	Agricultural Finance in India with special Reference to Land Mortgage Banks, Asia Publishing House, Bombay, 1968
Gupta, R D	Keynes and Post Keynesian Economics

Gupta, S B — Monetary Economics Institutions Theory and Policy, S Chand Company Ltd New Delhi, 1992

Gurley, J G and Shaw, E S — Money In A Theory of Finance, 1960

Hajela, P D — The Problems of Monetary Policy In Underdeveloped Countries, New Delhi, 1966

Heller, W — Monetary Policy Vs, Fiscal Policy A Dialogue, (Ed) by Milton Friedman and Walter Hellen, 1969

Jagannathan, S — Reserve Bank of India - Functions and Working, RBI Bombay, 1970

Jain, M K — Rural Banks and Rural Poor, 1989

Jain, S C — Management in Agricultural Finance S Chand & Co , Delhi, 1970

Jha, K K — Agricultural finance in Nepal, Heritage Publisher's, New Delhi, 1978

Jha, M — Lead Bank Scheme and Regional Development, Deep and Deep Publications, New Delhi, 1988

Johnson, H G — Essays In Monetary Economics, London, 1967

Joshi, P L — Institutional Financing in India, Deep and Deep Publications New Delhi, 1985.

Joshi, N C — Indian Banking, Ashish Publishing House, New Delhi, 1979

Kahlon, A S and Singh, K — Managing Agricultural Finance Theory and Practice, Allied Publishers Private Limited, New Delhi, 1984

Kotesia, I (Ed) — Agricultural Credit in India, An Appraisal WAIM, Farmer's Welfare Trust, New Delhi 1974

Krishna Murty, V — Monetary Equilibrium and Economic Development, Popular Prakashan, Bombay, 1977

Kumar, K — Institutional Financing of Indian Agriculture, 1987

Kumar, S — Regional Rural Bank and Rural Development, Deep & Deep Publications, New Delhi, 1990

Kutty, G K — Money and Banking, Concept Publishing House, New Delhi, 1979

Laud, G M — Cooperative Banking in India, Bombay, 1956

Madan, B K — Role of Monetary Policy in A Developing Economy, Chandigarh, 1963

Mahajan, V S — Studies in Indian Agriculture and Rural Development Deep and Deep publications, New Delhi, 1986

Mamoria, C B — Agricultural Problems of India, Kitab Mahal, Allahabad, 1982

Mamoria, C B — Rural Credit and Agricultural Co-operation in India, Kitab Mahal, Allahabad, 1983

Mathur, B L (Ed) — Indian Banking in Rural Development, RBSA Publishers, Jaipur, 1990

Mathur, B S — Land Development Banking in India, National Publishing House, Delhi, 1977

Mehrotra, S R — Institutional Credit and Agricultural Growth, Printwell Pub New Delhi

Mehta, P and Prasher, R S — Credit in Agriculture, B R Publishing Corporation, Delhi, 1987

Mehta, P and Singh P R — Credit in Agriculture, 1987

Mellor, J W , Weaver, T F , Lele, U J and Simon, S R — Developing Rural India, Plan and practice Cornell University Press Ithaca, New York , 1968

Mittra, S — A New Horizons of Central Banking, Bombay, 1967

Mody, R J — New Dimensions of Monetary Management, The Macmillan Company of India Ltd Delhi, 1974

Mongia J N (Ed) — India's Economic Policies, Allied Publishers Private Ltd , New Delhi, 1984

Mongia, J N (Ed) — India's Economic Development strategies 1951-2000 A D Allied Publishers Private Limited, New Delhi, 1986

Nagpal, C S — Monetary Policy and Inflation In India, Delhi, 1982

Naidu, L K (Ed) — Bank Finance for Rural Development, 1986

Naidu, L K — Bank Finance for Rural Artisans, Ashish Publishing House, New Delhi, 1988

Naidu, T V — Farm Credit and Cooperatives in India, Vora and Co Bombay, 1968

Nanavati, M B and Anjaria, J J — Indian Rural Problem, Indian Society of Agricultural Economics Bombay, 1976

Narula, R K — Agriculture and Rural Advance by Commercial Banks, U D H PUBLISHERS Delhi, 1984

Nayan, K — Commercial Banks in India Performance Evaluation, Deep and Deep Publications, New Delhi, 1985

Nigam, B M L — Banking and Economic Growth, Vora and Co Publishers Bombay, 1967

Padhy, K C — Commercial Banks and Rural Development, Asian Publication Services, New Delhi, 1980

Panda, R K — Agricultural Indebtness and Institutional Finance, Ashish Publishing House, New Delhi, 1985

Pannaddikar, P A and Mehta, N C (Ed) — Rural Banking, National Institute of Bank Management, Bombay, 1970

Pandey, K L — Development of Banking in India, Scientific Book Agency, Calcutta, 1968

Pandeya, P C — Agricultural Planning in a Backward Economy, Chugh Publications, Allahabad

Panikar, P G K — Rural Savings in India Sommaiya, Banks, 1970

Pany, R K — Institutional Credit for Agriculture in India, Ashish Publishing House, New Delhi

Patnaik, K M — Monetary Policy and Economic Development in India, S Chand and Co , Delhi, 1967

Raj, K N — Monetary Policy of Reserve Bank of India, 1948

Ramachandran, H and De Campos Guimaraes U P — Integrated Rural Development in Asia, Concept Publishing Company, New Delhi, 1991

Rao, B R — Current Trends in Indian Banking Criterion Publications, New Delhi, 1984

Rao, V G and Malya, P — Agricultural Finance by Commercial Banks, Ashish Publishing House, New Delhi

Rao, V L — Progress of Development Bank in India, Chugh Publication Allahabad, 1986

Reddy, C R — Co-operative Agricultural Finance Chugh Publication, Allahabad

Reddy, J M , Reddy, M Y Upadhyay, K S & Raghuram, Ch (Ed) — Seventh Five Year Plan, Performance and Perspectives, Sterling Publishers (P) Ltd New Delhi, 1989

Rama Rau, B — Evolution of Central Banking in India, Vora and Co Bombay, 1960

Sarma, B P — The role of Commercial Banks in India's Developing Economy, S Chand and Co New Delhi, 1974

Sarma, K R — Financial Institutions and Regional Development in India, Chugh Publications, Allahabad, 1986

Sen, S N — The Monetary Policy of the Reserve Bank of India, Popular Prakashan Bombay, 1964

Sethi, J D — Problems of Monetary Policy in an underdeveloped Country, Asia Publishing House, Bombay, 1961

Shah, M — Role of Reserve Bank of India in India's Economic Development

Sharma, K K — Reserve Bank of India and Rural Credit, Premier Publishing Co , Delhi, 1946

Sharma, K K — Role of Monetary Policy in Planned Economy, Meerut 1965

Sharma, K K — Indian Monetary Policy, Meerut, 1968

Sharma, R D P. — Financing of Indian Five Year Plan, Capital Publishing House, Delhi, 1968

Simha S L N and Raman, A (Ed)	Credit Planning and Policy, Vora and Co Publisher's Pvt Ltd , Bombay, 1974
Simha, S L N and Raman, A	Credit Planning Objectives and Techniques, Institute for Financial Management and Research, Madras, 1976
Singh, A	Rural Development and Banking in India, Deep and Deep Publication, New Delhi, 1985
Singh, A B P	Lead Bank Scheme, Capita Publishing House, Delhi, 1987
Singh, J P	Role of Institutional Finance in Agriculture, Ashish Publishing House, New Delhi, 1986
Srivastava, R B	Institutional Financing of Agriculture in India, Vohra Publishers and Distributors, Allahabad, 1987
Subramanya, K N	Modern Banking in India, Deep and Deep Publications, New Delhi, 1985
Subrahmanys, S	Trends and Progress of Banking in India, Deep and Deep Publications New Delhi, 1986
Subramanya, S (Ed)	Trends and progress of Banking in India, Deep and Deep Publications New Delhi, 1986
Thakur, D	Indian Banking and Money Market, Deep and Deep Publications, New Delhi, 1993
Thirupala, N	Agricultural Finance and Development, Chugh Publication, Allahabad, 1988
Tomar, J S	Farm Credit Planning Guide, Sagar Publication, New Delhi, 1974
Tomar J S	Farm Credit and Finance, Varma Bros , New Delhi, 1978
Tripathi, B K	Developments In the Quantity Theory of Money and their Policy Implications, Saraswati Prakashan, Allahabad 1989
Vaish, M C	Monetary Theory, Vikas Publishing House, Pvt Ltd , New Delhi, 1981
Varma, V K	Promotional Aspects of Monetary Management in India, Somaiya Publication Pvt Ltd , Madras 1978

REPORTS

A R D C — Report of the Committee on Integration of Co-operative Credit Institutions, 1976

Dantwala, M L — Report of the Committee on Regulation of Rural Banks

Desai, G — Report of the Expert Group on Agricultural schemes of the Commercial Banks, R B I 1978

Kamat — Report of the Working Group on Multi-Agency Approach to Agricultural Credit, R B I 1977

Gadgil, D R — Report of the Agricultural Finance Sub-Committee, Bombay, 1945

Gadgil, D R — Reports of the Committee to study Institutional Arrangement for Agricultural Credit in the Context of Social Objectives, R B I , 1969

Gorwala, A D — All-India Rural Credit Survey Committee, R B I Bombay, 1953

Gorwala, A D — Report of the Rural Banking Enquiry Committee, R B I , 1953

Government of India — Report of the Banking Commission, Publication Division, Government of India, New Delhi, Jan 1972

Government of India — Economic Survey, Ministry of Finance (Economic Division) Government of India (Various Issues)

Government of India — Five Year Plan from (I-VII) Planning Commission

ARTICLES

Bhende, M J — Credit Markets in Rural South India Economic and Political Weekly, Vol XXI Sept 22-27, 1986

Dandekar, M N — Fram Credit in India, Feb , 1988

Dandekar, V M — An Analysis of Inflation in India, Indian Economic Review, Oct , 1989

Dutta, Bhabatosh — Monetary Reform, Economic and Political Weekly, Vol XXI Jan , 11, 1986

Dhondiyal, S P — A Note on Impact of Credit on Farm Growth I J A E , 67 (226), 1977

Dr Brahmananda, P R — What is Wrong with the Indian Monetary Policy, And How to Correct it / Dec , 1983

Friedman, Milton — The role of Monetary Policy, American Economic Review, Vol C L VII March, 1968

Johnson, H G — Monetary Theory and Policy, The American Economic Review, Vol L II No 3, June 1962

Mody, R J — Government Borrowing and the Monetary system, Economic and Political Weekly, Vol XXI Aug 9, 1986

Patil, R H — Monetary Reforms, Some Unresolved Issues, Economic and Political Weekly No , Vol XXI Jan 25, 1986

Pande, K P — Report of the Working Group on Co-ordination of short, Medium and long term Loans, 1964

Pal, T A and Narsimham — Report of the Working of the Group on Regional Rural Banks, 1975

Reserve Bank of India — Report of the Working Group Analysis on Money Supply, R B I Bulletin, July and August 1961

Reserve Bank of India — Report of the Informal Group on Institutional Arrangement for Agricultural Credit, 1964

Reserve Bank of India — Manual on short-term and long-term Loans for Agricultural Purposes, 1966

Reserve Bank of India — Report of the All India Rural Credit Review Committee, 1969

Reserve Bank of India — Special Credit Schemes, 1970

Reserve Bank of India — Studies in Agricultural Credit, 1970.

Reserve Bank of India — The Reserve Bank of India, Functions and Working, R B I Bombay, 1970

Reserve Bank of India — Compilation and Analysis of Money Supply in India 1976

Reserve Bank of India — Report of the studies Group to Fram Guidelines for Follow-up of Bank Credit (Tandon Committee), 1975

Reserve Bank of India — Report of the Working Group to Review the system of Cash Credit (Chore Committee) 1979

Reserve Bank of India — Money Supply in India Concepts, Compilation and Analysis, (Report of the Second Working Group) Reprinted, 1979

Reserve Bank of India — Report of the Expert Group on state Enactments having a Bearing on Commercial Bank Leading to Agricuture, (Tandon Committee), R B I , 1980

Reserve Bank of India — Report of the Committee of Review arrangements for Institutional Credit for Agriculture and Rural Development (CRFICARD), 1981

Reserve Bank of India — Report of the Working Group and the Role of Banks in Implementation of New 20-Point programme (Ghosh Committee), 1982

Reserve Bank of India — Report of the Committee to Review the Working of the Credit Authorization Scheme (Marathe Committee), 1983

Reserve Bank of India — Report on the trend and progress of Banking in India, 1983-84

Reserve Bank of India — Report of the Committee to Review the Working of the Monetary system (Chakravarty Committee), 1985

Reserve Bank of India — Report of the Agricultural Credit Review Committee

Rangarajan C — Monetary Policy Price Stability and Interest Rate Regulation, Economic Times

Shah, V C — Monetary Analysis in India, 1948-49 to 1958-59, Indian Economic Journal, Vol 9, No 3, Jan 1962